शंकराचार्य

(श्रीशंकराचार्यका जीवनचरित्र और उनके सिद्ध

(शङ्कर-दिग्विजयके आधार पर लिखित ।)

लेखक :—

उमादत्तशर्मा ।

प्रकाशक :—

दी पोपुलर ट्रेडिङ्ग कम्पनी

१४।१ए शंभु चटर्जी स्ट्रीट,

कलकत्ता ।

संवत् १९८८

द्वितीय संस्करण] [मूल्य १।)

उमादत्तशर्मा
पोपुलर ट्रेडिंग कम्पनी।
१४।१ शंभु चटर्जी स्ट्रीट
कलकत्ता।

मुद्रक—
बाबू मूलचन्द्र अग्रवाल बी० ए०
'विश्वमित्र'—प्रेस, १४।१ए शंभु चटर्जी स्ट्रीट,
कलकत्ता।



भूमिका

भगवान् शङ्कराचार्यका जन्म विक्रमकी ८ वीं शताब्दीमें हुआ था। इससे पहले महात्मा बुद्धके प्रादुर्भावसे पहले, आर्यजाति अनेक भागोंमें विभक्त होकर नाना धर्मोंका पालन करने लगी थी। वाह्याडम्बरोंने वास्तविक धर्मके स्थानको ग्रहण कर लिया था। लोग समझते थे कि विना योग और तपके ही मुक्ति हो सकती है! शाक्तय-धर्म और वाममार्गका प्रचण्ड प्रचार हो गया था। जीव-जन्तुओं और पशुओंका वलिदान करनेमें ही धर्म समझा जाने लगा था। वेदों और पुराणोंकी शिक्षाको भुला कर लोग मनुष्य तकका वलिदान करनेसे कुण्ठित नहीं होते थे! समस्त देशमें अना-चार और व्यभिचारका वाजार गरम हो रहा था। मद्य, मांस, मछली और मैथुनको ही ब्रह्मियोंने प्रधान धर्म वता कर भीषण व्यभिचारका द्वार उन्मुक्त कर दिया था। सभी तरहकी देव-वन्दनाओंमें वलिदान-प्रथाका वाहुल्य था। उस समय यदि कोई निरपेक्ष मनुष्य विगड़ी हुई अधःपतित आर्यजातिके धार्मिक कार्यकलापोंको देखता तो, आर्य-जातिके विकृत रूपको देख कर उसे पहचान तक न सकता! जिस जातिके पूर्वपुरुषा ऋषि-मुनिगण अध्यात्म-चिन्तन, अद्भुत धर्म-विश्लेपण करके भावी सन्तानोंके लिये अमूल्य ग्रन्थ रच कर रख गये थे, उन्हींकी सन्तान वास्तविक धर्मको छोड़ कर मद्य, मांस और व्यभिचार तथा वलिदानको धर्म वताने लगी थी। इसी समय अर्थात् ईस्वी सन्से ६ सौ वर्ष पूर्व महात्मा वुद्धका जन्म हुआ। महात्मा वुद्धका जन्म-स्थान रोहिणी नदी तीरस्थ कपिलावस्तु नामक स्थानमें

हुआ था। यह स्थान गोरखपुरसे ५० मील उत्तरमें स्थित है। इनके पिता, इक्ष्वाकु वंशकी अन्यतम शाखा शाक्य-वंशीय क्षत्रिय राजा शुद्धोधन थे। महात्मा बुद्धकी माताका नाम मायादेवी था। जब, महात्मा बुद्धका जन्म हुआ, तब प्रसव-सप्ताहके बीचमें ही उनकी माता मायादेवीकी मृत्यु हो गयी थी। महात्मा बुद्धको उनकी विमाता—और मौसी गौत्तमीने पालित-पोषित किया। इसीलिये इनका नाम गौत्तम पडा। सिद्धार्थ इनके पिताका रखा हुआ नाम था। परन्तु जब ये धर्म-प्रचारमें प्रवृत्त हुए, तब इनका नाम बुद्ध पड़ा। यही महात्मा बुद्ध, बुद्ध-धर्मके संस्थापक थे।

बाल्यावस्थामें ही बुद्धके प्रशस्त ललाटको देख कर महापुरुष होने का सन्देह होने लगा था। बुद्धि तीक्ष्ण थी। बाल्यावस्थामें ही बुद्ध चिन्ताशील, अध्यवसायी, पर-दुःख कातर स्वभावके थे। बुद्ध बाल्यावस्थासे ही संसारसे विरक्त रहते थे। बुद्धके पिता उनकी विरक्तिको हटा कर उन्हे संसारकी विषय-वासनाओंमे आसक्त करना चाहते थे। परन्तु किसी प्रकारसे भी बुद्धके पिता अपने कार्यमें सफल न हुए। कुछ दिन बाद बुद्धका विवाह भी गोपा या यशोधरा नामकी परम सुन्दरी राजकन्याके साथ कर दिया गया। १९ वर्षकी अवस्थामें यह विवाह हुआ था। इसके बाद १० वर्ष तक अनिच्छापूर्वक बुद्धने गृहस्थाश्रममें अवस्थान किया। इसी समय उनकी पत्नीके गर्भसे 'राहुल' नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। किन्तु पिताका स्नेह, गुणवती भार्याका प्रेम और राजप्रासादकी विविध विलास-सामग्री कुछ भी उनको मुग्ध न कर सकी। चारों ओरसे रोग, शोक, जरा, मृत्यु प्रबल दीख रहे थे। इसके अतिरिक्त उन्हे मुक्तिकी प्रबल अभिलाषा थी। किस प्रकार से इन सांसारिक यन्त्रणाओंसे मुक्ति प्राप्त हो सकती है, इसकी वे रातदिन चिन्ता किया करते थे। अन्तमे वे घर-द्वारकी मोह-माया

छोड़ कर चल पड़े। वनमें जाकर बुद्धने अनेक वर्षों तक घोर तपस्या की। इससे उन्हें तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति हुई। उन्होंने तपस्यासे निवृत्त होकर देखा कि धर्मके नाम पर देशमे महान् अत्याचार हो रहा है। बाह्याडम्बर, बलिदान और व्यभिचारको ही धर्म समझा जाता है। सर्वप्रथम उसीके उच्छेदके लिये वे कटिबद्ध हुए। उन्होंने प्रचार करना आरम्भ किया कि—'जाति-पांति कुछ नहीं है। छोटे-बड़े सब मनुष्य हैं। मोक्ष-प्राप्तिका एकमात्र उद्देश्य है कि संसारकी मोह-ममताको छोड़ कर विरक्तिका भाव धारण किया जाय। सत्य-व्यवहार और पवित्र आचरण ही धर्म है। पशुओंका बलिदान पाप है।' वामियोंके अत्याचारोंसे लोग घबड़ा उठे थे। बुद्धकी सीधी-सादी बातोंने उनके हृदयों पर जादूका सा असर किया। अनेक लोगोंने बुद्ध-धर्म को ग्रहण किया। अनेक राजा, सेठ-साहूकार बुद्ध-धर्मानुयायी हो गये। समस्त देशमें बुद्ध-धर्मका डङ्का बजने लगा। उनके नाम पर अनेक मठ और मन्दिर स्थापित किये गये। इसी समय ८० वर्षकी अवस्थामें महात्मा बुद्धकी मृत्यु हो गयी। इस घटनाको 'महा-निर्वाण' के नामसे स्मरण किया जाता है। महात्मा बुद्धकी मृत्युके बाद उनके धर्म-प्रचारका काम उनके शिष्योंने अपने हाथमें लिया। आगे चल कर महाराज अशोक और शालिदत्त भी बुद्धधर्मके अनुयायी हुए। इन राजाओंने बुद्ध-धर्मका और भी जोरसे प्रचार किया। चीन, जापान, बर्मा, लङ्का और तिब्बत तकमे बौद्ध-भिक्षुओंको भेज कर इस धर्मका प्रचार किया गया। समस्त एशिया महाद्वीपमें बौद्ध-धर्मका बोलबाला हो गया। महात्मा बुद्धकी मृत्युको हुए अब लगभग १२ सौ वर्ष हो चुके थे। बौद्ध-धर्मके अनुयायी भी कई भागोंमें विभक्त हो गये थे। सहस्रों स्त्री और पुरुष भिक्षुक होने लगे थे। समयके प्रभावसे इन लोगोंने वेदों, पुराणों, दर्शनों और धर्म-शास्त्रोंको मानने

से इन्कार कर दिया। जिस वाममार्गियोंके पापाचारको ध्वंस करनेके लिये इस सम्प्रदायका जन्म हुआ था, बुद्धके १३ सौ वर्षके बाद उसी पापाचारमें बुद्ध-धर्मानुयायी लिप्त हो गये। वाममार्गी कमसे कम भगवान्को तो किसी न किसी रूपमें मान कर उससे डरते थे। परन्तु बौद्धोंने उस भयको भी दूर कर दिया। उनके जो मनमें आया वही करने लगे।

इस समय वैदिक धर्मका लोप हो रहा था। बौद्धों द्वारा बराबर १३ सौ वर्षसे वैदिक धर्म पर वाममार्गका नाम लेकर कुठाराघात हो रहा था। सर्वसाधारण बौद्ध लोग और उनके मतानुयायी राजागण वैदिक धर्मियोंको उत्पीडित करने लगे थे। वैदिकधर्मियोंका भीषण निर्यातन हो रहा था। निष्ठुरतासे उन पर नाना प्रकारके अत्याचार हो रहे थे। दल-बद्ध होकर अहिंसा-धर्मके माननेवाले बौद्ध, हिन्दुओं को अग्निमे जला देते थे। पर्वतोंसे गिरा कर वैदिक धर्मकी सत्यता की परीक्षा लेते थे। इसी समय कुमारिल भट्ट और मण्डनमिश्रका आविर्भाव हुआ, जिन्होंने जगह-जगह बौद्धोंको शास्त्रार्थमें परास्त कर वैदिकधर्मका प्रचार किया। परन्तु भारतको नास्तिकवादके भयङ्कर गर्तसे निकालनेके लिये किसी विशेष दैवी विभूतिकी आवश्यकता थी। सो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके गीतामे कथित—'यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत' नामक श्लोकके अनुसार ८ वीं शताब्दीमे भगवान् शङ्कराचार्यका जन्म हुआ। शङ्कराचार्य बाल ब्रह्मचारी, तपस्वी तथा विद्वान् और योगी थे। उन्होंने जन्म लेकर नास्तिकवादका खण्डन किया और सत्यसनातन वैदिक धर्मकी पुनः स्थापना की।

उस समय यदि शङ्कराचार्य न होते, तो हिन्दूधर्मका कभीका लोप हो गया होता। सत्य सनातन वैदिक धर्मका नाम तक संसारसे

मिट जाता। आज जो हिन्दूजाति अपनी वैदिकताका गर्व कर रही है, नास्तिकवादके गहरे गर्तमें पड़ी होती ! स्वामी शङ्कराचार्यने ही उस समय अपने तप और तेज तथा विद्या-बुद्धिसे वैदिकधर्मकी रक्षा की थी। उन्हीं वैदिक धर्मके उद्धारक स्वामी शङ्कराचार्यके महत्त्वपूर्ण जीवन और उनके वैदिक धर्मकी रक्षाके लिये किये गये कार्य-कलापों तथा सिद्धान्तोंका इस पुस्तकमें वर्णन किया गया है।

संस्कृतमें—'शङ्कर-विजय' और 'शङ्कर-दिग्विजय' नामके दश महाग्रन्थ हैं। ये सभी ग्रन्थ अनेक विद्वानों द्वारा लिखे गये हैं। परन्तु इनमें भी कई अप्राप्य है। इनमें प्रामाणिक 'शङ्कर-दिग्विजय' है, जो स्वामी शङ्कराचार्यके एक प्रधान अनुयायी विद्यारण्य स्वामी द्वारा लिखा गया है। गुरुके सम्बन्धमें शिष्यसे अधिक कौन लिख सकता है। इस लिये हमारी इस हिन्दी पुस्तककी रचनाका आधार भी वही 'शङ्कर-दिग्विजय' ही है। स्वामी शङ्कराचार्यके मतानुयायी, शङ्कर स्वामीको साक्षात शङ्करका अवतार मानते है। इसमें सन्देह नहीं कि इतनी अल्प आयुमें स्वामी शङ्कराचायंने जो कुछ कर दिखाया, वह अवश्य ही आश्चर्यजनक है। इतिहासमें ऐसे बहुत कम उदाहरण मिलते हैं, जिनसे शङ्कर स्वामीकी तुलना की जा सके। और फिर सनातन वैदिकधर्मी तो भगवान् श्रीकृष्णके उस श्लोकको अक्षरशः मानते ही हैं कि साधुओंके परित्राण और पापियोंके विनाशके लिये मैं प्रत्येक युगमें जन्म लेता हूं। इसके सिवा अद्वैतवादी शङ्कर-मतके अनुयायी तो जीव और ब्रह्मको एक ही मानते हैं। ऐसी दशामें शङ्कर स्वामीको अवतारी महापुरुष समझना अथवा भगवानकी एक विशिष्ट विभूति मानना कोई आश्चर्यकी बात भी नहीं है।

और एक बात है। श्रीविद्यारण्यस्वामीके 'शङ्कर-दिग्विजय'में शङ्कर स्वामीके अनेक अमानुषिक कार्योंका उल्लेख है। विद्यारण्य—उन

कार्यों में विश्वास करते थे—और विश्वास करते थे शङ्कर स्वामीको अवतार मान कर। वे शङ्कर स्वामीको अवतार ही मानते थे। हमने उन घटनाओंका भी इस जीवनचरितमें यथास्थान उल्लेख कर दिया है। अब जो पाठक अवतारवादको मानते हैं, उनके लिये तो कुछ कहना ही नहीं है, वे शङ्कर स्वामीके जीवनचरितको श्रद्धा और प्रेमसे पढ़ें और उनके आदेशोंको हृदयङ्गम करें। परन्तु जो पाठक आज-कल की रीति-नीतिके अनुसार हरएक बातको तर्ककी कसौटी पर ही चाहते हैं, वे इस बात पर तर्क करनेसे पहले अध्यात्म-विद्या का अध्ययन करें। कमसे कम योगदर्शनके भावोंको ही पूर्णरूपसे समझें, तब शङ्कर स्वामीके अमानुषिक कार्यों को तर्ककी कसौटी पर कसनेकी चेष्टा करें, नहीं तो वे विफल-मनोरथ होंगे।

वास्तवमें—होना तो चाहिये था 'शङ्कर-दिग्विजय' का ही बढ़िया अनुवाद, उससे राष्ट्रभाषा हिन्दीका गौरव बढ़ता, परन्तु 'शङ्कर-दिग्विजय' का साङ्गोपाङ्ग अनुवाद बड़ा काम है। ऐसी दशामे हिन्दीमें शंकराचार्यके जीवनचरितसे ही हिन्दी पाठकोंको सन्तोष करना चाहिये, परन्तु जो संस्कृत जानते हैं, वे 'शङ्कर-दिग्विजय' को पढ़ कर ही अपनी तृप्ति करें।

हिन्दीमें १५—२० वर्ष पहले लाहौरसे शङ्कर-स्वामीका एक छोटासा जीवनचरित प्रकाशित हुआ था। उसके लेखकको वहांकी युनिवर्सिटीसे उस पर इनाम भी मिला था। इतना सब होने पर भी उस चरित्रसे उद्देश्यसिद्धि नहीं हो सकती। वह अधूरा भी है—और उस पर एक सम्प्रदाय विशेषकी छाप लगा कर उसकी व्यापकताको भी नष्ट कर दिया गया है। इस चरित्रमें 'शङ्कर-दिग्विजय' की प्राय. सभी बातोंका उल्लेख करनेकी चेष्टा की गई है। कहा तक सफलता प्राप्त हुई है, इसका निर्णय विद्वान् पाठक ही करेंगे। साधारण पाठकों

के हृदय पर प्रभाव डालनेके लिये विशेष-विशेष घटनाओंके चित्र देकर इसे साङ्गोपाङ्ग सम्पन्न करनेकी चेष्टा की गई है। आशा है कि हिन्दी पाठक इससे लाभ उठायेंगे।

कलकत्ता ४।२।२६ } उमादत्त शर्म्मा।



द्वितीय संस्करण ।



हर्षकी बात है कि रत्नाकर-ग्रन्थमालाकी अन्यान्य पुस्तकोंकी तरह से 'शङ्कराचार्य' को भी पसन्द किया गया है। यू० पी०, सी० पी० बिहार और पंजाबकी टेक्सेट बुक कमेटियोने इसे 'प्राइज़' और 'लायब्रेरियों'के, लिये स्वीकृत करके, गुण-ग्राहकताका परिचय दिया है। पाठकोंकी कृपाके कारण ही यह दूसरा संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है।

कलकत्ता १६।७।३१ } लेखक

उपक्रमणिका ।



शास्त्रोंमें कहा है कि,—'शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्' धर्म साधनके लिये ही यह मानव-देह है, इसी लिये मनुष्यका उद्भव हुआ है—और इसी लिये मनुष्यका अस्तित्त्व है। मनुष्य-जन्म पाकर, मानव-देह धारण करके जो परमतत्त्व जाना जा सकता है, परमात्मा को पाया जा सकता है, उसे पानेकी जो चेष्टा नहीं करता, वह नितान्त हत-भाग्य है, उसका जन्म लेना वृथा है, उसका जीवन मिथ्या है। मानव-देहकी सर्वश्रेष्ठता व्यर्थ है, यदि वह तत्त्वज्ञान न प्राप्त कर सके। धर्म—तत्त्वज्ञानका ही नामान्तर है। जो आदमी तत्त्वज्ञान प्राप्त करने की चेष्टा नहीं करता, उसे प्राप्त नहीं करता, वह धर्म-साधन भी नहीं कर सकता।

हिन्दू-धर्म शास्त्रोंमें लिखा है कि जीवात्मा बहुतसी योनियोंमें भ्रमण करके—परम सौभाग्य वल और अनेक पुण्योंके फलसे मानव-जन्म लाभ करता है। परन्तु उसकी सार्थकता तभी साधित हो सकती है, जब वह तत्व-ज्ञान प्राप्त कर धर्म-साधन करे। एक मात्र धर्मके बलसे ही मनुष्यका मनुष्यत्व विकसित होता है, और एक मात्र धर्म-साधनसे ही मुक्ति प्राप्त होती है।

क्रमोन्नति प्रकृतिका अनिवार्य एवं अलङ्घनीय विधान है। केवल जड़-जगत्में, उद्भिद-जगत्में—या इतर प्राणी-जगत्में यह क्रमोन्नति-विधान (Evolution) की प्रक्रिया पर्य्यवसित नहीं है। मानव-जगत्में, मानवके अध्यात्म-जगत्मे ही इसका पराक्रम प्रकट

होता है। क्रमोन्नति-विधानके बलसे ही अध्यात्मिक शक्ति विकसित एवं परिस्फूरित होती है। उसीके बलसे मानव इस जीवनमें ही योग-बल प्राप्त करके देवत्त्वमें परिणत हो जाता है। उसके अभावमें पशुत्त्व और पिशाचत्त्वमे परिणत होता है। मानव-जीवनकी अवश्यम्भावी अधोगति हो जाती है।

पुराणोंके शिरोमणि श्रीमद्भागवतमें लिखा है कि सृष्टिसे पहले ब्रह्माका आविर्भाव हुआ और वे किंकर्तव्यविमूढ होकर विचारने लगे कि अब क्या कर्तव्य है ? तब उनके चारों ओरसे अनन्त जलराशि में से 'तप' 'तप' मुखरित होने लगा। इस ध्वनिसे तब ब्रह्माने निश्चय किया कि तपस्या ही उद्देश्य है, तपस्या ही एक मात्र कर्तव्य है। तपस्याके ही बलसे ब्रह्माने परम ज्ञान और महाशक्ति लाभ की और उसीके बलसे विश्व-ब्रह्माण्डकी सृष्टि करनेमें समर्थ हुए। तपस्याके ही बलसे आत्मा पवित्र होती है, अध्यात्मिक शक्ति विकसित होती है और तत्त्वज्ञानका पथ-प्रदर्शन करती है। श्रीमद्भगवद्गीतामें लिखा है :—

यज्ञ दान तप' कर्म न त्याज्यं कार्यमेवयत्।
यज्ञे दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्॥

तपस्याके बलसे ही मानव-आत्मा पवित्र होकर मानवको परम ज्ञानका अधिकारी बनाती है। यह तो है हिन्दू धर्म-शास्त्रोंका अभिमत, परन्तु पाश्चात्य विद्वानोंने भी इसका इसी रूपमें समर्थन किया है। उनका कहना है कि तपस्या ही विशुद्धि-साधन है, तप ही क्रमोन्नतिसे मनुष्यको—मानवसे देवता बनाता है।

धर्म साधनाका एक मात्र अन्तिम फल है—तत्त्वज्ञान। तत्त्वज्ञानके फलसे ही अध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक आदि विविध दु खोसे निवृत्ति होती है। इसलिये तत्त्वज्ञान ही जीवनका एक मात्र

ध्येय—और सर्वश्रेष्ठ उद्देश्य तथा परम-पवित्र लक्ष्य है। पशु और मनुष्यमें इसी लिये पार्थक्य है कि पशु, देह धारण करके केवल देह-रक्षाके लिये ही व्यतिव्यस्त रहता है और मनुष्य अध्यात्मिक शक्ति को विकसित करके तत्त्वज्ञानके लाभके लिये व्यग्र होता है। जिस मनुष्यमें मानव देह धारण करके भी तत्वज्ञान प्राप्त करनेकी व्याकुलता नहीं, वह केवल नर-देहधारी पशुके सिवा और कुछ नहीं। जब मानव प्रकृत मनुष्यत्व लाभ करता है, तब उसकी अन्तरात्मामेंसे आलोड़ित होकर स्वयं प्रश्न होता है कि इस जीवनका उद्देश्य क्या है? इस नर-देह धारणसे क्या लाभ है? यह गूढ प्रश्न ही मानव-जीवनको धन्य और कृतार्थ करनेका एक मात्र उपाय है। यह अन्तरात्मामेंसे उठा प्रश्न ही अन्ध मूढ़ मानवको चक्षुष्मान करके उसके प्रकृत गन्तव्य पथको दिखा देता है।

जीव-मात्र ही दुःखका दास है। विशेषतः मानवजीवन तो दुःख-यन्त्रणा-भोगके लिये ही सृष्ट हुआ है। मानवोंमें भी जो जितना उन्नत, जितना श्रेष्ठ है, उसको दुःख भी उतना ही अधिक होता है। पाश्चात्य दार्शनिक स्पेनरका कथन है कि वास्तविक बुद्धिमान, चिन्ताशील, प्रतिभाशाली व्यक्ति ही जीवनमें अधिक दुःख-यन्त्रणा भोग करता है। क्योंकि वह अपने गन्तव्य पथकी-दुस्तरताको समझता है। तब वह समझता है कि इन दुःख-यन्त्रणाओंसे परित्राण पाने का एक मात्र उपाय है—तत्वज्ञान प्राप्ति और धर्म-साधना। सर्वश्रेष्ठ दर्शनशास्त्र भी परित्राणका पथ-प्रदर्शन करनेमें ही व्यग्र हैं। सांख्य-दर्शनमें लिखा है,—'त्रिविध दुःखस्यात्यन्त निवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थ।' मनुष्य जब प्रकृत मनुष्यत्व लाभ करता है, तब उसकी अन्तरात्मासे स्वतः ही प्रश्न उठता है कि इस मानव-देहका उद्देश्य क्या है? इसकी सार्थकता कैसे हो सकती है? जब तक इस प्रश्नका समुचित

समाधान नहीं कर लेता, सुस्थिर नहीं होता। श्रेष्ठ मनुष्यके लिये जैसे ही यह प्रश्न अनिवार्य है, वैसे ही उसके लिये इसका समाधान होना भी आवश्यक है। परन्तु इसके लिये विशेष चिन्ता या गम्भीर गवेषणाकी जरूरत नहीं होती है। क्योंकि मनुष्य मात्र ही इस बातको जानता है कि दुःख दूर करना और सुख-भोग करना जीवनका एकमात्र ध्येय है। तब प्रश्न उपस्थित होता है कि सब प्रकारके दुखोंको एक बार ही दूर करना और महासुख—जिसका नाम है—परमानन्द, उस अनिर्वचनीय सुखको प्राप्त करनेका उपाय क्या है? हिन्दू-धर्म-शास्त्र-कारों और विदेशी विद्वानोंने एक स्वरसे इसका उपाय बताया है—धर्म-साधन और तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति। परन्तु प्रश्न होता है कि उस तत्त्वज्ञान और धर्मसाधनका स्वरूप क्या है? पाठक जबतक इस प्रश्नका समा-धान न समझें, तबतक शङ्कर-स्वामीके मन्तव्यको नहीं समझ सकते।

स्थूलको छोड़ कर सूक्ष्ममें प्रवेश करना, जड़को त्याग कर अध्या-त्मका आश्रय लाभ करना, धर्मका उद्देश्य है। जड़में, जड-देहमें, जड़ इन्द्रियोंमे आबद्ध होकर मनुष्यको जितने भी दुःख प्राप्त होते हैं, उनसे दूर होना, बाह्य-बन्धनोंका परित्याग करना, उसकी सामर्थ्यकी प्राप्तिकी जड़का त्याग और सूक्ष्मका आश्रय लाभ है। इन बाह्य-बन्धनोंको छिन्न करके जो मुक्ति लाभ होती है, उससे समस्त दुःख दूर हो जाते हैं और परमानन्दकी प्राप्ति होती है।

आत्मतत्त्व सर्वापेक्षा सूक्ष्म-व्यापार है। ध्यान, धारणाके मार्गको ही ग्रहण करके ही सूक्ष्म आत्मतत्त्वमें प्रवेश किया जा सकता है। उसीसे बाह्य-बन्धनोंसे मुक्ति मिलती है। उसीसे त्रिविध दुःखोंका अवसान होता है। उसीसे महामुक्ति-जनित परमानन्दका उपभोग प्राप्त होता है। यही धर्मका सूक्ष्म तत्त्व है। यही धर्मका मर्म है, यही 'आत्म-दर्शन' का सार-तत्त्व है।

आत्मदर्शनसे ही ब्रह्म-दर्शन लाभ होता है। ब्रह्मदर्शनसे ब्रह्मानुभूति और अन्तमें ब्रह्ममें परिणति होती है। आत्मदर्शन द्वारा ही क्षुद्र आत्मा महान् आत्मामें परिणत होता है। भूमा-रूपमें भूमा-भाव धारण करता है। क्षुद्र-तुच्छ मानव ब्रह्मज्ञ होकर स्वयं ब्रह्म हो जाता है। इसी लिये हिन्दू शास्त्रोंमें लिखा है कि 'ब्रह्मवित् ब्रह्म भवति'।

शङ्कर स्वामीने ब्रह्मत्व-लाभका यही पथ प्रकट रूपमें मूढ जगत् के सामने प्रदर्शित किया है। इसकी समस्त व्याख्या-विवृत्ति आत्मा का यथार्थ स्वरूप जो भूमा-भाव ब्रह्म रूप है, वही उन्होंने विशद् भावसे संसारको दिखाया है।

पाश्चात्य विद्वानोंका शङ्कर स्वामीसे आत्मदर्शनके सम्बन्धमें मत नहीं मिलता। उनका कहना है कि तत्त्वज्ञान और ध्यान-धारणासे प्रकृष्ट मनुष्यत्व होता है, जो जीवनका अन्तिम उद्देश्य है।' परन्तु आत्मदर्शन असम्भव है। उनका कहना है कि विषय और विषयी एक नहीं हो सकते। यह प्रकृतिके विरुद्ध है। बोध बुद्धि द्वारा ब्रह्मके ज्ञानकी उपलब्धि हो सकती है, परन्तु ब्रह्मकी नहीं। किन्तु 'सेलिं' आदि दार्शनिकोंने इस बातको मान लिया है कि मानव-बुद्धि और ईश्वर एक ही वस्तु है।

क्षुद्र सीमाबद्ध आत्माको परमात्मामे परिणत करना—अर्थात् 'मैं स्वयं ब्रह्म हूं' यह भाव लाभ करना, (जिसको वैदिक भाषामे 'सोहं' और 'तत्त्वमसि' आदि कहते हैं।) हिन्दू धर्म अथवा वेदान्त मतका प्रधान सिद्धान्त है। इसी सैद्धान्तिक सूत्रको लेकर आधुनिक और प्राचीन दर्शनों तथा दार्शनिकोंने धर्मकी भित्ति प्रथित की है। इस अमूल्य अपूर्व वैदान्तिक दर्शन और वेदान्तधर्मके आदि प्रचारक स्वामी शङ्कराचार्य ही थे।

अनेक लोगोंका कहना है कि शङ्कर-स्वामीने केवल शुष्क और नीरस ज्ञान-मार्गका प्रचार किया है। किन्तु यह भ्रम है। उन द्वारा

रचित स्तोत्रोंको पढ़नेसे अपूर्व भक्तिभाव प्रकट होता है। वास्तवमें बात यह है कि कर्म, ज्ञान और उपासना इन प्रधान तीन बातोंमेंसे शङ्करने किसीका भी त्याग नहीं किया है।

+ + + +

'शङ्कर-शङ्कर सम'—यह उक्ति भारतमें बहुत दिनसे प्रचलित है। जिन्होंने विशाल विस्तीर्ण धर्म विकासके लीला-क्षेत्र भारतमें हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक अटकसे लेकर कटक तक, धर्म-प्रचारकी मन्दाकिनी बहा दी थी, जिन्होंने अल्प काल मात्र मानव-जीवन धारण करके, पथभ्रष्ट पतित भारतको सुपथ पर आरूढ़ किया था, वे भगवान् के अंश-स्वरूप अथवा अवतार थे, यह स्वीकार करनेमें कौन कुण्ठित हो सकता है? आचार्य शङ्करकी परमायु अति अल्प काल मात्र तक स्थायी रही थी। केवल अट्ठाइस और किसीके मतमें बत्तीस वर्ष तक जीवित रहे थे। किन्तु इस सामान्य अल्पकालमें ही धर्म-जगत्में जो अद्भुत कार्य साधन कर दिखाये, उन पर विचार करनेसे विस्मित हो जाना पड़ता है।

भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें कहा है कि जब-जब धर्मकी ग्लानि होती है, अधर्मका प्रसार होता है, तब तब मैं धर्मकी पुनर्स्थापनाके लिये विशेष आत्माको जन्म देता हू। धर्म ही इस जगत्का एक मात्र उद्देश्य है। एक मात्र धर्म ही, संसार और समाजको धारण किये हुए है। उत्कर्षकी उन्नति ही जीवनका उद्देश्य है। उस उद्देश्य साधनका उपाय, धर्म-व्यतीत और कुछ नहीं है।

ब्रह्म अथवा परमात्माकी अप्रकट मूर्ति धर्म ही है। परमात्माका ध्यान भजनादि धर्मकी सर्वोच्च साधना है। साधु धर्मात्मा गण उसी श्रेष्ठ साधना द्वारा धर्मके निगूढ तत्वोंको प्राप्त करते हैं। पापी पामर लोग विपरीत मार्ग पर चल कर धर्मके प्रति ग्लानि उत्पन्न करते हैं।

धर्मकी रक्षा और अधर्मको अपसारित करनेके लिये स्वयं भगवान् जन्म लेते हैं—अथवा अपनी विशिष्ट विभूतिको जन्म देकर संसारका परित्राण करते हैं।

जिस समय शङ्कर-स्वामीका जन्म हुआ—उस समय धर्मके लीलाक्षेत्र भारतवर्षमें लोग धर्मसे विमुख हो रहे थे। नास्तिक, बौद्ध, धर्मके प्रभावसे सनातन हिन्दू-धर्म विलुप्तप्राय हो रहा था। वेद और धर्म-मार्गको परित्याग कर भारतवासी विपथगामी हो रहे थे। धर्मके नाम पर नाना प्रकारके अत्याचार किये जा रहे थे। सद्धर्मकी प्रकाश-रेखाके अस्तमित होनेका उपक्रम हो रहा था। परम कल्याण प्रदायक भारत, शुभ धर्मका आश्रयस्थल हिन्दू-समाज, अनार्य भावोंके गाढ़ अन्धकारसे आच्छन्न हो गया था। किसी महापुरुषके आविर्भावके लिये भारतभूमि व्याकुल हो रही थी। उसी सनातन वैदिक-धर्मकी रक्षाके लिये, पतित भारतके उद्धारके हेतु, आचार्य शङ्कर भारतभूमि में अवतीर्ण हुए। उन्होंने लुप्त होते हुए भारत-धर्मकी रक्षा की। अपने को उस कामके लिये न्योछावर कर दिया। उन्हीं शङ्कराचार्यको अवतार समझ कर कौन हिन्दू-सन्तान है, जो पूजा करनेमें कुण्ठित हो? अवतार रूपमें अविर्भूत होकर अनेक महापुरुष अनेक महत्-कार्य साधन करते हैं। किन्तु उन महत् कार्योंमें भी धर्म-रक्षा सर्वश्रेष्ठ है। क्योंकि धर्मकी स्थापना, धर्मकी रक्षा करना—भगवान्‌का अपना कार्य है। धर्मके आधार पर जगत् स्थित है। धर्म ही जगत्‌की वास्तविक और एक मात्र उन्नतिका व्यापार है। सृजन-व्यापार और उत्कर्षण-प्रक्रिया एक ही वस्तु है और धर्म ही उस उत्कर्षणका मुख्य उपाय है। जगत्‌की दुष्टों दैत्योंने रचना नहीं की। यह तो परमज्ञानमय, दयामय, प्रेममय भगवान्‌का सृष्ट व्यापार है। मङ्गल ही जगत्‌का उद्देश्य है—और कल्याण ही जगत्‌की परिणति है। इसलिये कल्या-

णमय भगवान्के सृष्ट-व्यापारका उद्देश्य या परिणाम कभी अशुभ अथवा ध्वंसकारी नहीं हो सकता। जो महापुरुष इस धाराधाममें आकर धर्मकी रक्षा करते हैं, विलुप्त होते हुए धर्मको बचाते हैं, वे अवश्य ही अवतार हैं, भगवान्की विशेष विभूति हैं, इसलिये भगवान् शङ्कराचार्यने अपनी छोटीसी आयुमें नास्तिकवादको हटाकर जो आस्तिकताका प्रचार किया, वह अवश्य ही किसी साधारण पुरुषका काम न था।

हिन्दू-शास्त्रोंमें कई प्रकारके अवतारोंका वर्णन है। पूर्ण अवतार, अंश-अवतार, कला-अवतार, आवेश-अवतार प्रभृति ही मुख्य हैं। दस अवतारोंको छोड़ कर और भी कितने ही अवतार हैं, जिनकी हिन्दूजाति पूजा करती है। व्यास, नारदादिको जैसे कलावतार समझा जाता है, उसी प्रकारसे शङ्कर स्वामीको हिन्दू, भगवान् शङ्करका अवतार समझते हैं।

यहां एक प्रश्न उपस्थित होता है कि यदि धर्म-रक्षा और धर्म-संस्थापनके लिये ही अवतारका आविर्भाव होता है, तो हिन्दू लोग बुद्धको क्यों अवतार मानते हैं? क्योंकि नास्तिक, बौद्ध धर्मके उद्भावक और प्रचारक तो बुद्धदेव ही थे। इसके सम्बन्धमें विद्वानोंका बहुत मतभेद है। बहुतसे विद्वानोंके मतमें महात्मा बुद्ध नास्तिक और निरीश्वरवादी नहीं थे। ईश्वरका अस्तित्व नहीं है, भगवान्की आराधना मत करो—महात्मा बुद्धने ऐसा कभी नहीं कहा। इसके अतिरिक्त बहुतसे विद्वानोंके मतसे महात्मा बुद्ध धर्म-प्रचारक न होते हुए भी नीति-प्रचारक तो थे ही। उन द्वारा प्रचारित या उद्भावित नीति कितनी उच्च, कितनी महान् है, इसे सभी विद्वानोंने एक स्वरसे स्वीकार किया है। वास्तविक बौद्धत्त्वका बाह्य-भाग यद्यपि धर्म समन्वित नहीं है, तथापि यह कोई नहीं कह सकता कि वह एक अत्युच्च नीति-तत्त्व नहीं है—या गम्भीर धर्म-भित्ति पर ग्रथित नहीं हुआ।

बौद्ध-नीतिमें कहीं भी जघन्य सुखवाद या प्रत्यक्षवादकी तरहसे अध्यात्म-हीनताका उल्लेख नहीं पाया जाता। शङ्कर-स्वामीके विशुद्ध अद्वैत सिद्धान्तको नवीन वेदान्तियोंने जिस प्रकारसे तोड़-मरोड़ कर कुछका कुछ बना दिया है, सम्भव है इसी प्रकारसे बुद्धके अनुयायियों ने भी बहुत कुछ उलटफेर कर दिया हो। ऐसी दशामें बुद्धको नास्तिक अथवा निरीश्वरवादी कहना, न्यायसङ्गत नहीं है।

और एक बात है। संसार परिवर्तनशील है। सदा एकसा युग नहीं रहता। भाव और प्रकृतिका सदा परिवर्तन होता रहता है। यदि ऐसा न हो तो सृष्टि-प्रक्रिया व्यर्थ हो जाय। सृष्टि-वैचित्र्य जाता रहे। यदि जगत्के इस लीलाक्षेत्रमें अनादि अनन्तकाल तक एक ही भाव बना रहे, तब तो लीलामय भगवान्के अस्तित्वमें ही सन्देह होने लगेगा। संसारके इस व्यापारको अन्ध जड़-शक्तिकी अन्ध-क्रिया ही कहना होगा। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि उस सृजन-व्यापार का उद्देश्य धर्म-वा उन्नति अथवा मङ्गल कभी नहीं हो सकता। यदि अन्धशक्तिके अन्धकार्योंका अन्ध फल, ध्वंस या व्यर्थ ही हो तो सृजन-प्रक्रियाकी परिपाटी भी वैसी ही अर्थहीन होनी चाहिये। तात्पर्य यह है कि विशुद्धि-साधन या उन्नति-उत्कर्षण ही सृष्टिका उद्देश्य है। पाश्चात्य विद्वानोंने भी सृष्टि-व्यापारको उत्कर्षण-प्रक्रिया ही कहा है। सुनीति और सद्धर्म उस उन्नति-उत्कर्षणका प्रकृष्ट-पन्था है। इस लिये जो कुनीति कुधर्म वा अधर्मको समाजसे हटाकर सुनीति और सद्धर्मकी प्रतिष्ठा करते हैं, वे ही महापुरुष हैं। वे ही भगवान्के अंश विशेष वा अवतार हैं। शङ्कर-स्वामीने भी बौद्धधर्म और बौद्ध युगके कदाचार और कुनीतिको हटा कर, उसके स्थानमें कल्याणमय सत्य सनातन वैदिक धर्मकी पुनर्स्थापना की थी। इसी लिये सनातन-धर्मी शङ्कर स्वामीको शङ्करका अवतार मान कर उनकी पूजा करते हैं।

शंकरके आविर्भावका कारण ।



(पूर्वाभास)

शास्त्रोंमें कहा गया है कि सब जन्मोंमें नर-जन्म ही श्रेष्ठ है। क्योंकि और जन्म तो केवल तुच्छ भोग-वासनाओंकी तृप्तिके लिये हैं और मनुष्य जन्म है, मोक्ष-प्राप्तिके लिये। भोग दो भागोंमें संघटित होता है। एक अनुकूल वेदना जनित सुख-भोग, दूसरा प्रतिकूल वेदना जनित दुःख-भोग। जन्म ग्रहण करने अथवा देह धारण करनेपर इन दोनों प्रकारके भोगोंमेसे एक प्रकारके भोगको तो भोगना ही पड़ता है। इनसे कोई भी परित्राण नहीं पा सकता। जीव नर-देह धारण करके सुख-दुःखसे परित्राण पा सकता है। मुक्ति हो सकती है। परन्तु इसका एक मात्र मार्ग है, धर्म-साधना। शास्त्रोंमे लिखा है कि आहार, निद्रा, भय, मैथुन आदिकी नीच प्रकृति, पशुओंकी तरहसे मनुष्योंमे भी रहती है। परन्तु धर्मके कारण ही मनुष्य, पशुकी अपेक्षा श्रेष्ठ है। इसी धर्म-साधना द्वारा मनुष्य देवत्त्व लाभ कर सकता है, त्रिविध दुःखोंसे उद्धार पाकर महा निर्वाण और निःश्रेयस का अधिकारी हो सकता है। इसी लिये हिन्दूशास्त्रोंमें मानव-देहको ही सर्वश्रेष्ठ कहा गया है।

पुराणोमे लिखा है कि नर-देह पानेके लिये स्वर्गके देवता भी लालायित रहते हैं। कारण कि स्वर्गमें भी उन्हें उस परमानन्द और सुखकी प्राप्ति नहीं हो सकती, जो नर-जन्म धारण करके पा सकते हैं। मुक्ति प्राप्त करके ही जीव संसारके सुख-दुःखोंसे परित्राण पा सकता है। मानव-जन्म धारण करके ही साधना हो सकती है, और

उस साधनासे ही सिद्धि प्राप्त होती है, जिससे परमानन्दकी प्राप्ति होती है। हिन्दू-शास्त्रोंमें नर जन्मकी ऐसी ही महिमा गाई गई है। हिन्दुओंके लिये हिन्दू-शास्त्रोंका मानना परमावश्यक है। क्योंकि 'पर धर्मो भयावह' के अनुसार इस व्यवस्थाको माननेके लिये हम वाध्य हैं। उन्हीं हिन्दू-शास्त्रोंमें भारतवर्षको धर्म-क्षेत्र और भगवान् की लीलाभूमि कहा गया है। वास्तवमें देखा जाय तो भारतकी इस महिमाकी तुलना भी नहीं हो सकती। धर्मके सूक्ष्म-तत्व, साधनमार्ग, धर्मकाण्डका ऐसा अच्छा भाव-विकास संसारमें और कहीं नहीं हुआ है। पाश्चात्य वैज्ञानिकोंने भी भारतके आध्यात्मवादको ही सर्व-श्रेष्ठ बताया है। धर्मकी ऐसी गूढ़ साधन-प्रक्रिया, ऐसा उत्तम साधन-व्यापार, ध्यान, धारणा और योग-समाधि द्वारा महामुक्तिकी प्राप्तिका निरूपण, केवल हिन्दूशास्त्रोंमें ही प्रतिपादित हुआ है। इसीलिये सभ्यता-गर्वसे गर्वित और विज्ञानबलसे बलियान्, पाश्चात्यजगत् मुग्ध नेत्रोंसे भारतको देख रहा है। पाश्चात्यजगत् आज बड़े-बड़े वैज्ञानिकोंको जन्म दे करके भी मुक्तिके लिये भारतकी ओर ही नजर दौड़ा रहा है! इस लिये जिन लोगोंका जन्म इस भगवान्‌की लीला-भूमिमें होता है, वे धन्य हैं।

भगवान्‌की लीलाभूमि भारतवर्षमें जब धर्मकी ग्लानि होती है तो भगवानका आसन डोलने लगता है। वे धर्मकी पुनर्स्थापनाके लिये किसी विशेष आत्माको जन्म देकर इस भारतभूमिमें भेजते हैं। उन्हींको हम अवतार कहते हैं—भगवान्‌की विशिष्ट विभूति समझते हैं। बौद्ध-युगमें जिस समय भगवान्‌की लीला-भूमि भारतमें धर्मके प्रति ग्लानि उत्पन्न होने लगी, तो भगवान्‌का ध्यान आकृष्ट हुआ। तब भगवान्‌ने शङ्करको शङ्करके रूपमें भारतमें भेज कर धर्म-सङ्कटसे भारतकी रक्षा की। 'शङ्कर-दिग्विजय' में भगवान् शङ्करके भारतमें

जन्म लेने या अवतार धारण करनेका जो उल्लेख हुआ है, उसीका हम यहा संक्षेपमें वर्णन करते हैं। जो पाठक इस प्रकारकी पौराणिक बातों पर विश्वास करते हों, वे इस अध्यायको पढ़ें और जो न विश्वास करते हों, इसके पृष्ठ उलट कर प्रथम-परिच्छेदसे पढना आरम्भ करें। इसकी सत्यताके सम्बन्धमें और युक्ति अथवा तर्ककी आवश्यकता नहीं है।

'शंकर-दिग्विजय' में लिखा है कि जिस समय बौद्ध-धर्म और वाम-मार्गके कारण भारतमें धार्मिक विप्लव उपस्थित हो रहा था, उस समय भगवान्‌के प्रिय पार्षद देवर्षि नारद भारतमें भ्रमण करके इस धर्म-विप्लवको देख रहे थे। धर्मके नितान्त मलिन स्वरूपको देख कर धर्मप्राण देवर्षि नारदको निदारुण व्यथा हुई। हिमालयमें बैठ कर उन्होंने इस अधर्म-व्यापार पर बहुत कुछ सोच-विचार किया। वे सोचने लगे कि भगवान्‌की इस लीलाभूमि भारतवर्षमें जहां वेदोंका आविर्भाव हुआ था, कैसी उन्मत्तता छा रही है! धर्मका स्वरूप कैसा विकृत कर दिया गया है! कहीं जीवित पशु-पक्षियों और मनुष्योंका बलिदान करके देवी-देवताओंको प्रसन्न करनेकी चेष्टा की जा रही है—और कहीं वेद और ईश्वरको ही माननेसे इन्कार कर दिया गया है! भारतकी ऐसी दुर्गम अवस्थाको देख कर नारद मुनि बहुत दुःखी हुए और भारतवर्षमें धर्मकी पुनः स्थापना करनेके लिये वे कोई उपाय सोचने लगे। बहुत सोच-विचारके बाद भी जब वे कुछ निश्चित न कर सके, तो वे सीधे अपने पिता ब्रह्माके पास पहुंचे। विश्व-विरञ्ची ब्रह्माने पुत्र नारदको व्यथित देख इसका कारण पूछा। नारद मुनिने भारतकी जो अवस्था हो रही थी, उसका उल्लेख कर कोई उपाय करनेको कहा। ब्रह्मदेवने कुछ सोच-विचार कर कहा कि "वत्स, देवाधिदेव ही इसका कुछ उपाय कर सकते हैं।

तुमने भारतमें जैसे धर्म-विप्लव होनेकी बात सुनाई है, उसका उपाय एक मात्र महादेव ही कर सकते हैं।" ब्रह्मदेवकी बात सुन कर नारद-मुनिने कहा—ठीक है तब वहीं चलिये।

यथासमय नारदमुनि और ब्रह्मा, देवोंके अधिपति महादेवके पास पहुंचे। महादेवने कुशल मङ्गलके पश्चात् आगमनका कारण पूछा। तब नारद मुनिने भारतकी दुर्दशाका वही कच्चा-चिठ्ठा कह सुनाया—और भारतके इस धर्म-सङ्कटको दूर करनेकी प्रार्थना की।

उत्तरमें महादेवने कहा,—"मै पहलेसे ही इस विप्लवको देख रहा हूं। भारतके इस धर्म-सङ्कटको टालनेके लिये हम लोगोंको शीघ्र ही नर-देह धारण कर भारतमे अवतरण करना होगा।" इसके बाद तीनोंने परामर्श कर यह निश्चय किया कि शङ्कर तो शङ्करके ही रूप में—तथा कार्तिकेय कुमारिल भट्टके रूपमें और सरस्वती भारतीके रूपमें तथा इन्द्र राजा सुधन्वाके रूपमें भगवान्के लीला-क्षेत्र भारतमें अवतीर्ण होकर अधर्मको अपसारित करें—और उसके स्थानमें धर्म की पुनर्स्थापना करें। इसी निश्चयके अनुसार चारोंने भारतमें जन्म ग्रहण कर धर्म-विप्लवको दूर किया। जिसका विशद वर्णन अगले परिच्छेदसे आरम्भ होता है।



शङ्कराचार्य ।

प्रथम-परिच्छेद ।

शङ्कर-स्वामीका वंश ।

—:*:—



ङ्कर-दिग्विजय'में लिखा है कि शङ्कर-स्वामीका जन्म, मालावार प्रान्तके काल्टी नामक ग्राममें हुआ था। यह ग्राम पूर्ण-नदीतटस्थ पार्वत्य-प्रदेशमें स्थित था। दक्षिण मालावारमें संस्कृतका पहले भी बहुत अधिक प्रचार था और आजकल भी और प्रान्तोंकी अपेक्षा वहां अनेक विद्वान् शास्त्र-पाराङ्गत पण्डित और वेद-पाठी अधिक पाये जाते हैं। काल्टी-ग्राममें ब्राह्मणोंका ही अधिक निवास था। सभी ब्राह्मण कर्मनिष्ठ विद्वान् और वेदपाठी तथा सदाचारी होते थे। उस समय वेदों और दर्शनों तथा उपनिषदोंको कण्ठस्थ करके रखने का रिवाज था। शङ्क-स्वामीके पितामहका नाम विद्याधर या विद्याधिराज था। ये नाम्बूरी ब्राह्मण थे। इनके वंशमें सदा ही बड़े-बड़े विद्वान् होते चले आये थे। विद्याधर पण्डित भी बड़े विद्वान्, सदाचारी थे। इनकी प्रकाण्ड-विद्वत्ताको देख कर केरलके महाराजने इनको आकाश-लिङ्गके महादेव-मन्दिरका प्रधानाध्यक्षपद प्रदान किया था। विद्याधर पण्डित गृहस्थ होते हुए भी सांसारिक वासनाओंमें आसक्त नहीं रहते थे। वे परम शैव और शंभुके अनन्य भक्त थे। आकाश-लिङ्गके इस मन्दिरके नाम एक बहुत बड़ी जायदाद भी केरलाधिपति

की ओरसे प्रदान की हुई थी, जिससे पर्य्याप्त आय होती थी। इसी से विद्याधर पण्डितके गृहस्थका निर्वाह होता था। विद्याधर पण्डित बड़े सरल-साधुस्वभाव मितभाषी और उदारमना थे। अपने घर-गृहस्थ के कामोंसे बहुतसा धन बचा कर वे दीन-दरिद्र लोगोंकी सेवा किया करते थे। लोग उनकी इस उदारता तथा प्रगाढ़ शिव-भक्तिको देख कर उनका सम्मान करते थे।

यथासमय विद्याधर पण्डितकी धर्मपत्नीके गर्भसे इनके यहां एक पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्रके सुन्दर मुखमण्डल और प्रशस्त ललाटको देख कर विद्याधर पण्डित बहुत प्रसन्न हुए और इस पुत्रको भगवान पिनाकपाणिका प्रसाद समझकर उसका नाम रखा शिवगुरु। यही शिवगुरु शंकर-स्वामीके पिता थे।

उपयुक्त वयस प्राप्त होने पर बालक शिवगुरुने उपवीत धारण कर [illegible]त्व लाभ किया। इसके बाद विद्या प्राप्त करनेके लिये इनको गुरु के ब्रह्मचर्य्याश्रममें भेजा गया। बहुत थोड़े समयमें ही शिवगुरुने अपनी प्रचण्ड प्रतिभाके कारण वेद-वेदाङ्गोंको पढ डाला। ऐसे विलक्षण शिष्यको पाकर उनके गुरु भी प्रसन्न हुए। शिक्षा समाप्त होनेपर गुरुदेवने ब्रह्मचारी शिवगुरुसे कहा,—"वत्स, तुम्हारी शिक्षा साङ्गोपाङ्ग समाप्त हो गई। ब्राह्मण बालकके लिये जिन विद्याओंका पढ़ना आवश्यक था, उनमें तुम पाराङ्गत हो गये। वेद-वेदाङ्ग और दर्शनों में तुमको उपयुक्त व्युत्पत्ति लाभ हो गई है। अब जाओ और जाकर गृहस्थाश्रममें प्रवेश कर अपने माता-पिताको प्रसन्न करो।"

पुत्र शङ्करकी तरहसे पिता शिवगुरु भी बाल्यावस्थासे ही संसार से अनासक्त और उदासीन-भावापन्न रहते थे। गुरुकी उपरोक्त आज्ञा को सुन कर नवयुवक विद्वान् शिवगुरु विपण्णमन होकर नीरव रहे। गुरुने पुत्र-सम शिष्य शिवगुरुको इस प्रकारसे उदासीन देखकर विप-

ण्णताका कारण पूछा। तब विद्वान् शिष्य शिवगुरुने अत्यन्त नम्र होकर विनीत भावसे कहा,—"गुरुदेव, मेरी संसारमें और वासना नहीं है। आपकी शिक्षाके प्रभावके मेरी संसारसे मोह-ममता विनष्ट हो गई है। मुझे ऐसा स्पष्ट प्रतीत हो रहा है कि ये संसारके सुख-दुःख क्षणभंगुर हैं। मुझे तो ऐसा ज्ञात होता है कि यह संसार दुःखों की खान है। संसारकी विषय-वासनाओंमें लिप्त रह कर ही जो लोग जिस सुखको अनुभव करते हैं, वह मूढों और मूर्खोंके लिये ही उपा-देय है। परन्तु जो मनुष्य तत्त्व अनुशीलन करके प्रकृष्ट पथका पथिक होना चाहता है, उसके लिये संसारके ये सुख अत्यन्त असार और हेय हैं। विद्वान् और ज्ञानी व्यक्ति भी यदि इन सांसारिक सुख वास-नाओंमें लिप्त हो तो उसको भी मतिभ्रम हुए विना न रहेगा। तत्त्वको भूल कर वह भी मूढ़मति हो जायगा और सांसारिक सुख-भोगके लिये उन्मत्त हो उठेगा। मानव-जीवनके वास्तविक उद्देश्यको भूल जायगा। संसारमें रहनेसे कामिनी-काञ्चनका प्रलोभन इतना अधिक आकर्षण करता है कि विद्वान् और ज्ञानी पुरुष भी फिर सरलतासे उससे उद्धार नहीं पा सकता। इन वातोंकी मन ही मनमें मैं जितनी ही विवेचना करता हूं, मुझे उतनी ही संसारसे घृणा होती जाती है। गुरुदेव, इस लिये मेरी एकान्त वासना है कि मैं सदा ही आपकी सेवा में रह कर वेदोंका अनुशीलन और अध्यात्म विद्याकी परिचर्य्या तथा वेदान्त वाक्योंको श्रवण करता हुआ इस जीवनको व्यतीत करूं। अब फिरसे संसारमें प्रवेश करके देह और मनको कलुषित करनेकी इच्छा नहीं होती। अब तो यही इच्छा है कि जब तक यह नश्वर शरीर संसार में रहे, आपकी सेवामे रहकर तत्त्व-विद्याका अनुशीलन करता रहूं।"

गुरुदेव, तरुण वयस्क गुरुभक्त शिष्य शिवगुरुके मुखसे ऐसी ज्ञानपूर्ण बात सुन कर, क्षणभरके लिये उसके मुखको देखते रहे।

थोड़ी देरके पश्चात् बोले,—"वत्स, तो फिर क्या तुम घर वापस जाना नहीं चाहते ? परन्तु संन्यास ग्रहण करनेका समय भी तो अभी नहीं आया । संसारमें रह कर जो माता-पिताकी सेवा नहीं करता, आश्रित अनुगत तथा आत्मीय स्वजनोंका प्रतिपालन तथा अतिथि-सेवादि शुभ कर्मों को नहीं करता, वह उच्चादर्शका प्रतिपालक और श्रेष्ठ मार्ग का अधिकारी नहीं हो सकता । गृहस्थाश्रममें रह कर ही मनुष्य देव-ऋण, ऋषिऋण और पितृऋणसे उन्मुक्त हो सकता है—और जब तक इन ऋणोंसे उऋण न हो जाय, मानव-जीवनकी कोई भी तपस्या और धर्म-साधना सिद्ध नहीं हो सकती । वत्स, इन सब बातोंको विचारते हुए तुम्हारा यही कर्तव्य है कि तुम गृहस्थाश्रममें प्रवेश कर अपने माता-पिताको प्रसन्न करो । तुम्हारे लक्षणोंसे मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि निकट भविष्यमे तुम्हारे द्वारा संसारका कोई महान् कार्य सिद्ध होने वाला है । इस लिये अब तो तुम जाओ और गृहस्थाश्रममें प्रवेश कर अपने कर्तव्यको पूरा करो, पीछे वय प्राप्त होने पर यदि उचित प्रतीत हो तो संन्यास-धर्मको ग्रहण करना ।"

गुरुसे कर्तव्याकर्तव्यका उपदेश सुन कर ब्रह्मचारी शिवगुरुने गुरुदेवके चरणोंमें प्रणाम किया और गुरु-दक्षिणा देकर—आशीर्वाद ग्रहण कर अपने घरको प्रस्थान किया ।

ब्रह्मचर्य्याश्रमसे विद्याध्ययन कर घर लौटने पर विद्वान् पुत्र शिव-गुरुको पाकर माता-पिता अत्यन्त आह्लादित हुए । शिवगुरुकी विद्वत्ताकी चर्चा समस्त प्रदेशमें होने लगी । कितने ही सम्पन्न और विद्वान् सजातीय ब्राह्मणोंने अपनी-अपनी कन्याओंके साथ शिवगुरु का विवाह करनेका प्रस्ताव किया । अन्तमें मगध पण्डित नामके एक सम्पन्न ब्राह्मणकी विदुषी भक्तिमयी साध्वी सुशीला कन्या कामाक्षी-देवीके साथ बड़े समारोहसे शिवगुरुका विवाह हो गया ।

विवाहके अनन्तर दाम्पत्य-प्रेमसे परितृप्ति प्राप्त कर शिवगुरु बड़े आनन्दके साथ समय व्यतीत करने लगे। इसी प्रकारसे अनेक वर्षों के व्यतीत हो जाने पर पति पत्नीका यौवनकाल समाप्त होने लगा। अभी तक किसी सन्तानका मुख नहीं देखा था। सन्तानके अभावसे दोनों पति-पत्नी सदा दुःखी रहते थे। एक दिन मन ही मनमें शिवगुरु सोचने लगे—कि हाय! यह क्या हुआ? गुरुकी आज्ञासे गृहस्थाश्रममें प्रवेश कर दार-परिग्रह भी किया, परन्तु गृहधर्मका सर्वश्रेष्ठ उपादान पुत्र प्राप्त न हुआ! गृहस्थाश्रममें प्रवेश करके इतना समय व्यतीत होने पर भी जब पुत्रोत्पन्न नहीं हुआ, तो इस आश्रममें और अधिक दिन तक अवस्थान करनेसे लाभ ही क्या है? किन्तु विना पुत्रके पिण्डदान कौन देगा—और विना पिण्डोदकके अनन्त-काल तक रौरव नर्कमें वास करना होगा। पितृ-पुरुषगणोंका पिण्डोदक लुप्त होने पर कुल-धर्म कलुषित होगा। इसलिये पुत्रहीन अन्धकारमय जीवन व्यर्थ है। इस प्रकारसे विचार करके बड़ी उदासीनता से जीवन व्यतीत होने लगा। पतिव्रता पत्नी भी पुत्राभावसे दुःखित और मर्माहत हुई और नितान्त विषण्णताके साथ जीवन-भार वहन करने लगी।

पतिको अत्यन्त उदासीन देख बुद्धिमती धर्मशीला पत्नीने एक दिन पतिसे कहा,—"आर्य, इस प्रकारसे विषण्णमन होकर और अधिक दिन तक काल अतिवाहित करनेसे क्या लाभ? आप तो सर्व शास्त्रों के पण्डित हैं और मैं साधारण बुद्धि रखने वाली साधारण स्त्री। मैं आपको क्या परामर्श दे सकती हूं? परन्तु तब भी मनमें एक भावना का उदय हुआ है। मैं उस भावको आपके सम्मुख अधिक दिन तक व्यक्त किये विना नहीं रह सकती। क्योंकि पति ही पत्नीकी एक मात्र गति है। सुख-सौभाग्य, दुःख-दुर्दशा अर्थात् किसी भी प्रकारके भाव

का मनमें यदि उदय हो तो पति-परायणा स्त्रीका यह कर्तव्य है कि वह पतिदेवके चरणोंमे निवेदन करे।"

पत्नीकी बात सुन कर शिवगुरुने कहा,—"प्रियतमे, तुमने जो कुछ कहा है वह अतीव सत्य है। पत्नीके मनमें दुःख सुखके सम्बन्धमें जो भी भाव उदय हों, उन्हे अकपट भावसे पतिके सामने निवेदन कर देना पति-परायणा साध्वो पत्नीका कर्तव्य है। इस समय जो स्थिति उत्पन्न हुई है, उससे हम दोनों महा दुःखी हैं। तुम्हारे मनमें किन भावोंका उदय हुआ है, तुम अकपट हो, व्यक्त करो। सम्भव है—उससे कोई मार्ग दर्शित हो।"

पतिके वाक्योंसे उत्साहित होकर कामाक्षीदेवीने कहा,—"स्वामी, मेरे मनमें यह बात आती है, कि पुत्राभावसे इस प्रकारसे व्याकुल होकर समय व्यतीत करनेसे क्या लाभ? इससे तो अच्छा यही होगा कि पुत्र-प्राप्तिके लिये हम देवाराधन करें। सम्भव है प्रसन्न होकर भगवान् हम पर दया करें। अनेक युगोंसे ऐसा होता चला आया है। अतएव हम भी पुत्र-लाभके लिये व्रत-उपासना और जप-तपका अवलम्बन कर कुलके इष्टदेवता भगवान् पिनाकपाणिको प्रसन्न करें। यदि देवाधिदेव महादेवको अपने जप-तपसे प्रसन्न कर सके, तो अवश्य ही उनकी कृपासे हमे पुत्र-रत्नकी प्राप्ति होगी।"

बुद्धिमती पत्नीकी मर्मस्पर्शी बात सुन कर विद्वान् पति शिवगुरु अत्यन्त प्रसन्न हुए और उसी दिनसे कठोर व्रत धारण कर दोनों पति-पत्नी महादेव-शिवकी आराधनामें प्रवृत्त हो गये। कभी आधे पेट और कभी बिलकुल उपवास करके तथा कभी कन्द-मूल-फल खाकर कठिन शिव-साधना करने लगे। अन्तमें शिवगुरु शीतकालमे जलमग्न होकर और ग्रीष्मकालमें हुताशन प्रज्वलित कर कठिन साधना सम्पन्न करने लगे।

बहुत दिनोंकी तपश्चर्याके बाद आशुतोष शङ्कर उनका तपस्यासे सन्तुष्ट हुए। एक दिन सोते हुए शिवगुरुने स्वप्नमें देखा कि एक वृद्ध ब्राह्मण प्रसन्न होकर उनसे कह रहा है कि,—"वत्स तुम्हारी तपस्या सफल हुई। तुमको शीघ्र ही पुत्र-फल लाभ होगा। परन्तु तुमसे मैं एक प्रश्न पूछना चाहता हूं। पुत्र तुमको दो प्रकारके मिल सकते हैं। एक तो परम ज्ञानी और महान् विद्वान् साधु स्वभावका मिल सकता है। किन्तु उसकी आयु बहुत थोड़ी होगी। दूसरे प्रकार का पुत्र मूर्ख ज्ञानहीन होगा, किन्तु उसकी आयु बड़ी होगी, वह दीर्घ काल तक जीवित रहेगा। इन दोनों प्रकारके पुत्रोंमेंसे किस प्रकारका पुत्र चाहते हो, सो सरल हृदयसे स्पष्ट कहो।"

स्वप्न देखते ही देखते शिवगुरुने कहा,—"देव, मूर्ख पुत्र तो यमके समान होता है। वैसे पुत्रसे तो पुत्रहीन ही रहना मङ्गल-जनक है। यदि आप सचमुच हम लोगोंके तपसे प्रसन्न हुए हैं, तो साधु विद्वान् और ज्ञानी पुत्र प्रदान करनेकी ही कृपा कीजिये।"

'तथास्तु' कह कर वृद्ध ब्राह्मण अन्तर्धान हुए। इधर आंख खुलने पर परम प्रसन्न होकर शिवगुरुने पत्नीको बुला कर कहा,—"प्रियतमे, प्रतीत होता है कि इतने दिनोंके बाद देवाधिदेव महादेव हम पर प्रसन्न हुए हैं। मुझे स्वप्न हुआ है कि शीघ्र ही हमारी मनोकामना पूर्ण होगी।" इस प्रकारसे कह कर शिवगुरुने स्वप्न-व्यतीत समस्त घटना पत्नीको कह सुनाई। महिमामयी साध्वी धर्मपरायणा कामाक्षी-देवी स्वप्नकी बातको सुन कर परम आनन्दित हुई।

इसके पश्चात् जप-तप और व्रतका उद्यापन कर साधना समाप्त की गई और दोनों धर्मपरायण पति-पत्नी धर्मशास्त्रके मन्तव्यानुसार पुनः गृहस्थाश्रमका पालन करने लगे।

—०—

द्वितीय-परिच्छेद।

जन्म और शिक्षा।

—:*:—

शङ्कर-स्वामीके जन्मके सम्बन्धमें इतिहासकारोंमें बहुत बड़ा मत-भेद है। परन्तु बहुत कुछ ऐतिहासिक मीमांसाके पश्चात् ऐतिहासकोंने जो निष्कर्ष निकाला है, उसके अनुसार शङ्कर-स्वामीका जन्म संवत् ८४५ विक्रमी तदनुसार सन् ७८८ ई० में ही होना युक्तियुक्त प्रतीत होता है। 'भोजप्रबन्ध'में भी शङ्कर-स्वामीका उल्लेख है। उससे भी यही समय समीचीन मालूम होता है। दूसरा अकाट्य प्रमाण है, बौद्ध के बाद जन्म होना। कुछ भी हो यथासमय देवाधिदेव महादेवके वर के अनुसार शिवगुरुकी धर्मपत्नीके गर्भसे पुत्र उत्पन्न हुआ और क्योंकि यह भगवान् शङ्करके वरदानसे ही उत्पन्न हुआ था, इस लिये इसे शङ्करकी ही विभूति समझ कर इसका नाम भी शङ्कर ही रखा गया। दिन पर दिन शङ्कर बढ़ने लगे और इनके माता-पिता शुक्लपक्ष के चन्द्रमाकी तरह बढ़ते हुए पुत्रको देख कर परम प्रसन्न होने लगे। शङ्करके बाल्यकालके समयके मुखमण्डलको देखकर ही एक प्रकारकी अद्भुत तेजस्विता प्रकट होने लगी थी। इसके पश्चात् थोड़े दिनों पश्चात् ही शङ्करने अपनी असाधारण अमानुषिक प्रतिभाका जब परि-चय देना आरम्भ किया, तब सभी लोग इस अद्भुत काण्डको देख कर विस्मित एवं मुग्ध होने लगे। पुत्रको अल्प वयसमे प्रतिभा सम्पन्न देख कर भक्त और पण्डित पिताने अध्ययनमें लगा दिया। इसके पश्चात् शङ्करने बड़े मनोयोगसे पढ़ना-लिखना आरम्भ किया और

अपनी असाधारण मेधा और प्रतिभाके फलसे थोड़े ही दिनोंमें अनेक शास्त्रोंको पढ़ डाला। 'शङ्कर-दिग्विजय' में लिखा है कि आठ वर्षकी अवस्थामे ही शङ्कर—कठिन दर्शन शास्त्रोंको समझ कर उनकी व्युत्पत्ति करने लगे थे। इस प्रकारसे शङ्करकी असाधारण मेधा-शक्ति और अद्भुत-प्रतिभाको देख कर स्वयं उनके गुरु और सहपाठी महान् आश्चर्य-चकित हुए और सर्वसाधारण लोग तो उनको उसी समयसे देव-अंश-सम्भूत समझ कर श्रद्धाकी दृष्टिसे देखने लगे।

इसी समय जब शङ्करने आठवें वर्षमें पदार्पण किया, तो कुल-मर्यादाके अनुसार उनका उपनयन संस्कार किया गया। उपनयनके समय सजातीय लोगोंने यह कह कर एक प्रकारकी अड़चन भी उपस्थित की थी कि, शङ्करका जन्म जो माता-पिताकी वार्द्धक्यतामें हुआ है, यह ठीक नहीं है। परन्तु पीछे सब लोगोंने उपनयन कार्यमे योगदान देकर इस आपत्तिका शमन किया।

इसी प्रकारसे शङ्करकी प्रतिभाका चमत्कार दिन पर दिन अधिकाधिक बढने लगा। चारों ओर बालक शङ्करकी अद्भुत बुद्धि और प्रगाढ़ शास्त्रज्ञानकी चर्चा होने लगी। परन्तु इसी समय बालक शङ्करके पिता शिवगुरुका देहान्त हो गया। पिताकी मृत्युसे उनकी माता कामाक्षीदेवी और शङ्कर बड़े दुःखी हुए। इसके बाद पितृ-श्राद्धादिसे निवृत्त होकर शङ्कर, माताके साथ रहकर दिन व्यतीत करने लगे। शङ्कर अल्प वयससे ही संसारसे उदासीन रहते थे। वैराग्य और संन्यासकी ओर उनकी बचपनसे ही स्वाभाविक प्रवृत्ति थी। आज तक संसारमें जैसी प्रकृतिके संसारका उद्धार करने वाले विरक्त-त्यागी संन्यासी और महात्मा गण हुए हैं, शङ्कर भी वैसी ही प्रकृतिके थे। कामिनी-काञ्चन और धन-दौलतसे पहलेसे ही एक प्रकारकी घृणासी थी। बाल्यकालसे ही शङ्कर, सरल और साधु स्वभावके थे। न उनकी

नाना प्रकारके स्वादिष्ट भोजनोंमे रुचि थी, न अच्छे सुन्दर वस्त्राभूषण पहननेकी अभिलाषा। पिताकी मृत्युकी घटनासे शङ्कर और भी अधिक विरक्तसे हो गये थे। संसारकी असारताने उनके हृदय-पट पर एक और ही तरहके भाव अङ्कित कर दिये थे। बाल्यावस्थामें ही शङ्करने यह बात हृदयङ्गम कर ली थी कि यह जीवन जलके बुदबुदे के समान नष्ट होने वाली क्षणभंगुर है। इसके अतिरिक्त संसारमे नित्य होनेवाले परिवर्तनोंको देख कर शङ्करके हृदय पर संसारकी असारताने और भी दृढ़ भावसे अपना प्रभाव जमा लिया था। शङ्कर बचपनसे ही चिन्ताशील थे। पिताकी मृत्युके बाद उनका चिन्ता-स्रोत गम्भीर और उच्च तत्वोंकी खोजके लिये और भी प्रगलभ भाव से प्रवाहित होने लगा। उनकी बार-बार इच्छा होती थी कि निर्जन एकान्त स्थानमें बैठ कर केवल चिन्तन करें और उपयुक्त विद्वानोंसे प्रश्न कर अपने व्याकुल मनको शान्त करें। वे प्राय: नित्य ही बाहर वनों-पर्वतों तथा नदी-तट पर बैठ जाते और आकाशकी ओर बड़ी कातर दृष्टिसे देख कर स्वयं मन ही मनमें प्रश्न करते कि संसारके इस अद्भुत व्यापारका मूल क्या है? इसका आदि कारण कहा और कैसा है? इस प्रकारसे तत्त्व-चिन्तामे निमग्न होकर वे अपने आत्मीय जनों, यहा तक कि स्नेहमयी जननी तकको भूल जाते। इसी प्रकार से सायंकालके समय शङ्करकी एक दिन एक साधु महात्मासे भेंट हो गयी। साधु शङ्करकी अलौकिक मूर्ति और प्रगलभ ज्ञान गाम्भीर्यको देख कर चकित हो गये और कहने लगे कि यह बालक कोई साधारण बालक नहीं है। यह अवश्य ही कोई देव-अंश-सम्भूत और किसी विशेप कार्यके निमित्त इस धराधाममे अवतीर्ण हुआ है। साधु महात्मा बहुत देर तक बालक शङ्करकी गम्भीर मूर्तिको ही देखते रहे। वे जितना ही अधिक देखते, उतना ही उनका कुतुहल बढ़ता जाता।

साधु विद्वान् थे। उन्होंने बड़े आग्रहसे संस्कृतमें पूछा,—'कस्त्वं' ? बालक शङ्करने मृदु हास्यके साथ उत्तर दिया,—'न जाने'। तब साधु ने बालक शङ्करके मनोभावको समझ कर कहा,—"क्या बालक, तुम सचमुच नहीं जानते कि तुम कौन हो ?" शङ्करने फिर उसी मुस्कराहटके साथ उत्तर दिया,—"ना महाराज, मैं नहीं जानता कि मैं कौन हूं ? क्या कृपा कर मुझे आप कोई ऐसी युक्ति बतायेंगे, जिससे मैं जान सकूं कि मैं कौन हूं ?" उत्तरमें साधुने दीर्घ निःश्वास नीक्षेप कर कहा,—"यही तो जगत्के जीवनका सार-तत्त्व है।" साधुकी भाव-भङ्गिको देख कर बालक शङ्करने व्याकुल हो कहा,—"भगवन्, वह तत्त्व क्या है, कृपा कर मुझे नहीं बता दीजियेगा ?" उत्तरमें साधु ने कहा,—"वत्स, वह तत्त्व संसारमें रह कर नहीं जाना जा सकता। उस परम तत्त्वका स्थान संसारसे बाहर है, इस पार्थिव कोलाहलसे बहुत दूर है।" साधुकी बात सुन कर जरा गम्भीर हो शङ्करने दृढ़ता से कहा,—"महात्मन्, वह परम तत्त्व न बाहर है न भीतर और न ऊपर। वह परम तत्त्व तो आपके बिल्कुल निकट, नहीं-नहीं आपके भीतर मौजूद है। आत्मचिन्तन और आत्मदर्शनसे वह तत्त्व अनुभूत और अधिगत हो सकता है।" शङ्करकी निगूढ़ मर्मवाणी सुन साधु और भी आश्चर्यचकित हुए और सोचने लगे कि यह बालक तो वास्तवमें बड़ा ही अलौकिक प्रतीत होता है। सचमुच ही भगवान् द्वारा प्रेरित होकर संसारके कल्याण-साधनके लिये संसारमें अवतीर्ण हुआ है। इसके पश्चात् साधुने शङ्करके मस्तकको स्पर्श कर आशीर्वाद दिया और वहासे प्रस्थान किया। परन्तु शङ्करने भी बहुत दूर तक चुपचाप उनका अनुसरण किया। महात्मा जब मठमें पहुंच गये, तब शङ्करने साधुके चरणोंमें बड़ी व्याकुलतासे लोट कर कहा,— "महात्मन्, अनुग्रह करके मुझे शिष्य रूपमें ग्रहण कीजिये और

संन्यास-धर्ममें दीक्षित कर पारलौकिक आनन्द प्राप्त करनेके मार्ग पर आरूढ कीजिये।" तब साधुने और भी आश्चर्यान्वित होकर कहा,—"मैं तुमको क्या शिक्षा दूं ? किस धर्ममें दीक्षित करूं ? बहुत शीघ्र तुम्हारे चरणोंमें तो मुझसे भी बड़े-बड़े अनेक शिष्य प्रणिपात करते हुए दृष्टिगोचर होंगे।" साधुकी बात सुन कर भी शङ्कर नीरस्त नहीं हुए और बार-बार व्याकुल होकर प्रार्थना करने लगे कि—"मुझ पर तो दया करनी ही होगी। मैं किसी प्रकारसे आपका पीछा नहीं छोड़ूंगा।" शङ्करकी बात सुन कर साधु विरक्त हो बोले,—"वत्स, मेरा पीछा करनेसे तुमको क्या लाभ होगा ? तुमने तो स्वयं कहा है कि अमर तत्त्व अपने ही भीतर मौजूद है। तब बाह्य भाव धारण करके मेरे पीछे घूमनेसे क्या मिलेगा ?" साधुकी बात सुन कर शङ्कर व्याकुलसे से होकर भूमि पर गिर पड़े। तब साधुने विनम्र होकर कहा,—"वत्स, संन्यास धारण करनेका अभी तुम्हारा वयस नहीं है। इसके अतिरिक्त तुम्हारे पिता भी नहीं, न उपयुक्त कोई भ्राता या कौटुम्बिक ही हैं। तुम अपनी स्नेहमयी जननीके एक मात्र अवलम्ब हो। जननीकी आज्ञा और इच्छाके बिना तुम कोई सिद्धि-लाभ नहीं कर सकते। इसके सिवा—वत्स, संन्यास धर्म बड़ा कठिन धर्म है। मूलमें मातृकोप या माताका अनभिप्राय होनेसे संन्यास क्या सब तरहके धर्म-कर्म तक भस्मीभूत हो जाते हैं।" साधुकी बातसे शङ्कर बड़े मर्माहत हुए और भूमि पर एकाग्र मनसे बैठ कर बार-बार हृदयसे प्रश्न करने लगे कि 'मैं कौन हू ?'—साधु तो वहांसे चले गये और शङ्करने वहीं मग्न होकर 'आत्मबोध' नामक अमूल्य ग्रन्थकी रचना कर डाली। 'आत्मबोध' शङ्करको कृतियोंमे एक ज्ञानमय ग्रन्थ समझा जाता है।

इसके बाद शङ्कर बहुत रात्रि तक समाधिस्थ योगीकी तरहसे वहीं बैठे रहे। उधर उनकी स्नेहमयी जननी और आत्मीय गण

अत्यन्त अधीर और उत्कण्ठित होकर उनकी खोज करने लगे। अन्तमें गांव-गली और नदी तट पर कहीं पता न लगा, तो उच्चध्वनि से शङ्करका नाम लेकर पुकारने लगे। किन्तु बालक शङ्कर आत्म-चिन्तनमें निमग्न हुए बैठे थे, उन्हे माता और आत्मीय गणोंकी आवाज तक न सुनाई दी। रात्रिके दूसरे प्रहरके व्यतीत हो जाने पर खोज-तलाश करते हुए आत्मीय गण वहां पहुंचे, जहां शङ्कर समाधिस्थ हुए बैठे थे। उनके आगमनसे शङ्करकी समाधि भङ्ग हुई और वे उनको पकड़ कर घर ले गये।



तृतीय-परिच्छेद ।



वैराग्य और गृह-त्याग ।



बालक शङ्करका वैराग्य-भाव दिन पर दिन अधिकाधिक जाग्रत होने लगा। थोड़े दिनोंके वाद शंकरने संसारके प्रायः सभी कार्यों का त्यागसा कर दिया और दिन-रात इसी चिन्तामें रहने लगे कि किसी प्रकारसे गृह-परित्याग करके सदाके लिये सम्बन्ध-विच्छिन्न हो सके तो ठीक हो। पुत्र शङ्करके इस प्रकारके वैराग्य-भावको देख कर स्नेह-मयी जननी वडी चिन्तित हुई। वे आत्मीयगणोंसे शङ्करको संसारमें आसक्त करनेके लिये परामर्श करने लगीं। आत्मीय-वन्धुओंमेंसे किसीने कहा कि शङ्करको सदा घरके काम-काजमे लगा रखना चाहिये—और समय मिले तो ऐसे आमोद-प्रमोदमें लीन किया जाय जिससे उसे विचार करनेका अवसर ही न प्राप्त हो। दूसरेने कहा कि शङ्करका विवाह यथाशीघ्र होना चाहिये, जिससे कामिनी-काञ्चनके व्यामोहमे फंस कर शङ्कर क्षण भरके लिये भी विरक्त न हो सके। इसी प्रकारसे किसीने कुछ कहा और किसीने कुछ। कुटुम्बियोंसे परामर्श पाकर शङ्कर-जननी कामाक्षीदेवी शङ्करको नाना प्रकारके आमोद प्रमोदोंमें भुलावा देकर रखनेकी चेष्टा करने लगीं। साथ ही शीघ्रातिशीघ्र विवाह-वन्धनमें आवद्ध करनेकी चिन्ता करने लगीं। इधर शङ्करके आत्मीय वन्धु-वान्धव हितैषीगण शङ्करके पास उठ-वैठ कर मति परिवर्तन करनेकी चेष्टा करने लगे। वे अनेक प्रकारके प्रलोभन दिखा कर संसारके सुखोंकी सारवत्ता दिखाते और कहते कि गृहस्थ

से अधिक आनन्द और सुख तो स्वर्गमें भी नहीं है। स्वर्गके देवता लोग भी इस संसारमें जन्म लेनेके लिये तरसा करते हैं। आत्मीय-गण इसी प्रकारकी बातें कहते और संसारसे महा उदासीन और विरक्त शङ्कर उनकी बातोंको उपेक्षा की दृष्टिसे सुन जाते। परन्तु शङ्करके हृदय पर किसीकी किसी बातका प्रभाव न पड़ता। वे अचल, अटल हिमालयकी तरह धीर और दृढ़ भावसे अपने गन्तव्य-पथकी ओर नीरवताके साथ बढ़ने लगे। जो महापुरुष जगत्‌के कल्याणके लिये संसारमें अवतीर्ण होकर महान् आत्म-त्याग करते हैं, वे सांसारिक सुख-दुःखों पर तनिक भी दृष्टिपात नहीं करते। शिव-अवतार शङ्कर तो पाप-परितप्त संसारका उद्धार करनेके लिये ही संसारमें आये थे। जिन्हे संसारका अज्ञान अन्धकार दूर करके सद्धर्म और ज्ञानका प्रचार करना था, भला वे कैसे इन तुच्छ सुख-दुःखोंमें लिप्त होते? स्नेहमयी जननी और आत्मीय बन्धुओंकी इस व्याकुलताको देख कर वे बहुत दुःखी होते और अपनेको पिञ्जरबद्ध पक्षीके समान समझते। वे दिन-रात यही चिन्ता करने लगे कि किस प्रकारसे संसारके इस कारावाससे मुक्त होकर स्वाधीन जीवन व्यतीत किया जाय? किस प्रकारसे संसारके अज्ञानान्धकारको दूर करके उसे महामुक्तिके पथका दर्शन कराया जाय?

इस समय बौद्ध-धर्मके प्रभावसे देशव्यापी बाह्य-वैराग्य और संन्यासका विषम ज्वार-भाटासा आ रहा था। बाल-वृद्ध स्त्री-पुरुष हजारों और लाखोंकी संख्यामें भिक्षुक हो रहे थे। धर्म और वैराग्यका लीलानिकेतन भारतवर्ष देश, आसमुद्र हिमालय पर्यन्त वैराग्याश्रमी बौद्ध, श्रवण और भिक्षुकवर्गके संन्यास आन्दोलनसे आलोड़ित हो रहा था। ऐसी दशामें शङ्करके आत्मीयगणों एवं माताका शङ्करको विरक्त देख कर चञ्चल और चिन्तित होना स्वाभाविक ही था।

आत्मीयगण शङ्करको जितना ही अधिक सांसारिक बन्धनोंमें आवद्ध करनेकी चेष्टा करते, शङ्कर उतना ही अधिक उनका छेदन करते जाते। किन्तु विना माताकी आज्ञा और अनुमतिके कोई सिद्धि सफल नहीं हो सकती, इस बातको सोच कर वे महान व्याकुल हो उठते।

इसी प्रकारसे बहुतसा समय व्यतीत हो गया। शङ्कर वरावर यह सोचते रहे कि इस संसार-बन्धनसे मैं कैसे मुक्त हो सकता हू। उधर उनकी माता और आत्मीयगण यह चेष्टा करते रहे कि किस तरह शङ्करको किसी भी प्रकारसे हो—संसार-बन्धनमे अवश्य शीघ्रातिशीघ्र आवद्ध किया जाय, जिससे वे फिर मुक्तिके लिये न तडफडायें। इसी सयय एक घटना घटित हुई। शङ्कर और उनकी माता एक दिन ग्रामान्तरमें किसीके यहां गये थे। मार्गमें नदी पडती थी। आते समय भी उनको नदी पार करनी थी। नदीमें थोड़ा-थोड़ा जल था। नाव की आवश्यकता नहीं थी। वे घुस गये, परन्तु जब वे बीचमें पहुंचे तो एकाएक पानीकी बहुत अधिक बाढ आ गयी। बाढ़के कारण माता और पुत्र डूबने लगे तो भगवान्का नाम लेकर दोनों त्राहि-त्राहि करने लगे। इसी समय शङ्करने दैवादेश सुना कि यदि वे संसार त्याग कर संन्यास धारण करें—और माता भी सहर्ष अनुमति दे, तो नदीकी बाढ़से त्राण पा सकते है, नहीं तो आज यहीं डूब मरना होगा! शङ्करने संसार-त्यागके लिये इसे सुअवसर समझ कर मातासे विनम्र शब्दोंमें कहा,—"माता, मुझे देवादेश हुआ है कि मैं यहीं संसार-त्याग और संन्यास ग्रहणकी प्रतिज्ञा करूं और तुम मुझे सहर्ष आज्ञा दो तो हम दोनों नदीमे डूबनेसे बच सकते हैं। नहीं तो यहीं डूब मरना होगा। बोलो माता, शीघ्र बोलो! और समय नहीं हैं। तुम मुझे भवसागरसे पार उतरनेकी आज्ञा देती हो या यहीं नदीमें मेरे साथ जल-समाधि लेनेको तैयार हो? देखो, देखो! माता, मेरे कण्ठ

तक चल चढ़ा जाता है। सोचने-विचारनेका और समय नहीं है। जो कुछ कर्तव्य हो, क्षण भरमे निर्णय करो—नहीं तो अभी हाल ही इस नदीमें दोनों डूबते हैं!" स्नेहमयी जननी एक तो वैसे ही पुत्र सहित जलमें डूबने लग रही थी, दूसरे शङ्कर द्वारा देवादेशको सुन कर क्षण भरके लिये अचेतसी हो गई। उसके लिये दोनों ओर विपद् थी। यदि पुत्रको संन्यास-ग्रहणकी अनुमति न प्रदान की जाय, तो क्षण भरमें दोनोंको यहीं नदीमें डूब मरना होगा। उधर जीवित पुत्रके सुख-सौभाग्यको न देखना—और संसार-त्यागकी आज्ञा देना, माता के लिये बड़ी ही मर्मान्तक वेदनाका कारण था।

स्नेहमयी माताका एक मात्र उपाय, एकमात्र अवलम्ब पुत्र शङ्कर ही था। पुत्रका विवाह करके घरमें पुत्र-वधू आयेगी—बाल-बच्चे होंगे शङ्कर संसारमें रह कर माताको कितना सुख देगा, बहुतसी आशायें थीं, जो क्षण भर में दीप-शिखाकी भांति निर्वापित हो गईं। माता व्याकुल होकर सोचने लगी कि एकमात्र पुत्र, आराधन शङ्करको सदाके लिये घरसे विदा करके एकाकिनी मैं कैसे घरमे रहूंगी? शङ्कर-जननी व्याकुल और अधीर होकर बच्चोंकी तरहसे उच्च-ध्वनिके साथ रोने लगी। उसका हृदय विदीर्ण हो रहा था। अन्तमें रोती हुई माता विपद् भञ्जक भगवान्‌को पुकारने लगी। परन्तु उधर नदीका जल बराबर बढ़ रहा था। जलमें अपनेको और जननीको आकण्ठ निमग्न देख—शङ्कर और भी व्याकुल होकर कातर-कण्ठसे बोले,—"माता, संन्यास ग्रहण करने देनेमे और विलम्ब मत करो। तुम देख नहीं रही हो कि मेरा संन्यास स्वयं भगवान्‌का भी अभीष्ट है। इसी लिये यह दैव दुर्घटना घटित हो रही है। भगवान्‌की इच्छाके अनुसार अब भी मुझे संन्यास ग्रहण करनेकी अनुमति प्रदान करो। मातेश्वरी, इस विपद्‌से बचनेका अब और कोई उपाय नहीं है। यदि तुमने और

थोड़ासा विलम्ब किया तो सर्वनाश अवश्यम्भावी है। शीघ्र अनुमति प्रदान करो—नहीं तो डूबनेमें अब और देरी नहीं है।" शङ्करकी बात सुन कर स्नेहमयी जननी हतबुद्धि और स्तम्भित होकर और भी मूर्छितसी हो गई। माताका कुछ भी उत्तर न सुन कर और नदी-प्रवाहको और भी जोरसे बढ़ते देख कर शङ्कर फिर बोले,—"मां, अब क्षण भरकी देरी करनेसे भी काम नहीं चलेगा। यदि मेरे प्राणों का और जरा भी मोह हो, तो मुझे शीघ्र संन्यास ग्रहण करनेकी अनुमति प्रदान करो।" शङ्करकी इस अन्तिम बातको सुन कर स्नेहमयी बुद्धिमती जननी विचारने लगी कि अब क्या कर्तव्य है? दोनों ओर महाविपद्, घोर सङ्कट उपस्थित है। यदि पुत्रको संन्यास-ग्रहणकी आज्ञा न दूं, तो क्षण भरमे दोनों माता-पुत्र जलमें डूबते हैं—और यदि उसे संसार-त्याग और संन्यास-ग्रहणकी आज्ञा दूं तो मैं फिर संसारमे किसके आश्रयमे रहूंगी? इसी समय शङ्कर जलमग्न होने लगे और नितान्त कातर हो बोले,—"मां, और विलम्ब करना व्यर्थ है। मुझे या तो संन्यास-धर्म ग्रहण करनेकी अनुमति दो और नहीं तो बस अन्तिम प्रणाम है। लो डूबता हूं।" शङ्करकी इस अन्तिम चेतावनीसे शरविद्धसी होकर माताने कहा,—"अच्छा, भगवान्‌की इच्छा पूर्ण हो। मृत्युकी अपेक्षा तो संन्यास लेना ही अच्छा है। वत्स, मैं तुमको आज्ञा देती हूं कि तुम संन्यास-धर्मको ग्रहण करो।" माताके इस प्रकार अनुमति प्रदान करने पर क्षण भरमें दैव-प्रभावसे चढ़ा हुआ जल उतर गया। दोनों माता-पुत्र नदीसे निकल कर सकुशल घर पहुंचे।

पिञ्जर-बद्ध पक्षी जैसे पिञ्जरेसे निकल कर विशाल गगन-मण्डलमें उड़ कर आनन्द प्राप्त करता है, ठीक वैसे ही बालक शङ्करका हृदय सांसारिक बन्धनोंसे मुक्त होकर ज्ञानालोक रूपी गगनमण्डलमें



मातासे संन्यास लेनेकी स्वीकृति ।

विहार करने लगा। उनको विश्वास हो गया कि अब मैं संन्यास ग्रहण कर बहुत समय तक जप-तप और योग-साधन कर संसारका कल्याण-साधन कर सकूंगा। उनको ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे मृत देहमें जीवनका सञ्चार हुआ हो।

घर पहुंच कर शङ्कर मातासे विदा होनेकी तैयारी करने लगे। उन्होंने आत्मीय जनोंको बुला कर उनसे माताकी देख-भाल रखनेकी प्रार्थना की और कहा कि अबसे वे ही मेरी स्नेहमयी जननीके पुत्र हैं। बहुत अनुनय-विनय करने पर आत्मीयजन सम्मत हो गये। तब शङ्कर भी निश्चिन्त हुए। किन्तु शङ्कर-जननी पुत्रकी विच्छेद-भावनासे नितान्त विह्वल हो उठी। विक्षिप्तोंकी भांति उद्भ्रान्त होकर केवल विलाप करने लगी। स्नेहमय परम मातृभक्त पुत्रका प्रशान्त हृदय भी, जननीके करुण-क्रन्दनको सुन कर विगलित हो उठा। उनके नेत्रोंसे भी अविरल अश्रुपात होने लगा।

माता कातर-कण्ठसे कहने लगी,—"वत्स, तुम गृह-त्याग कर मुझे अकेली छोड़े जा रहे हो! मैं अकेली कैसे जीवन-यापन करूंगी? पुत्र, तुम गृह-त्यागके विचारका परित्याग कर दो। मैं नियमित रूपसे शिव-साधना और भगवान्का स्मरण कर तुम्हारे दुःख-तापको निवारण कर दूंगी। तुम किसी प्रकारकी विपद्की आशङ्का मत करो और यदि तुम चले जाओगे तो यहां मैं किसके आश्रयमे रहूंगी? किसका अवलम्बन कर शेष जीवन व्यतीत करूंगी?"

माताकी बात सुन कर शङ्कर कुछ देर तक मौन रहे, पीछे कातर-कण्ठ हो बोले,—"मां, मैं भी इस बातको सोचता हूं कि मेरे गृह-त्याग करने पर तुम्हारी खोज़-खबर कौन लेगा। तुम आश्रयहीन होकर कैसे जीवन व्यतीत करोगी? इस बातको विचार कर स्वयं मेरा हृदय फटा जाता है। यह बात सत्य ही तो है कि मेरे संसार-

त्याग करने पर कौन तुमको सुखी करेगा ? हाय मां ! तुम्हारे इस पुत्रने किस बुरे क्षणमें तुम्हारे गर्भसे जन्म लिया था, जो सदा तुमको दुःख ही देता रहा और एक दिन भी सुखी नहीं कर सका ! तुम्हारे गर्भसे मैंने यह मानव-देह पाया है और तुम्हारे स्नेहमय पालन-पोषण से ही मैं इतना बडा हुआ हूं ! जननी तो स्वर्गसे भी बढ़ कर है। क्या करूं ? माता, भाग्य-विधान करने वाला भगवान् है। संसारकी सकल घटनायें उसीके संकेतके अनुसार घटित होती हैं। यही समझ कर माता, तुम मुझे विदा करो। जरा विचार कर देखो स्वयं भगवान् ने मुझे इस बन्धनमें डाला है। हमने देवताके निकट प्रतिज्ञामें आबद्ध होकर उस महा सङ्कटसे उद्धार पाया है। इस समय हम यदि उस प्रतिज्ञाको भंग करें, तो महा विपद् उपस्थित होगी, इसमें जरा भी सन्देह नहीं है। इस लिये दैवाज्ञा पालनके अतिरिक्त अब और कोई उपाय नहीं है। माता, मुझे विदा करनेमें अब और संकोच मत करो। क्योंकि दैव-प्रतिज्ञामें आबद्ध होकर हम उससे किसी प्रकारसे भी मुक्त नहीं हो सकते। प्रतिज्ञाको भङ्ग करनेकी हमारी सारी चेष्टायें व्यर्थ होंगी।” इस प्रकारसे शङ्करने वियोगातुर माताको अनेक प्रकार से समझाया बुझाया। माता मनमें सोचती थीं—कि देवाधिदेव महादेवकी आराधना कर मैं इस अमङ्गलको टाल सकूंगी और पुत्र सानन्द घरमें रहेगा। परन्तु शङ्करके बार-बार समझाने पर माता सोचने लगी कि सचमुच प्रतिज्ञा भंग करनेसे पुत्रका अनिष्ट होगा। वे सोचने लगीं कि प्रतिज्ञा भङ्ग होनेसे किसी तरहसे भी महादेवको प्रसन्न न कर सकूंगी। ऐसा विपरीत कार्य करनेसे सभी जप-तप नष्ट हो जायगे। इस लिये कुछ भी हो पुत्रको विदा कर देना ही ठीक है।

इस प्रकारसे बहुत सोच-विचारके बाद शङ्करकी माताने रोते हुए भर्राये हुए स्वरसे कहा,—“वत्स शङ्कर, तुम संन्यास ग्रहण करनेके

लिये जाते हो—आओ ! किन्तु जानेसे पहले मुझसे एक प्रतिज्ञा करते जाओ।" पुत्र शङ्करने स्नेहमयी जननीके करुणकण्ठ विनिःसृत शब्दों को सुन कर रोते हुए कहा,—"मां, आज्ञा करो, इस अधम सन्तान को किस प्रतिज्ञापाशमें आवद्ध करना चाहती हो ?" उत्तरमे माताने कहा,—"वत्स, मालूम होता है—तुम संन्यास धारण कर फिर कभी घर नहीं लौटोगे, परन्तु ऐसा करनेसे मैं किसी तरहसे भी अपने प्राणोंकी रक्षा न कर सकूंगी। वेटा, तुम्हारे विच्छेदसे तो मैं निश्चय ही मृत्युके मुंहमें पतित हूंगी। इस लिये तुम मेरे निकट एक प्रतिज्ञा करके विदा हो।"—तव शङ्करने कहा,—"कहो माता, क्या आज्ञा है ?" तव आंसू पोंछ कर माताने कहा,—"पुत्र, वर्षमें एक वार यहां आकर मुझे दर्शन देना होगा। वर्षमें एक वार तुम्हारे मुखको देख लेनेसे ही मुझे वहुत धैर्य प्राप्त होगा। नहीं तो तुम्हारे विच्छेद और अदर्शनसे मैं प्राण न रख सकूंगी।"

माताकी वात सुन कर शङ्कर नीरव रह गये। माताकी वातका सहसा उत्तर न दे सके। वे सोचने लगे कि संन्यास ग्रहण करने पर फिर लौट कर आना तो असम्भव और धर्म-विरुद्ध है। परन्तु यदि जननीकी इस अन्तिम वातको स्वीकार न किया गया, तो निश्चय ही वह अधिक दिन तक जीवन धारण न कर सकेगी। ऐसी अवस्थामें फिर उपाय क्या है ? अन्तमें मातृ-भक्त पुत्र शङ्करने मातृ-आज्ञाको ही शिरोधार्य किया। वर्षमें एक वार आकर मातृ-दर्शन करूंगा—शङ्करने जननीके निकट इसकी प्रतिज्ञा की।

अव घर छोड़नेका समय उपस्थित हुआ। माता और पुत्र दोनों का स्नेह-समुद्र उमड पड़ा। वहुत चेष्टा और प्रयत्न करके शङ्करने अपनेको सम्भाला। अन्तमें माताके चरणोंमें साष्टाङ्ग प्रणाम कर शङ्कर घरसे वाहर हुए। माता भूमि पर लोट-लोट कर रोने लगी। आत्मीय

स्वजन वर्ग द्वार पर खड़े होकर जाते हुए शङ्करको करुण दृष्टिसे देखने लगे। जब तक शङ्कर उनको दृष्टिसे ओझल न हो गये, तब तक बराबर देखते रहे। इसके बाद रोती हुई शङ्कर-जननीको नाना प्रकार से सान्त्वना देने लगे।



चतुर्थ-परिच्छेद ।

संन्यास और अध्ययन ।

—:*:—

पहले परिच्छेदमें हम उस समयकी भारतकी स्थितिके सम्बन्धमें उल्लेख कर चुके हैं कि भारतमें उस समय भयङ्कर धर्म-विप्लव हो रहा था। वाममार्गी और बौद्धोंने समस्त देशमें धार्मिक क्रान्ति उत्पन्न कर दी थी। सत्य-सनातन-वैदिक धर्म दिन पर दिन विलुप्त होता जा रहा था। प्रायः सभी विद्वान्, राजा, प्रजाने बौद्ध धर्ममें दीक्षित होकर वैदिक धर्मको ठुकरा दिया था। केवल कहीं-कहीं वैदिक-धर्म का दीया टिमटिमा रहा था, जिसकी क्षीण आलोकराशिसे शङ्करने भयङ्कर अग्नि प्रज्वलित कर बौद्ध-धर्मको ध्वंस किया और उसके स्थानमें पुनः वैदिक धर्मकी प्रतिष्ठा की।

जिस समयकी हम बात हम लिख रहे हैं, उस समय बौद्ध-धर्म अपने उच्च सिद्धान्तोंसे पतित होकर कदाचार और व्यभिचारक आश्रय-स्थल हो रहा था। महात्मा बुद्धने जिस महात्याग धर्मके महात्म्यकी घोषणा कर महामुक्ति और महानिर्वाण-तत्त्वका प्रचार किया था, उसके मतानुयायी पथ-भ्रष्ट कदाचारी होकर नाना दलोंमें विभक्त हो रहे थे। बुद्ध धर्मके नेता और रक्षकगण विशुद्ध धर्मके पवित्र भावको त्याग कर निष्ठुर होते जाते थे। अष्टमार्ग साधन प्रभृति बौद्ध धर्मके साधन-मन्त्र विस्मृत हो रहे थे। परस्परमें हीन यान, मध्ययान आदि अनेक सम्प्रदायोंकी भित्ति स्थापन कर बौद्ध एक दूसरेको छोटा बड़ा बता रहे थे। त्याग, अहिंसा, जीव मात्र पर

दया और विश्व-संसारके प्रति प्रेम प्रभृति बौद्ध धर्मके मूलमन्त्रको भुला कर, बाह्याडम्बर और बाह्य आचार विचारोंमें आसक्त हो उठे थे। स्थान-स्थान पर बौद्ध-मठ स्थापित कर और अनेक भिक्षुक भिक्षुकी गण समवेत होकर वङ्गालके आधुनिक—'नेड़ा-नेड़ी' के दलोंकी तरहसे काम-रागके भाजन और इन्द्रिय-भोगोंके हेय और घृणित दृष्टान्त मनुष्य समाजके सामने उपस्थित कर रहे थे। ठीक इसी समय कुमारिल भट्ट, मण्डन मिश्र और गौड़ पादाचार्य प्रभृति वैदिक धर्मके प्रतिभाशाली मनस्वीगण हिन्दू धर्मकी ध्वजा धारण कर प्रबल वेगसे समुत्थित हो उठे। इनके व्यक्तित्त्वके प्रभाव और प्रतियोगिता एवं बौद्धधर्मके नेताओंकी कदाचार-परायणताके कारण बौद्ध धर्म संकुचित और हतप्रभ होने लगा। निरीश्वरवादी बौद्ध धर्मके प्रति उपेक्षा प्रकट कर अनेक विद्वान् और बुद्धिमान विशुद्ध ब्रह्म-ज्ञान तथा ब्रह्मानुभूतिकी प्राप्तिके लिये व्याकुल-प्राण होकर तत्त्व अनुसन्धान कर रहे थे। वेदान्त धर्म द्वारा निर्धारित प्रचारित मायातीत विशुद्ध चिदानन्दमय ब्रह्म-संस्थितिको एक मात्र सत्य धर्म समझ कर लोग ग्रहण कर रहे थे।

इस समय दक्षिणके अनेक स्थानोंमे वैदिकधर्मियोंके प्रचार-केन्द्र स्थापित हो गये थे। इन्हीं केन्द्रोंसे तैयार होकर अनेक प्रतिभाशाली पण्डित और त्यागी महात्मागण वैदान्तिक शिक्षा द्वारा वैदिक हिन्दू धर्मका प्रचार कर रहे थे। अद्वैतवाद, द्वैतवाद और विशिष्टाअद्वैतवाद प्रभृति नाना भावों और अङ्गोंमें वैदान्तिक धर्म-प्रचार होकर वैदिक धर्मका पुनरुद्धार हो रहा था। इन समस्त वेदान्तकी शाखा-प्रशाखाओंमे विशिष्टाद्वैतवादने सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया था। समग्र भारतकी अपेक्षा दक्षिणमें विशुद्धाद्वैतवादका अधिक प्रचार और प्रसार हुआ था। विशुद्धाद्वैतवादकी दक्षिणमे प्राण-प्रतिष्ठा करने

वाले आचार्य गोविन्दपाद नामके महा प्रतिभाशाली त्यागी विद्वान् महात्मा थे। ये महात्मा बौद्ध धर्मके भीषण-द्रोही, आचार्य गौड़पादके प्रधान शिष्य थे। महामना कुमारिल भट्टकी तरहसे इन्होंने भी कदाचारी बौद्ध सम्प्रदायके ध्वंसके लिये आजन्म काम किया था। आचार्य गोविन्दपाद भी गुरुका पदानुसरण कर बराबर बौद्ध धर्मके ध्वंसमें लगे थे।

परन्तु बौद्धोंके भयङ्कर प्रतिपक्षी होकर भी आचार्य गोविन्दपाद ने कभी बौद्धोंको पीड़ित नहीं किया था। साधु, महात्मा और पण्डित समझ कर समाजमें उनका आदर किया जाता था। आचार्य गोविन्दपाद अपने अद्भुत त्याग और सज्जनता तथा प्रगाढ़ विद्वत्ताके कारण समस्त देशमें प्रख्यात हो रहे थे। क्योंकि इन्हींकी शिक्षाके कारण शङ्कर जैसे अनेक पण्डित गण कार्यक्षेत्रमें अवतीर्ण हुए थे। इसीलिये अनेक प्रतिभाशाली छात्र उनके चरणोंमें प्रणिपात करके शिष्य होनेकी भिक्षा मांगते थे। उनसे अनेक छात्र पढ़ते और यथार्थ व्युत्पत्ति लाभ कर कार्यक्षेत्रमें अवतीर्ण होते। इससे समस्त देशमें उनकी बहुत ख्याति हो गई थी।

आचार्य गोविन्दपादके यश-सौरभसे आकृष्ट होकर—शङ्कर भी उनका शिष्यत्त्व प्राप्त करनेके लिये उनकी सेवामें उपस्थित हुए। आचार्य गोविंदपादका यह नियम था—कि वे विना परीक्षा लिये किसीको शिष्य नहीं बनाते थे। वे उसकी विद्वत्ता, प्रतिभा, कुल और आचार-विचार सभीके सम्बन्धमे छान-बीन करते थे। इन सब विषयों में सन्तोष प्राप्त हो जाने पर ही वे किसीको शिष्य बनाते थे। शङ्करने भी गोविन्दपादकी सेवामें उपस्थित होकर शिष्यत्त्वके लिये प्रार्थना की। उन्होंने एक वार शङ्करका आपादमस्तक निरीक्षण किया। शङ्करकी असाधारण प्रतिभा-सम्पन्न मूर्तिको देख कर आचार्य विमुग्ध

हो गये । वे मन ही मन सोचने लगे कि इस बालकके तेजोमय मुख-मण्डल और नेत्रोंसे असामान्य ज्योति प्रकट हो रही है । इससे यह साधारण बालक तो प्रतीत नहीं होता । बालक निश्चय ही कोई दैवी-शक्ति सम्पन्न है । इसमें अवश्य ही महापुरुष होनेका बीज निहित है, जो कल विकसित होकर संसारके किसी असाधारण कार्यको सम्पन्न करेगा । इस प्रकारसे विचार कर आचार्य गोविन्दपादने पहले शङ्करका नाम-धाम पूछा, फिर आदरके साथ पासमें बैठनेकी अनुमति प्रदान की । आचार्यके पास बैठी हुई शिष्यमण्डली भी बालक शङ्करको आपाद-मस्तक देख कर कुछ चकित एवं विस्मित हुई । नीतिमें कहा है कि मनुष्यकी बाह्य आकृति-प्रकृतिको देख कर ही उसके हृदयको पहचाना जा सकता है । जो दयालु होता है उसकी मूर्तिमें दया-दाक्षिण्यका भाव झलका करता है और जो बुद्धिमान होता है, उसके मस्तक पर प्रतिभाका भाव स्पष्ट प्रकट होता है । इसी प्रकारसे भक्तमे भक्ति भाव और निर्दयकी आकृतिमें कठोर-कर्कश भाव, निर्बोधके आकारमें जड़ भाव और भक्ति हीनमें वैषयिक भाव स्पष्ट प्रकट होता है । जैसे अग्निशिखा वस्त्रोंमें जागृत्त होकर फूट पड़ती है, उसी प्रकार से प्रतिभा भी लाख छिपाने पर स्वयं प्रकट हो जाती है । शङ्करकी प्रतिभा छिपी रहने वाली नहीं थी । शङ्करकी स्निग्ध रूप-छटा और प्रशस्त ललाटको स्वयं आचार्य गोविन्दपाद और उनके शिष्य गण अवाक् दृष्टिसे देख रहे थे ।

थोड़ी देरके बाद आचार्य गोविन्दपादने शङ्करसे उनकी शिक्षाके सम्बन्धमें प्रश्न किये । किन्तु प्रश्न करते-करते वे जटिल दर्शन-शास्त्र तक जा पहुंचे । किन्तु बालक शङ्करने उनके प्रश्नोंके उत्तर ऐसे सुन्दर और विशद भावसे आलोचनात्मक ढङ्गसे दिये कि बैठी हुई शिष्यमण्डली आत्म-विस्मृत सी हो गई । वास्तवमे शङ्करके सभी

कार्य अद्भुत और अमानुषिक थे । घरमें शङ्करकी जिस समय शिक्षा आरम्भ हुई थी, उस समय उन्होंने वर्ण-परिचयमें ही अमानुषिक भावोंका परिचय दिया था । स्वर और व्यञ्जनोंका एक वार उच्चारण मात्र सुन कर ही वालक शङ्करने लिखना, वोलना और उच्चारण करना सीख लिया था । उस समय इस अद्भुत व्यापारको देख कर सभी लोग चकित हुए थे । मन ही मनमें शङ्करको किसी देवताका अवतार समझ कर महान् श्रद्धाकी दृष्टिसे देखने लगे थे—और शङ्करकी दीर्घ आयुके सम्बन्धमें नाना प्रकारकी शंकायें करने लगे थे । उसी समय शङ्करने व्याकरण, अभिधान, स्मृति आदिके अतिरिक्त दर्शनोंको भी पढ़ डाला था । इसी लिये आज दार्शनिक प्रश्न उठने पर शङ्करकी बाल-मूर्तिने उनका समाधान कर सबको चकित एवं स्तम्भित कर दिया ।

इसके बाद आचार्य गोविन्दपादने शङ्करके ज्ञान और वुद्धिसे सन्तुष्ट होकर उनको शिष्य बनाना स्वीकार कर लिया । शङ्कर भी उनके आश्रममें रह कर वेद, वेदाङ्ग, दर्शन और स्मृति आदि शास्त्रों का सम्यक् रूपसे अध्ययन करने लगे । प्रायः सभी शास्त्रोंमे शङ्कर की अद्भुत गति देख कर आचार्य गोविन्दपादके आनन्दकी परि-सीमा न रही । दर्शन शास्त्रके जटिल प्रश्नोंको समाधित करते देख उनके सहपाठी और अन्यान्य अध्यापक वृन्द भी चमत्कृत होने लगे । वाहरके देश-विदेशसे जो अनेक विद्वान् पण्डित और साधु महात्मा गण आचार्य गोविन्दपादसे शास्त्रार्थ अथवा तर्क-वितर्क करने आते, तो आचार्य, शङ्करको उनके प्रश्नोंका समाधान करनेकी आज्ञा देते । शङ्कर युक्ति और तर्कसे क्षण भरमें उनको पराजित कर देते । परन्तु इस शास्त्रचर्चामें सदा नम्रता और सदाशयताका ही भाव रहता । उत्तेजना और कोप तथा घृणाका भाव तक न व्यक्त

होता। इससे समागत विद्वान् भी परम प्रसन्न होते और आचार्य गोविन्दपाद तो ऐसे सुयोग्य शिष्यको पाकर अपनेको महा गौरवान्वित समझते ।

आचार्य गोविन्दपादके शिक्षागुरु थे—सुविख्यात पण्डितप्रवर गौड़पाद। बीच-बीचमे आकर वे शिष्य द्वारा स्थापित आश्रमका निरीक्षण करते और छात्रोंके पठन-पाठनका भी पर्यवेक्षण करते। वे भी शङ्करके अद्भुत ज्ञान-गाम्भीर्य एवं प्रखर प्रतिभाको देख कर विमुग्ध हो गये। हम पहले कह चुके हैं कि आचार्य गौड़पाद कदाचार-परायण बौद्ध सम्प्रदायके भीषण प्रतिपक्षी थे। कैसे इस निरीश्वरवादी धर्मका ध्वंस करके भारतमे वैदिक धर्मकी आसमुद्र हिमालय पर्यन्त पुन. प्राणप्रतिष्ठा हो सकती है, इसके लिये वे सदा कोई न कोई उपाय सोचा करते थे। उन्हें सदा यह भान हुआ करता था कि शीघ्र ही देशमें किसी महापुरुषका जन्म होने वाला है, जो इस निरीश्वरवादी धर्मको देशसे मिटा देगा। आज एकाएक अपने शिष्यके आश्रममें शङ्करके असाधारण पाण्डित्य, अद्भुत प्रतिभा, अलौकिक ज्ञान-गाम्भीर्य और कुशाग्र तीव्र बुद्धिको देख कर वे विशेष उत्साहित हुए। वे मन ही मनमें सोचने लगे कि यही बालक उपयुक्त है। इसे उपयुक्त रूपसे तैयार किया जाय, तो यह अवश्य हमारे उद्देश्यको सिद्ध करेगा और नास्तिक बौद्ध धर्मका मूलोच्छेद कर देगा।

इस प्रकारसे सोचते हुए महात्मा गौड़पादने शिष्य गोविन्दपाद से कहा,—"देख गोविन्द, तुम्हारा यह शिष्य शङ्कर साधारण बालक नहीं है। मैंने आज जो इसके दिव्य-ज्ञान और प्रखर-प्रतिभाको देखा है, उससे तो यही प्रतीत होता है कि निकट-भविष्यमे इसके द्वारा शीघ्र ही देशका कोई महान् कार्य सिद्ध होने वाला है। इसके सभी लक्षण विचित्र हैं। महापुरुष होनेके सभी लक्षण तुम्हारे इस

शिष्यमें मौजूद है। मेरे मनमें यह भावना उठती है कि इसी बालक द्वारा हमारे उद्देश्यकी सिद्धि होगी। बल्कि मैं तो दृढ़ताके साथ कहता हूं कि इस बालक शङ्कर द्वारा ही नास्तिक बौद्ध-धर्मका उच्छेद होगा। इस लिये तुम इसे अभीसे विशुद्ध वेदान्त मतकी शिक्षा देनी आरम्भ करो, जिससे शीघ्र ही इस द्वारा कार्य सम्पन्न हो। गोविन्द, तुम इस बातकी चेष्टा करो कि इसके हृदयमें शुद्ध सनातन वैदिक धर्मके लिये अपार श्रद्धा उत्पन्न हो और नास्तिक बौद्ध धर्मके लिये ग्लानि उत्पन्न हो जाय।" उत्तरमें गोविन्दपादने कहा,—"गुरुदेव, इसके लिये आपको चिन्ता नहीं करनी होगी। शङ्कर तो बाल्यकालसे ही सनातन धर्मके प्रति आस्थावान और कुधर्मोंके प्रति द्वेषभावापन्न है। बौद्ध धर्मसे तो इसे बहुत ही घृणा है। थोड़ी देर तक लक्ष्य करने से ही आप इस बातको जान जांयगे। इसके साथ धर्मके सम्बन्धमे आलोचना करनेसे ही यह जाना जा सकता है। धर्मके सम्बन्धमें आलोचना करते समय इसकी भाव-भङ्गिको देखनेसे समझमें आ जाता है कि कुधर्मों और विशेष कर बौद्ध धर्मके प्रति शङ्करकी घृणा कैसी है। शङ्करकी उस समयकी भाव-भङ्गिको देख कर तो यही प्रतीत होता है कि यह इसी कामके लिये संसारमें आविर्भूत हुआ है। मैं तो समझता हूं कि इस विषयमें हम लोगोंको बिल्कुल चिन्तित होनेकी आवश्यकता नहीं है।"

इस प्रकारसे गुरु गौड़पाद शिष्य गोविन्दपादको समझा-बुझा कर विदा हुए। आचार्य गोविन्दपाद बालक शङ्करको और भी विशेष रूपसे पढ़ाने लगे। इस समय शङ्करकी अवस्था १६-१७ वर्षके भीतर ही थी। शङ्करकी संन्यास ग्रहण करनेकी उत्कट इच्छा थी और वे बाल्यावस्थासे ही संसारसे विरक्त थे, इस लिये इसी समय आचार्य गोविन्दपाद स्वामीने शङ्करको उपयुक्त पात्र और श्रेष्ठ ब्राह्मण कुल-

सम्भूत समझ कर संन्यास-धर्ममें दीक्षित किया। शङ्करका नाम शङ्कराचार्य रखा गया। आजसे बालक शङ्कर शङ्कराचार्यके नामसे विख्यात हुआ।

आश्रमकी पाठ-विधि समाप्त कर शङ्कराचार्यको गुरु गोविन्दपाद ने स्नातककी पदवी प्रदान की और वैदिक धर्मके प्रचार और बौद्ध-धर्मके ध्वंसकी आज्ञा दी। शङ्कराचार्यने गुरुको साष्टाङ्ग प्रणाम कर आश्रमसे प्रस्थान किया।

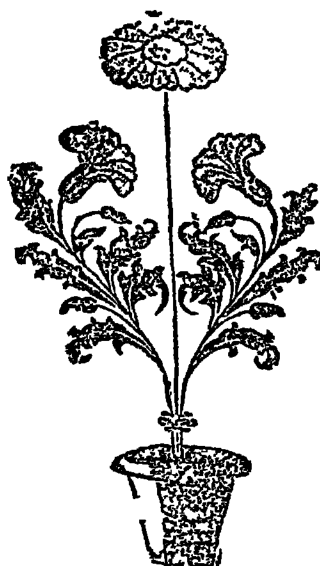
गुरुके आश्रमसे प्रस्थान कर शङ्कराचार्यने दिग्विजयका सङ्कल्प किया और देशमें वैदिकधर्मका प्रचार करते हुए विचरण करने लगे। वे विद्या और ज्ञानमें जैसे सुपण्डित थे, साधुता और सदाशयतामें भी वैसे ही सज्जन थे। सुतरां शीघ्र ही शङ्कराचार्यकी गुण-गरिमाकी चारों ओर प्रख्याति होने लगी। परम पूज्य महात्माके रूपमें सब जगह उनका आदर होने लगा। वे नाना स्थानोंमें जाकर अपनी ज्ञान-गरिमाका विशद परिचय देने लगे। वेदान्तमे विशुद्ध अद्वैतवाद ही उनके धर्म-मतकी प्रधान आदिम भित्ति था। एकमात्र सच्चिदानन्द ब्रह्म ही सत्य है, तद्व्यतीत—और सब मिथ्या माया है, वे इसी तत्त्वका प्रचार करने लगे। उस समयके बौद्धोंके निरीश्वरवादके निर्वाण तत्त्व और अपरापर दार्शनिक धर्मके शून्यवादका समस्त देशमे प्रचार हो रहा था। यद्यपि गौड़पाद और कुमारिल भट्ट आदि मनीषी पण्डित गणोंके प्रचार-कार्यसे सकल नास्तिक शुष्कज्ञान धर्म-हीन भ्रम और संकुचित हो गये थे; तथापि देशके धनी दरिद्र सभी पर नास्तिक धर्मका प्रभाव था। किन्तु शङ्कराचार्यके वैदिक धर्मके शङ्ख-निनादसे भारतकी चारों दिशायें मुखरित हो उठीं। नास्तिक बौद्ध धर्मका संहार होना आरम्भ हो गया। बौद्धों, वामियोंके कदा-चारकी कहानियां जो धर्मके रूपमें प्रचारित की गई थीं, निस्सार—

शंकराचार्य —



शङ्करकी दिग्विजय यात्रा।

देश-समाज संहारकारिणी समझी जाकर सर्वसाधारणके सम्मुख उप-स्थित होने लगीं। कदाचारी बौद्धों और पापिष्ट वामियोंके दुराचरण का नग्न चित्र शङ्कर-स्वामी द्वारा प्रस्तुत किये गये वैदिक धर्मके दर्पण में स्पष्ट झलकने लगा। झुण्डके झुण्ड नर-नारी, बालक-वृद्ध, नास्तिक बौद्ध धर्म और पापिष्ट वाममार्गको छोड़ कर वैदिकधर्मकी शरणमें आने लगे।



पञ्चम-परिच्छेद ।

बालक शंकरकी तेजस्विता ।

—:o:—

गुरु गोविन्दपादके आश्रमसे प्रस्थान करके शङ्कर स्वामीने जो कार्य किये उनका उल्लेख करनेसे पहले, शङ्करके बाल्यावस्थामें किये हुए कुछ अमानुषिक कार्यों का उल्लेख इस परिच्छेदमे किया जाता है ।

शङ्कर जिस समय गुरु गोविन्दपादके आश्रममें विद्याध्ययन करते थे, उस समयकी प्रथाके अनुसार ब्रह्मचारी ग्रामोंमें भिक्षाके लिये जाया करते थे । एक दिन शङ्कर सदाके अनुसार एक ग्राममें पहुंचे । ग्राममें अनेक जातियोंके आदमी रहते थे । ब्राह्मण-पण्डित, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि सभीका वास था । शङ्करका यह स्वभाव था कि वे प्रायः दरिद्रोंके यहां ही भिक्षा मांगने जाते थे । उनकी धारणा थी कि विशाल अट्टालिकाओं वाले धनिक, सदाचारी धर्मपरायण नहीं हैं तथा न्याय और परिश्रमसे धन उपार्जन नहीं करते । उनके धनोपार्जनमें पाप और अन्यायका अंश अधिक है । उन लोगोंका अन्न खानेसे बुद्धि तामसिक हो जायगी और सात्विकता नष्ट हो जायगी । इस धारणाके अनुसार वे सदा गृहस्थोंके यहा ही जाकर भिक्षा मागते थे और जो कुछ मिल जाता था उसे बड़े सन्तोष और प्रसन्नताके साथ ग्रहण करते थे । उस दिन भी वे एक दरिद्र ब्राह्मणके घर भिक्षार्थ पहुंचे । वह गृहस्थ ब्राह्मग स्वयं भी भिक्षावृत्ति कर जीवन-निर्वाह करता था । उस समय वह भिक्षाके लिये ही बाहर ग्रामान्तरों

में गया हुआ था। घरमे केवल उसकी ब्राह्मणी बैठी घरका काम-काज कर रही थी। इसी समय शङ्करने 'भिक्षां देहि' कह कर घरकी मालिकिनको पुकारा। गृहिणीने भी दूरसे बालक-ब्रह्मचारी शङ्करको देखा और उसके देवोपम प्रशस्त ललाट एवं ब्रह्मण्यताको देख कर मुग्ध हो गई। भक्ति पूर्वक अभिवादन कर बैठनेके लिये आसन देने लगी। परन्तु शङ्करने कहा,—"माता, मैं तो ब्रह्मचारी-विद्यार्थी हूं। भिक्षाके लिये आया हूं। बैठनेकी जरूरत नहीं है। केवल मुट्ठी भर भिक्षा लेकर चला जाऊंगा। दया करके भिक्षा प्रदान कीजिये।" वह बालक शङ्करकी वीणा-विनिन्दित वाणीको सुनकर विचलित हो गयी। एक तो बालक शङ्करकी रूप-छटा और फिर सुन्दर वदन-विनिस्सृत मधुर वाक्यावलिको सुन कर उसे स्वर्ग-सुखसा अनुभव होने लगा। वह जितना ही अधिक इस बालब्रह्मचारीको देखती,—उसे उतना ही अद्भुत-अपूर्व एवं अनिर्वचनीय आनन्द अनुभव होता। परन्तु एक तो नितान्त दरिद्र पतिकी पत्नी, जिसके घरमें भिक्षामे देनेके लिये मुट्ठी भर अन्न तक नहीं, दूसरे पति भी घरमें उपस्थित नहीं! क्या करना चाहिये,—सो वह कुछ भी स्थिर न कर सकी। किंकर्तव्यविमूढ नीरव होकर वह केवल भूमिकी ओर देखने लगी। शङ्करने दरिद्र ब्राह्मणीकी असमर्थताको देख कर कहा,—"नहीं मां, नहीं—चिन्ता मत करो। मैंने समझ लिया है कि आज भिक्षामे देनेको कुछ नहीं है। कोई चिन्ता नहीं है—फिर कभी सही। दरिद्र होकर भी तुम हृदय रखती हो—यह क्या कुछ कम सम्पद है। धन न होने पर भी तुम परम धनवती हो।"

शङ्करकी बात सुन कर रमणी बोली,—"वत्स, मैं और क्या कहूं, वास्तवमे ही हम लोग नितान्त दरिद्र हैं। मेरे स्वामी भी स्वयं भिक्षा करके किसी प्रकारसे गृहस्थी चलाते हैं। धर्म-अनुशीलन और

धर्म-अर्जन ही उनके जीवनका एक मात्र उद्देश्य है। इसलिये वे भिक्षा में मिली साधारण सामग्री से ही सन्तुष्ट रहते है। वहुतसे ऐसे लोग भी हैं, जिन्होंने भिक्षाको अपनी वृत्ति बना लिया है। वे लोग रात-दिन छल-कपट और साधुवेश धारण कर भिक्षा मांगते हैं—और उससे वडी-वडी सम्पत्ति खडी करते हैं। दिन भर काककी तरहसे भ्रमण करना ही उनका काम है। किन्तु मेरे पतिदेव इस प्रकारके आचरण को हेय समझ कर उससे घृणा करते है। भिक्षासे धन संग्रह करना उनका उद्देश्य नहीं है। जो मिल गया, उससे परितुष्ट होकर शास्त्र अनुशीलन करना और भगवान्के ध्यानमें मस्त रहना ही उनका काम है। संसारके धन-दौलतका उन्हें जरा भी लालच नहीं है। वे स्वभावत. ही संसारसे विरक्त और धर्मपरायण हैं।"

ब्राह्मणीकी बात सुन कर शङ्कर बोले,—"माता, मैं यही समझ कर तुम्हारे घर भिक्षा मांगने आया था। जो लोग परिश्रम करके धन सञ्चय करते और उसका सद्व्यय करते हैं, वही सद्गृहस्थ हैं। जो लोग अपने वड़प्पन और असहायों पर अपना बोझ लादनेके लिये अर्थ सञ्चय करते है, उनका वह धन और उससे उत्पन्न किया हुआ अन्न विष्ठाके समान अपवित्र है। वैसा धन मनुष्यको पशु बना देता है। शास्त्रोंमें लिखा है कि गृहस्थाश्रमकी रक्षा और बाल-बच्चोंके भरण-पोपणके लिये ही अर्थकी आवश्यकता है। क्योंकि विना यत्सामान्य धनके गृहस्थकी रक्षा नहीं हो सकती। लोकस्थिति और समाज-स्थितिकी रक्षाके लिये गृहस्थाश्रमकी रक्षाका प्रयोजन है। शास्त्रोंमें गृहस्थाश्रमको ही सर्वश्रेष्ठ आश्रम वताया है। क्योंकि और सभी आश्रमोंमें रहने वाले केवल गृहस्थाश्रमोंके आश्रय और साहाय्यसे ही रक्षित होते हैं। इसलिये प्रत्येक गृहस्थका अर्थ उपार्जन करना कर्तव्य है। परन्तु उस अर्थका सद्व्यय ही होना चाहिये। उस अर्थसे

देव-पितरोंका श्राद्ध और अतिथियोंका सत्कार तथा समाजका कल्याण होना चाहिये। उस अर्थसे लोक-समाजका अमङ्गल करना, दरिद्रोंको सताना कर्तव्य नहीं है। गृहस्थोंका कर्तव्य है कि उपयुक्त पात्रोंको दान दें। साधुओं-ब्रह्मचारियोंको भिक्षा देकर उनका सत्कार करना चाहिये और समझना चाहिये कि उनकी पदधूलिसे हमारा घर पवित्र हो गया। क्योंकि वे ही संसार और देशका उद्धार करते हैं।"

इस प्रकारसे उपदेश देकर शङ्कर उठ कर चलने लगे। शङ्करको प्रस्थान करते देख कर गृहिणी बोली,—"वत्स, तुमको क्या भिक्षा दूं, कुछ समझमें नहीं आता। तुम ब्रह्मचारी हो—भिक्षाके लिये एक गृहस्थके घर पर आये हो—तुमको खाली हाथ लौटाना भी उचित नहीं है। ब्रह्मचारी-संन्यासी साक्षात् नारायणके स्वरूप हमारे पूज्य परित्राता हैं। किन्तु खेद है कि हम लोग बड़े दरिद्र हैं। मैं पहले ही कह चुकी हूं कि मेरे स्वामी स्वयं भिक्षा मांग कर गृहस्थी चलाते हैं। इस समय भी वे भिक्षाके लिये ही ग्रामान्तरोंमें गये हैं—और आते होंगे, तब तक तुम ठहरो—जो कुछ भिक्षामे लायेंगे, उसमेंसे थोड़ा बहुत तुमको भी देकर अपना कर्तव्य पालन करूंगी।" गृहिणीकी बात सुनकर शङ्कर बोले,—"ना माता, मुझे और अधिक काल तक ठहरनेका समय नहीं है। कूड़ा-कर्कट मिले चावलोंकी एक मुट्ठी होनेसे भी तुम्हारा कर्तव्य पालन हो जायगा। क्योंकि भिक्षुकका गृहस्थके लिये खाली हाथ लौटाना भी गृहस्थके लिये अकल्याणकर है। कुछ भी न हो तो मुझे एक पात्र भर कर जल या फल ही दे दो, उसीसे तुम्हारे गृहस्थाश्रमका कर्तव्य पूरा हो जायगा। तुम मेरी मातृयस्थानीया हो—जो दोगी, मैं उससे परम सन्तुष्ट होकर चला जाऊंगा।"

शङ्करकी मधुर वाणी सुन कर गृहिणी परम सन्तुष्ट हुई और घर में जाकर एक हरीतकी ले आई और शङ्करकी झोलीमें डाल दी।

शङ्कर इसीसे सन्तुष्ट हो मङ्गल-कामना करते हुए वहांसे चल पड़े और जाते हुए आशीर्वाद दे गये कि कमला-लक्ष्मी तुम्हारे दारिद्र्य-दुःख को दूर करेगी।

शङ्कर जिस दरिद्रके घरसे निकल कर बाहर हो रहे थे, ठीक उसके सामने ही एक बृहद्-भवन था। उसमें एक अत्यन्त धन सम्पन्न रमणी निवास करती थी। जिस समय शङ्कर उस दरिद्रके घरसे बाहर हो रहे थे, उस समय वह धनवती रमणी, मणि-माणिक्योंसे संयुक्त अलङ्कारों से विभूषिता होकर अपने घरके द्वार पर बैठी भिक्षुकोंको अर्थ-प्रदान कर रही थी। सामनेसे आते हुए शङ्करके अलौकिक समुज्वल रूप-रङ्गको देख कर स्तम्भित एवं विमुग्धसी हो गई। उसने इस जन्ममें कभी भी ऐसा तेज-पुञ्ज नहीं देखा था। वह तुरन्त अपने द्वार पर से उठ कर शङ्करके पास पहुची और उनके चरणोंमें प्रणाम कर अति विनीत स्वरमें बोली,—"देव, आपकी अपूर्व देवमूर्तिको देख कर ऐसा प्रतीत होता है कि आप कोई देवता हैं और संसारके उद्धारके लिये ही इस लोकमें अवतीर्ण हुए हैं। आपकी अपार्थिव ज्योतिसे चारों दिशायें आलोकित हो रही हैं। भगवन्, मुझे तो स्पष्ट प्रतीत हो रहा है कि आप संसारके किसी असाधारण कार्यको सम्पन्न करनेके लिये ही इस धराधाममे आये हैं। महापुरुषोंके शरीरकी अनुपम प्रभा ही उनकी महत्ताको प्रदर्शित कर देती है। अधर्म अन्धकारको दूर करना ही देव, महापुरुषोंका कार्य है। तमोमय संसारके अज्ञानान्धको धर्मा-लोकसे आलोकित करना ही महात्माओंका कर्त्तव्य है। आप भी उस महत् कार्यके सम्पादनके लिये ही इस संसारमें आये हैं। भगवन्, मैं मूढमति हूं, अबला नारी हूं। सदा ही सांसारिक झञ्झटोंमें फंसी रहती हू। प्रकृत कार्यकी ओर मेरा ध्यान नहीं जाता। जिस सत्पथ के अवलम्बन करनेसे विघ्न-बाधायें दूर होती हैं और परम सौभाग्य

उदय होता है, वह पथ मुझे अज्ञानके कारण दृष्टिगोचर नहीं होता। किस उपायसे तुच्छ अलीक सुख चिरस्थायी रह सकता है, मैं सदा उसीकी खोजमें रहती हूं। जीवनका सार-तत्त्व क्या है, उसे मैं नहीं जानती। सुख और सम्भोगमें ही परमायुका इतना भाग व्यतीत हो गया। परन्तु लोग जिसे सुख समझते हैं और मैं भी समझती हूं, वह तो मोहका विभ्रम मात्र है। इस लिये संसारके इन सुखोंमें वास्तविक सुखको खोजना, मरु-भूमिमें जलकी कल्पनाके समान है, स्वयं अपने साथ छल-कपट करना है। प्रभो, मेरे पास धनकी कमी नहीं है। जमीन-जायदाद भी यथेष्ट है। संसारकी भोग-वासनाओंको तृप्त करनेके लिये जिन वस्तुओंकी जरूरत होती है, वे सभी मेरे पास मौजूद हैं। किन्तु प्रकृत भोग, यथार्थ सुख क्या वस्तु है, उसे मैं जान भी नहीं पाई हूं! हा, इतनी बात अवश्य समझती हूं कि संसारके ये सुख-सम्भोग प्रकृत सुख नहीं हैं। क्योंकि आज जिनको मैं सुख समझती हूं,—कल वे ही महान् दुःखके कारण हो सकते हैं। इसलिये प्रभो, मुझे उस प्रकृत सुखका मार्ग बताइये, जिससे इस अबला-नारीका कल्याण हो!"

धनवती रमणीकी सौम्यता एवं बुद्धि-वैलक्षण्यको देख कर शङ्करको कुछ आश्चर्य हुआ और उसकी उत्कट अभिलाषा और प्रगाढ़ जिज्ञासाको देख कर शङ्कर बोले,—"माता, तुमने जो कुछ कहा है, उसमें बहुत कुछ तथ्यका अंश है। संसारमें आजकल ऐसा ही मतिभ्रम हो रहा है। कोई मनमें सोचता है कि अर्थ ही सुखका कारण है। कोई कहता है स्त्री, पुत्र धन, आदिका स्नेह ही सुख है। किसीकी धारणा है कि यश और कीर्ति ही सुखका निदान है। किन्तु ये सब विश्वास और धारणायें नितान्त भ्रमात्मक हैं। क्योंकि जिस अर्थको सुखका कारण समझा जाता है, वही महाभयका कारण हो सकता

है। कभी कोई डाकू या चोर धन हरण करके न ले जाय, सदा इसी बातका भय लगा रहता है। इसके अतिरिक्त उत्तराधिकारी सदा मरण की कामना करते रहते हैं। यहां तक कि सुयोग और सुविधा होने पर विष तक देकर मार डालते हैं। इसलिये चोर-डाकुओंसे जैसे भय है, उसी प्रकारसे आत्मीय उत्तराधिकारियोंकी अमङ्गलजनक कल्पना जल्पना मारे डालती है। अतः जो हतभाग्य सदा-सर्वदा भय-भाव-नाओंका क्रीतदास है, भला उसे प्रकृत सुख कहां है? रहा स्त्री, पुत्र, कन्या आदिका स्नेह-सुख, सो वह भी भ्रम, छायाकी तरह अलीक है। जो स्त्री पुत्रादि स्नेह और आदरकी सामग्री हैं, कालके वश होकर हठात् वे मृत्युमें निपतित हो सकते हैं। प्रायः ऐसा होता है। ऐसी अवस्थामें स्त्री-पुत्रादिकी मृत्युसे जो महान् दुःख उत्पन्न होता है, उसकी कष्ट-यन्त्रणा तो नितान्त असह्य होती है। यदि उनकी मृत्यु न भी हो, तो भी उस अवस्थामे उनका कुव्यवहार हृदयको विदग्ध कर सकता है। प्रायः देखा जाता है कि स्नेह और आदरके पात्र स्त्री-पुत्रादि कभी महाशत्रु हो उठते हैं। जिस पुत्रको प्राणोंसे भी अधिक प्रिय समझ कर माता-पिताने पालित पोषित करके इतना बड़ा किया था, आवश्यकता पड़ने पर वही पुत्र माता और पिताको विष देकर हत्या कर डालता है! अब लीजिये यश-कीर्तिके चिरस्थायित्व को। मालूम नहीं आज तक कितने लोगोंकी कीर्ति और यश समयके गर्भमें लीन हो गया। इसके सिवा जो धनवान् अपने धन द्वारा आज कीर्ति और यश अर्जन करता है—और कल वही दुर्भाग्यसे धनहीन हो जाता है, तो उसकी कीर्ति और यश लुप्त हो जाते हैं। क्योंकि उस हतभाग्यकी कीर्ति और यशकी घोषणा कौन करता है? और यदि कोई करे भी तो वह विद्रूप, हंसी-ठट्ठा समझा जाता है। संसार के समस्त व्यापार इसी प्रकार असार हैं। किन्तु इस असारमेंसे भी

जो सार-वस्तुको ग्रहण कर लेता है, वही चतुर है, महाजन है, वही महाजन ही उपादेय वस्तुको ग्रहण कर जीवनके बन्धनोंसे मुक्त होकर मुक्ति लाभ करता है। मनुष्य यदि तनिक भी विचार करे तो इस संसारकी असारता स्पष्ट प्रकट हो जाती है। हम रात-दिन आत्मीय जनोंकी मृत्युको देखते हैं। उन घटनाओंको देख कर क्षण भरके लिये वैराग्यका भाव उदय होता है, किन्तु क्षण भरमें ही पानीके बुद-बुदेकी तरहसे लुप्त हो जाता है। यदि वह वैराग्यका भाव स्थायी रहे, तो मनुष्यका समस्त मोहज्ञानान्धकार नष्ट हो जाय। किन्तु जो महा-हतभागा धन और आत्मीयजनोंके ऊपर ही निर्भर कर अपनी उन्नति की मंगल-कामना करता है, उससे उसे हताश होना पड़ता है, वञ्चित रहना पड़ता है। इसका प्रमाण हमें प्रतिदिन संसारमें देखनेको मिलता है। परन्तु हमारी तामसिक बुद्धिने हमारी विवेचना-शक्तिको नष्ट कर दिया है। वैराग्यने जिनके हृदयमें स्थायी स्थान प्राप्त कर लिया है, वे परम सार-तत्त्व आत्म-तत्त्वको अधिगत करके अपना कल्याण करनेमें समर्थ होते हैं।"

शङ्करकी उपदेश-वाणीको सुन कर धनवती रमणीके मनका भाव और जीवनकी गति-दिशा, निमिष मात्रमें परिवर्तित हो गयी। जैसे अद्भुत अलौकिक यन्त्र-शक्तिके प्रभावसे नदीका जल-प्रवाह विपरीत दिशाकी ओर प्रवाहित होने लग गया हो। उस रमणीको ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे उससे कोई कह रहा हो कि,—"तुम्हारे सामने जो अपूर्व अलौकिक देवी शक्ति मूर्तिमान होकर खड़ी है, वह साक्षात् देवादिदेव महादेवकी मूर्ति है। तुम्हारे महाभाग्य और पिछले जन्मके पुण्य-प्रभावसे ही यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है।" इसके वाद उसे प्रतीत होने लगा कि जैसे महामोक्ष फल प्रदान करनेके लिये शङ्कर ही शङ्करके रूपमें अवतीर्ण होकर निगूढ तत्त्वोंका उपदेश दे रहे हों। वह

सोचने लगी कि परम तत्त्वकी प्राप्तिके लिये ही मानव-जन्म मिला है। इस मानव जन्मको लाभ करके लघु वयसमे ही मोक्षका मार्ग मिल गया है, तो मैं इसका परित्याग क्यों करूं। कौन जाने कल इस शरीरका क्या होने वाला है।

शङ्करने धनवती रमणीको और भी अधिक उत्सुक देख कहा,—"साध्वी, देखता हू कि तुम बड़ी सौभाग्यवती हो, क्योंकि ज्ञान वैरागयके लिये तुम्हारे हृदयमें औत्सुक्य उत्पन्न हुआ है। मनुष्य जन्म लाभ करके इससे अधिक सौभाग्य और क्या हो सकता है कि मनुष्य परमानन्दके लिये वस्तुतः उत्सुक हो। अभी तक किसी व्याधि और जराने भी तुम पर आक्रमण नहीं किया है। अतएव अब समय है कि तुम सुपथका अनुसरण करो। भगवान् तुम्हारा मंगल करेंगे।"

शङ्करकी अन्तिम बात सुन कर धनवतीके हृदममें तीव्र वैराग्य उत्पन्न हुआ। वह अब और अधिक आत्म संबरण न कर सकी—और घरसे धन-रत्न निकाल कर दरिद्रोंको बाटने लगी। इसी समय शङ्करको इस तेजस्विता और प्रभावको देख कर वह दरिद्र ब्राह्मणी और उसका पति भी वहा आ उवस्थित हुए, जिसने शङ्करको भिक्षामें हरीतकी प्रदान की थी। वे दोनों दम्पति, शङ्करको प्रणाम कर ज्ञानोपदेशकी भिक्षा मांगने लगे। शङ्करने उन्हे धन सम्पन्न होनेका वरदान दिया था, इसलिये उस धनवतीका वहुवसा धन सत्पात्र समझ कर उन्होंने उन्हे दिला दिया।

इसके वाद उस धनवती रमणीने सर्वस्व त्याग कर साधु वेश धारण किया और परमानन्दकी प्राप्तिके लिये तप-अनुष्ठानोंमे प्रवृत्त हुई। उसके अद्भुत त्याग और तपस्याके फलसे अन्तमें उसे आत्म-दर्शनका सौभाग्य प्रात हुआ और भगवान् पिनाकपाणि शङ्करकी कृपा से परम मोक्ष पद प्राप्त हुआ।



शङ्करके उपदेशसे धनवती स्त्रीका धन-दान ।

षष्ठ-परिच्छेद ।

योग-बलकी महिमा ।

एक दिन शङ्करके गुरु गोविन्दपाद, आत्म-साक्षात्कारके लिये आश्रममें बैठे हुए समाधि लगा रहे थे। आश्रमके पास ही वेगवती नदी थी। नदीके कल-कल निनादसे आश्रम मुखरित हो रहा था। आचार्य गोविन्दपाद बड़ी देर तक एकाग्रता और मनःस्थिरताके लिये चेष्टा करते रहे, परन्तु नदीके कल-कल निनादने उनके मनको स्थिर नहीं होने दिया। अन्तमें वे बड़े चञ्चल हो उठे। गुरुकी उद्विग्नताको देख कर शङ्कर नदी पर क्रुद्ध हो उठे। वे मन ही मन स्थिर होकर इस क्षुद्र नदीकी उन्मत्तता पर विचार करने लगे। क्रोधसे मुंह लाल हो गया। नेत्रोंसे क्रोधके मारे अग्नि-स्फूलिङ्गसे बाहर होने लगे। परन्तु नदीका कल-कल निनाद किसी प्रकारसे भी बन्द न हुआ। अब शङ्कर और स्थिर न रह सके और क्रोधके आवेशमें आकर उच्च कण्ठसे बोले,—"मैं निश्चय ही इस दुर्वृत्ता नदीके उद्दाम प्राबल्यको तिरोहित करूंगा। इसीके प्रचण्ड प्रवाहसे गुरुदेवको कष्ट हो रहा है। इस क्षुद्र नदीका इतना अहङ्कार!" इस प्रकारसे कहते हुए शङ्कर एक हाथमें पात्र ले आश्रमसे बाहर हुए। नदी-तट पर जाकर उन्होंने उस पात्रमें पानी भरा और कहा,—"जब तक इस पात्रके जलको मैं पुनः नदीमें न फेंक दूं, तब तक हे दुर्विनीत-नदे, तब तक तू नीरव और निस्तब्ध रह!" कैसी आश्चर्य घटना थी, कैसा अद्भुत दैवबल था! शङ्करके योग-बलसे भाण्ड-सलिलके संरक्षित होते ही नदीका कल-कल

निनाद और उद्दाम गति-भंगि स्तब्ध हो गई ! जैसे कोई दासी प्रभु की आज्ञा पाकर खड़ी हो जाती हो, उसी प्रकारसे शङ्करका क्रोध-रव सुन कर नदी भी नीरव हो गई। इधर आश्रममें एक वार ही शान्ति का राज्यसा स्थापित हो गया। कपोत-कूजित प्रशान्त वनमें निस्तब्धता छा गयी। गुरु गोविन्दपाद इस अभूतपूर्व काण्डको देख कर आश्चर्य-चकित रह गये। परन्तु शीघ्र ही उन्हें मालूम हो गया कि यह उन्हींके योग-सिद्धि प्राप्त शिष्य शङ्करको माया है। गोविन्दपाद पहलेसे शङ्करके योगवलको जानते थे। आज उसकी स्पष्ट महिमाको देख कर वे शङ्करके ऊपर वहुत प्रसन्न हुए। आशीर्वाद देते हुए उन्होंने कहा,—"तुम हिमालयमें अवस्थान कर वेदान्त और उपनिषदोंका भाष्य करो—और अद्वैतावादके प्रचारका उपाय सोच कर यथाशीघ्र उस कार्यमें लग जाओ।" शङ्करने गुरुकी आज्ञाको स्वीकार कर लिया और उक्त कार्यमे संलग्न हो गये।

\+ + + +

इसी प्रकारसे शङ्कर एक दिन गुरुसे आज्ञा लेकर, अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार माताको देखने घर गये। शङ्करकी अद्‌भुत विद्वत्ताकी उस समय चारों ओर धाक मच रही थी। उनकी योगमायाको सुन कर समस्त भारतवासी चकित हो रहे थे। उनके अखण्ड तेज-तपकी महिमाको सुन कर अनेक वौद्धाचार्योंके आसन हिल गये थे। वड़े-वड़े राजा लोग उनके दर्शनोंके प्यासे थे। जिस समय शङ्कर आश्रम से घरको जा रहे थे, तव वहांके राजाने भी शङ्करके आगमनकी वात सुनी। वे इस वातसे वड़े हर्षान्वित थे कि महामहिम शङ्करका जन्म मेरे ही राज्यमें हुआ है। राजाने शङ्करके आगमनकी वातको सुन कर अपने प्रधान-सचिवको अनेक धन-रत्न और मणि-माणिक्य तथा हस्ती लेकर शङ्करके पास भेजा। प्रधान-सचिवको भेजनेका कारण

यह था कि योगी शङ्करको प्रसन्न करके उनसे पुत्र-प्राप्तिका वरदान प्राप्त करें। क्योंकि राजा निःसन्तान था। प्रधान-सचिवने शङ्करकी सेवामें पहुंच कर अपने राजाका संदेश कह सुनाया। त्यागी शङ्करने धन-रत्न-हस्तीको लौटा दिया और कहा,—"मन्त्रीवर, मैं ब्राह्मण हूं, त्यागी हूं। ये वस्तुवें मेरे कामकी नहीं हैं। क्योंकि मैं इस पवित्र पथको छोड़ कर भोग-वासनाओंमे लिप्त होनेकी इच्छा नहीं रखता। ब्राह्मणके धर्मके यह विरुद्ध भी है। परन्तु मैं राजासे प्रसन्न हूं। उनसे कहना कि धर्माचरण करें और न्यायपूर्वक प्रजाका पालन करते हुए कर्तव्य पालन करें. भगवान् उनकी इच्छाको पूर्ण करेंगे।" शङ्करकी बात सुन कर प्रधान सचिवने प्रस्थान किया और राजाको शङ्करका अनुरोध कह सुनाया। यथासमय राजाकी रानीके गर्भसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसे शङ्करके ही वरदानका प्रसाद समझा गया।

\+ \+ \+ \+

घर पहुंच कर वृद्धा माताके शङ्करने दर्शन किये। माताका भी पुत्र शङ्करको देख कर हृदय पुलकित हुआ। शङ्करकी माता बड़ी धर्म-परायणा थीं, इसका उल्लेख पहले परिच्छेदोंमें किया जा चुका है। वे अब भी उसी प्रकारसे ब्राह्ममुहूर्तमें उठतीं और नदीमें स्नान कर भजन-पूजनमें बैठ जातीं। परन्तु अधिक जराजीर्ण होनेके कारण नदी तक जानेमें अब शङ्कर-जननीको बहुत कष्ट होता था। शङ्करने भी इस बातको अनुभव किया और नदीसे एक पात्रमें जल भर लाकर अपने घरके द्वार पर उड़ेल दिया। प्रातःकाल होते ही लोगोंने बड़े आश्चर्यसे देखा कि नदीका प्रवाह दूरसे हट कर गांवके बिलकुल पास हो गया है! ग्रामके लोग इस अद्भुत काण्डको देख कर पहले तो बहुत चकित हुए, परन्तु जब उन्हें मालूम हुआ कि यह शङ्करकी ही योगमायाका फल है और माताके नदी स्नानके आवागमनके कष्ट

को दूर करनेके लिये ऐसा किया गया है, तो वे बहुत प्रसन्न हुए और ग्रामके वयस्क पुरुष और स्त्रियां दलबद्ध होकर शङ्करको आशीर्वाद देने आयीं। शङ्करने सबको प्रणाम किया और बड़ी सौम्यताके साथ उन लोगोंके आशीर्वादको ग्रहण किया।

\+ + + +

एक बार शङ्कराचार्य अपने शिष्यों सहित भ्रमण करते हुए मध्यार्जुन नामक स्थानमें पहुंचे और प्रभाकर नामक एक दरिद्र ब्राह्मणके घर आतिथ्य स्वीकार किया। शङ्कराचार्य ब्राह्मणोंका ही आतिथ्य ग्रहण किया करते थे। परन्तु वह भी धनियोंका नहीं, दरिद्रोंका। प्रभाकर बड़ा निष्ठावान् विद्वान्-वेदवित् पण्डित था। परन्तु था बड़ा दरिद्र। प्रभाकरने शङ्कराचार्यको महात्मा समझ कर बड़ी श्रद्धासे उनका स्वागत और आतिथ्य किया। शङ्कर इस दरिद्र ब्राह्मणके भक्तिभाव और कर्तव्यपरायणताको देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुए। प्रभाकर पण्डितके एक पुत्र था, परन्तु था वह नितान्त बर्बर और मूर्ख। प्रभाकरने अपने विद्या-बलसे शङ्करको समर्थ समझ कर जड़-भावापन्न पुत्रकी जड़ता दूर करनेकी प्रार्थना की। शङ्कर ब्राह्मण प्रभाकरके भक्तिभाव और एकनिष्ठाको देख कर बहुत सन्तुष्ट हुए थे, तुरत उन्होंने मन ही मनमें भगवान्का ध्यान कर जड़-भावापन्न ब्राह्मण-पुत्र पर शुद्ध जलका एक छींटा दिया और क्षण भरमें उसकी जड़ता दूर हो गई। वह सब कुछ सुनने और बोलने लगा। प्रभाकर पण्डितने—शङ्करकी अपने ऊपर अतुल कृपा समझ उस पुत्रको उनके चरणों पर भेंट चढ़ा दिया। पुत्रने शङ्करके आशीर्वादसे ही आरोग्यता लाभ कर दिव्य देह और रूप तथा ज्ञान प्राप्त किया था, इस लिये उसने भी शङ्करके चरणोंमें अपनेको समर्पण कर दिया। शङ्करने उस ब्राह्मण बालकको संन्यासकी दीक्षा दी और 'हस्तामलक' नाम

रखा। सुविख्यात तत्त्वपूर्ण पुस्तक 'हस्तामलक' उसी ब्राह्मण बालककी रची हुई पुस्तक है। इसके बाद हस्तामलकने भी शङ्कर स्वामीका ही अनुगमन किया।

+ + + +

एक बार भ्रमण करते हुए शङ्कर-स्वामी अपने शिष्यों सहित 'मौन-अवन्तिका' नामक स्थान पर पहुंचे। वह स्थान बहुत ही पवित्र और प्राकृतिक शोभाका लीलाक्षेत्र था। शङ्करने सोचा कि यहांकी मनोरमताको देख कर ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे चिरवसन्तका साम्राज्य हो। जहां शङ्कर ठहरे हुए थे, वहां पास ही मनोहर सरोवर था। सरोवरमें कमल-फूल विकसित होकर मृदु मारुत हिल्लोलसे मकरन्द सौरभ वितरण कर रहे थे। मधुकर गण गुन गुन-रवकी झन्कार-ध्वनिसे प्रस्फुटित होकर ऐसे प्रतीत हो रहे थे—जैसे कमल-समूहसे प्रेम-सम्भाषण कर रहे हों। पास ही नाना प्रकारके फल फूलोंसे मण्डित लता-वृक्ष, झूम झूम कर कोई अज्ञात गीत गा रहे थे। उन पर बैठे हुए-नाना जातियोंके पक्षी सुमधुर गान गाकर अपूर्व स्वग-सुधा वर्षण कर रहे थे। इस स्थानकी सुन्दर और मधुर मनोहारिताको देख कर योगी जन भी मोहित हो जाते थे। मनोमुग्धकर इस स्थानको रमणीयताको देख कर शङ्करने भी कुछ दिन यहीं अवस्थान करनेका सङ्कल्प किया और शिष्यों सहित वहीं डेरा डाल दिया। यथानियम समस्त कार्य सम्पन्न होने लगे। एक दिन शङ्कर-स्वामी समाधि लगा कर परब्रह्मका ध्यान कर रहे थे और आत्मदर्शनके आनन्दमें विभोर थे। पास ही थोड़ी दूर पर बैठे अनेक शिष्य शङ्कर-स्वामीके अद्भुत कार्यकलापों एवं अमानुषिक क्रियाओंकी चर्चा कर रहे थे। वे कह रहे थे कि सचमुच ही हमारे गुरुदेव, शङ्करका ही अवतार हैं। नहीं तो ऐसी रूप-माधुरी, इतनी विद्या-बुद्धि

और गम्भीर ज्ञान-गवेषणा—किसी साधारण मनुष्यमें हो सकती थी ? नहीं—नहीं, यह नितान्त असम्भव है। गुरुदेव जिस समय शिक्षाके छलसे अध्यापन करते हैं, ऐसा मालूम होता है, जैसे संसारका पाप-ताप हरण करनेके लिये स्वयं सूर्य्य अपनी ज्ञान-रश्मियोंको विकीर्ण कर रहे हों। उनके एक-एक शब्दसे जगत्का भ्रम और अहङ्कार दूर हो जाता है। दूसरे शिष्यने कहा कि—गुरुदेव जिस समय परब्रह्मका उपदेश देते हुए कहते हैं कि—'हे हतभाग्य पतित मानव, तू सामान्य-कीट पतङ्गके समान नहीं है। तेरे भीतर ज्ञानका अग्नि स्फूलिङ्ग प्रज्वलित हो रहा है, किन्तु उदासीनता और आलस्य से वह निर्वापित हो जायगा, जाकर उस अग्निको प्रचण्ड रूपसे प्रज्वलित कर। उसके प्रज्वलित होने पर तुझे ज्ञान होगा कि तू सामान्य-तुच्छ जीव नहीं है। तू अमृतमय है, स्वयं स्वर्ग-स्वरूप है। तुझमें असीम ब्रह्म मौजूद है। तू स्वयं ब्रह्म है। तू माया-भ्रमके बंधन मे पड़ा हुआ संसारके पाप-तापोंको भोग रहा है। तेरी दु:ख-यन्त्रणा सब मिथ्या है, सब मोहमयी छाया है। प्रभु शङ्कर, पथभ्रष्ट भ्रान्त मनुष्योंको कल्याणका मार्ग दिखानेके लिये ही इस संसारमें अवतीर्ण हुए हैं।'

जिस समय शिष्यगण उपरोक्त कथनोपकथन कर रहे थे, ठीक इसी समय थोड़ी दूरसे किसीके कातर करुण-क्रन्दनकी ध्वनि सुनाई पड़ी। कुतुहलवश शिष्योंने पास जाकर देखा तो श्मशान घाट है। बहुतसे मनुष्य एक मृत बालकको भस्म करनेके लिये चिता तैयार कर रहे हैं। उस मृत बालकके माता-पिता शिर पीट-पीट कर रो रहे हैं। उनके रुदनसे मनुष्य तो क्या पशु-पक्षियों तकका हृदय विदीर्ण हुआ जाता है। इसी समय चिता तैयार करते हुए एक आदमीने चकित होकर कहा,—"क्या आश्चर्य है ! दारुण विडम्बना है, विधाताका

अद्भुत लीलाकाण्ड है! यह बालक माता-पिताका कौन था? कहां से आया और कहां चला गया? यही तो मनुष्यका भ्रम है, यही तो अज्ञानता है। इस अस्थायी संसारमें जीवनका मूल्य ही क्या है? इस प्रकारसे कह कर वह चुप हो गया। तब दूसरे और तीसरेने इसी प्रकारकी श्मशान-वैराग्यकी बात कही। इन लोगोंकी वैराग्यपूर्ण बातोंको सुन कर शङ्कर स्वामीके एक शिष्यने कहा,—"भगवान् ही जीवनकी गति है। संसारको अधोगतिके पथसे रोकनेके लिये स्वयं शङ्करने शङ्करके रूपमें जन्म लिया है। उनके तत्त्व-ज्ञानको प्राप्त करनेसे मनुष्य मोक्ष-प्राप्तिके पथका अधिकारी होता है। उसकी मोह-माया नष्ट हो जाती है।"

इधर शङ्करने समाधि भङ्ग होने पर जब उस बालकके माता-पिताकी रुदन-ध्वनि सुनी, तो वे मन ही मनमें बोले,—"हाय, कैसी निदारुण यन्त्रणा है! वृथा माया-मोहकी भ्रान्तिमें पतित होकर मनुष्यको कैसा भीषण शोक-ताप होता है। भगवन्, जीवकी यह भयङ्कर भव-यन्त्रणा कब दूर होगी?" इसी समय दिव्य ज्ञान द्वारा शङ्करने इस रुदन-ध्वनिका कारण अवगत किया। उन्हे उनके अन्तस्तम प्रदेशसे यह आदेश हुआ कि इस बालकके प्राण बचाने होंगे। योग-बलसे शङ्करने वैसा ही किया। अरथी पर पड़ा हुआ बालक उठ कर बैठ गया! शोक-संतप्त परिवार चकित होकर इस व्यापारको देखने लगा। इसी समय शङ्कर वहां उपस्थित हुए और उनको आदेश दिया। उन्होंने उनको प्रणाम किया और उनकी जय-ध्वनिसे निस्तब्ध वनस्थली गूंज उठी।

—*—

सप्तम-परिच्छेद ।



दिग्विजय ।



शङ्कर, गुरु गोविन्दपाद और गौड़ाचार्यकी इच्छानुसार वैदिक-धर्मका प्रचार करनेके लिये जिस समय समस्त देशमें भ्रमण करने लगे, उस समय देशमें जो धर्म-विप्लव उपस्थित हो रहा था, उसको देख कर इस वातकी आवश्यकता प्रतीत हुई कि सर्वप्रथम वैदिक-धर्मके विरोधी दलोंके मुखिया पण्डितोंको शास्त्रार्थमे परास्त करना चाहिये। क्योंकि इन पण्डितोंका समस्त देश पर प्रभाव था। राजा और रङ्क इनके धर्मप्रभावसे प्रभावित थे। धनी और दरिद्र इन्हीं लोगों को धर्मका अवतार मानते थे। सुतरां—शङ्कराचार्यने चारों ओर इस वातकी घोषणा कर दी कि सत्य-सनातन वैदिकधर्म ही वास्तविक धर्म है और सव ये पाखण्ड हैं। निरीश्वरवादी अधार्मिक हैं, पशुओं और मनुष्योंका देवी-देवताओंके सामने वलिदान करने वाले लम्पट हैं। जिन्हे सत्यासत्यका निर्णय करना हो, वे शास्त्रार्थ करके अपने भ्रमको मिटा लें। शङ्कर स्वामीकी इस प्रकाश्य घोषणासे समस्त देशमें कोलाहल मच गया। वौद्ध, शङ्करको पाखण्डी वताने लगे—और वामियोंने तो उन्हे नास्तिक तक कहना आरम्भ कर दिया। परन्तु भगवान् भुवन-भास्करके दिव्यालोकको रोकनेकी किसमें शक्ति है। उल्लूक और चमगीदड़ जैसे सूर्यके प्रकाशको देख कर भाग पड़ते हैं, ठीक वही दशा उन पण्डितों और वौद्धोंकी हुई। पहले छोटे-मोटे पण्डित लोग शङ्करसे जोर-अजमाई करने लगे। इसके वाद वड़े-वड़े प्रकाण्ड

पण्डितोंका नम्बर आया। वे भी एक-एक कर परास्त होने लगे। इसके बाद शंकर-स्वामीने राजा-महाराजाओंके उन पण्डित-प्रवरोंका आह्वान किया जो अपनी प्रगाढ़ विद्वत्ताके कारण राजाओंके यहां धर्माचार्य बने बठे थे। अब क्या था—बड़े-बड़े राज-पण्डित जो अभिमानमें फूले बैठे थे, शंकरसे शास्त्रार्थ करनेके लिये मैदानमें आनेको बाध्य हुए। इन पण्डितोंसे जब शास्त्रार्थोंमें कुछ किये न बन पड़ा, तो नाना प्रकारसे षड्यन्त्र रच कर शंकर स्वामीको परास्त कर मार डालनेकी धमकी तक देते। परन्तु अखण्ड ब्रह्मचारी, महा तेजस्वी शंकरने इन लोगोंकी गिदड़ भबकियोंकी कुछ भी परवा न की। इसी समय राजा सुधन्वा जो बौद्ध थे, उनके दरबारमें शङ्कर स्वामीने सत्यासत्य धर्मका निर्णय करनेके लिये उनके पण्डितोंका आह्वान किया। पहले तो उनके राजपण्डितोंने मुण्डित मस्तक, अज्ञात-कुलशील आदि कह कर शंकर स्वामीकी उपेक्षा की, परन्तु जब राजा सुधन्वाको इस बातका पता लगा तो उन्होंने अपने पण्डितोंको शंकर से शास्त्रार्थ करनेके लिये विवश किया। राज-दरबारमें ही शास्त्रार्थका प्रबन्ध किया गया। पहले तो राज-पण्डितोंने—शंकरको नाना प्रकार से पराजित करनेकी चेष्टा की, परन्तु शंकर पर इन बातोंका कुछ भी प्रभाव न पड़ा। तब बौद्ध पण्डितोंने वाममार्गके कुकर्मोंका उल्लेख कर, वैदिकधर्मकी निन्दा करनी आरम्भ की, जिससे सर्वसाधारण लोग शंकर-स्वामीको भी वामी समझ कर घृणा करने लगें। परन्तु बौद्ध पण्डितोंका यह निशाना भी व्यर्थ गया। तब तो बौद्ध-पण्डित बहुत घबड़ाये। पर करते क्या? स्वयं राजा सुधन्वा धर्माधर्मका निर्णय कराना चाहते थे। तब विवश हो बौद्ध पण्डितोंको शास्त्रार्थ करना पड़ा। लगा शास्त्रार्थ होने। शङ्कर स्वामीने अपनी अद्भुत प्रतिभा और अभूतपूर्व पांडित्यसे बौद्ध पण्डितोंको ऐसा छकाया कि

इसी प्रकारसे भ्रमण करते हुए शंकर-स्वामी एक दिन सदल-बल मध्यार्जुन नामके स्थानमें पहुंचे। इस दिग्विजय-भ्रमणमें शंकर स्वामी-के साथ उनके प्रधान शिष्य भी थे। इन शिष्योंमें पद्मपाद, हस्तामलक, समितपाणि, ज्ञानकन्द, विष्णुगुप्त, शुद्धकीर्ति, भानुमरीचि, कृष्ण-दर्शन, बुद्धि-विरश्चि, पदशुद्धान्त और आनन्दगिरिका नाम उल्लेखनीय है। ये सभी शिष्य अत्यन्त विद्वान् और प्रतिभाशाली पण्डित थे। गुरुकी आज्ञा होने पर ये लोग भी विधर्मियोंसे शास्त्रार्थ कर जगह-जगह उनको परास्त करते थे। अस्तु, मध्यार्जुन नामक स्थान मे वाममार्गियोंका उस समय प्रधान मठ था। वामियों के बड़े-बड़े पण्डित और धर्माचार्य यहां रहते थे। इस तान्त्रिक सम्प्रदायके लोग सर्वसाधारणको छल और कपटसे ठगते थे और तन्त्रोक्त साधनका दम्भ करके नाना प्रकारसे लोगोंके साथ धूर्तता करके प्रतारणा कर भ्रान्त-पथ पर चलाते थे। इन लोगोंने मद्य, मांस और कदाचारका प्रचार कर धर्मके नामको कलुषित कर रखा था। शङ्कर इनकी अधोगति एवं अज्ञानताको देख कर मर्माहत हुए। इन लोगोंके इस दुराचरणको देख कर शङ्करने विचार किया कि यहां केवल मौखिक शास्त्रार्थसे काम नहीं चलेगा। क्योंकि बिना चमत्कार दिखाये इन लोगोंकी बद्धमूल धारणा नष्ट नहीं होगी। इस प्रकारसे विचार कर शङ्कर एकान्त मनसे भगवान् शिवकी उपासनामें प्रवृत्त हुए। समाधिमे शङ्करको ऐसा प्रतीत हुआ कि चेष्टा करने पर ये लोग सुपथ पर आ सकते हैं। सुतरां—अगले दिन शङ्कर स्वामीने मध्यार्जुन नामक शिव-मन्दिरमें प्रविष्ट होकर जो भगवान्की आराधना की तो उन्होंने देखा कि दश महाविद्या-रूपी-देवी भगवती स्वयं शिवकी आराधना कर रही हैं। मन्दिरमें इस दृश्यको देख कर शङ्करका हृदय भक्तिभावसे पूर्ण हो गया। उन्होंने अत्यन्त दयार्द्र-करुण-कण्ठसे हाथ जोड़ कर कहा,—

"प्रभो, आप देवादिदेव महादेव विश्वपति हैं। निखिल ब्रह्माण्डमें आप की ही सत्ता है। आप सर्वज्ञ शक्तिमान हैं। ऐसी कोई बात नहीं है जो आपको अविदित हो। मैं काय मनोवाक्यसे आपका उपासक हूं। आप ही मेरे प्राण हैं और आप ही सब कुछ हैं। आप परम करुणामय हैं। जो भक्त लोग भक्तिभावसे तन्मय होकर आपसे कुछ मागते हैं, वह आपके लिये कभी अदेय नहीं होता। आपके निकट मेरी एक कातर प्रार्थना है। दया करके मुझे बताइये कि कौन तत्त्व प्रकृत सत्य है। द्वैतभाव सत्य है—या अद्वैत भाव?" शङ्करकी प्रार्थना समाप्त होते ही तीन बार देव-वाणी हुई कि—'अद्वैत ही सत्य है।' इस अद्भुत देववाणीको सुन कर मन्दिरके आसपास बैठे हुए नर-नारी अत्यन्त चमत्कृत हुए। विपक्षी सम्प्रदायके लोग भी इस आश्चर्य-व्यापारको देख कर स्तम्भित हो गये। उन लोगोंने इस बातको स्पष्ट-रूपसे समझ लिया कि शङ्कर अवश्य दैवी-विभूति सम्पन्न महापुरुष हैं। इस विचित्र व्यापारको देख कर उन लोगोंने शास्त्रार्थ करनेसे इन्कार कर दिया। दलके दल वाममार्गी भ्रान्त आचार-व्यवहार-उपासना पद्धतिका परित्याग कर शङ्कर स्वामीके अद्वैत-मत को ग्रहण करने लगे। उन लोगोंने वाम-मार्गको परित्याग कर शङ्कर द्वारा निर्धारित अद्वैत-मतकी शरण ली।

यहासे प्रस्थान कर शङ्कर स्वामीने मध्यार्जुन समीपस्थ पार्वत्य-प्रदेशमें भ्रमण करना आरम्भ किया। लोगोंने यहां कितने ही सम्प्र-दाय बना रखे थे। कोई महाशक्तिका उपासक था, कोई सरस्वतीका। कितने ही लोग वामाचारी थे, जो सदा मद्य, मांस और कदाचारमे ही प्रवृत्त रहते थे और उसीको धर्म समझते थे। इन लोगोंके साथ शङ्कर स्वामीका घोर तर्क-वितर्क आचार व्यवहारको लेकर उपस्थित हुआ। वामी कहते थे कि हमारा आचार व्यवहार सब शास्त्रोक्त है। इस पर

शङ्कर स्वामीने मनुस्मृतिका 'काय गतं ब्रह्म' आदि श्लोक पढ कर कहा कि विषमें बुझे हुए बाणसे मरे हुए मृगके मांसको 'कलञ्ज' कहते हैं। उसको जो खाते हैं और मद्यपान करते हैं उनकी ब्रह्मण्यता लुप्त हो जाती है। इसलिये तुम लोग भी धर्मसे पतित हो गये हो। यदि अब भी तुम इस भ्रष्टाचार कोपरित्याग कर धर्मको ग्रहण करो, तो तुम्हारा उद्धार हो सकता है। इस पर उनकी मूढता दूर हो गयी और उन्होंने प्रायश्चित्त कर अद्वैत मतका अवलम्बन किया।

इसके बाद शङ्कर स्वामी सुविख्यात तुला-भवानी-मन्दिरमें उपस्थित हुए। यहा वामाचारियोंका प्रधान अड्डा था। मद्य, मांस और व्यभिचारमें सब लोगोंकी आसक्ति थी। शङ्करके यहां पहुंचने पर बड़ा कोलाहल मचा। अन्तमें शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। वामी पण्डित शङ्कर के अद्वैतवादका युक्ति और प्रमाणोंसे खण्डन करने लगे। वे कहने लगे कि—पहले प्रवृत्ति मार्गका अनुसरण कर कर्मवासनाको नष्ट करना आवश्यक है। इसके बिना साधारण मनुष्योंका उद्धार नहीं हो सकता। इस पर शास्त्रोंकी विशद व्याख्या कर शङ्कर स्वामीने समझाया कि तुम लोगोंकी यह धारणा मिथ्या है और फिर तुम लोग तो जिस कर्म मे प्रवृत्त हुए हो, वह तो कर्म नहीं कुकर्म है। कदाचारी मनुष्य धर्म के उत्कर्षको समझ ही नहीं सकता। इससे अधोगति अनिवार्य है। इस प्रकारके कर्म करनेसे मनुष्य पशुत्वमें परिणत हो जाता है। इस प्रकारसे समझा कर शङ्करने वामियोंके तर्क और युक्तियोंको क्षणभरमें छिन्न-भिन्न करके रख दिया। वामी पण्डितोंका अज्ञानान्धकार दूर हो गया। उन्होंने वाममार्गको परित्याग कर शङ्करका शिष्यत्व स्वीकार किया। उस समय तुला-भवानीके तान्त्रिक सम्प्रदायकी देश में बहुत ख्याति थी। इस सम्प्रदायके परास्त होने पर देशमें शङ्कर-स्वामी और भी अधिक प्रसिद्ध हो गये।

शङ्कर जहां एक ओर निरीश्वरवादी बौद्ध और जैन-धर्मियोंको परास्त करते जाते थे, दूसरी ओर सनातनधर्मकी नाना रूपोंमें प्रकट हुई—सम्प्रदायोंका मत-परिवर्तित करके उनको अद्वैत मत-भुक्त करते जाते थे। उस समय शाक्तथ और शैव नाना रूपोंमें विभक्त हो रहे थे। इनमें कापालिक, भैरव, क्षपणक प्रभृति विशेष प्रभावशाली थे। बौद्धों की तरहसे इन लोगोंके मतको भी शङ्कर स्वामीने विध्वस्त किया।

दक्षिण दिग्विजय करते हुए शङ्कर-स्वामी सेतुबन्ध रामेश्वर की ओर अग्रसर हुए। मार्गमें द्रविड, पण्डा, चोल प्रभृति स्थानों में भी उपस्थित हुए। इन स्थानोंमें उस समय भी संस्कृतका बड़ा प्रचार था। अनेक द्वैतवादी पण्डित रहते थे। मार्गमें जगह-जगह पण्डितों को सादर बुला कर शङ्कर स्वामीने उनके साथ शास्त्र-चर्चा की। इन पण्डितोंमें अधिकांश शैव-मतानुयायी थे, परन्तु वाह्य चिन्ह त्रिपुण्डादि के विशेष पक्षपाती थे। शङ्करने इन लोगोंको भी शास्त्रोंके वचनों और युक्ति तर्कसे समझा कर विशुद्ध-अद्वैतवादका अनुयायी बनाया। इन सभी विद्वान् पण्डितोंने शङ्कर स्वामीका शिष्यत्व स्वीकार किया। शङ्करने इन लोगोंको समझाया कि केवल वाह्याडम्बरत्त्व और बाह्य-चिन्होंसे ही धर्म-पालन नहीं होता। चित्त-शुद्धि, संयम और आत्मज्ञान ही धर्म प्राप्तिका प्रकृत सोपान है। उन्होंने शङ्कर स्वामीके सिद्धान्तोंको सहर्ष स्वीकार कर लिया और उसीके अनुसार कार्य करने लगे।

रामेश्वरसे लौट कर शङ्कर-स्वामी वैष्णव-प्रधान तीर्थ अनन्त-शय्या पहुंचे। यहां पर अनेक वैष्णव सम्प्रदाय-भुक्त लोगोंका वास था। भक्त, भागवत, वैशानन, वैष्णव, कर्महीन, पञ्चराग प्रभृति लोगों का बहुत प्रभाव था। इन धर्मोंके माननेवाले प्रायः सभी प्रमुख विद्वानों को बुला कर शङ्कर स्वामीने कहा कि—आप लोग अपने-अपने धर्म का प्रतिपादन करें। इन लोगोंने अपने-अपने धर्मको व्यक्त किया।

ये वैष्णव भी नाना चिन्होंसे अलंकृत थे। तिलक, शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण करना धर्मका विशेष अङ्ग समझते थे। शङ्कर स्वामीने अनेक तर्क और युक्तियों द्वारा इनके आचार व्यवहारका खण्डन किया। अन्तमें सब लोगोंको सम्बोधन कर कहा,—"वैष्णव गण, केवल वाह्य चिन्ह धारण कर लेने मात्रसे धर्म-साधन नहीं हो सकता। वल्कि वाह्याडम्बर तो धर्मके प्रतिकूल है। प्रकृत धर्म-साधना इन वाह्याडम्बरोंसे शून्य आत्म-चिन्तनसे हो सकती है। परन्तु तुम लोग समझते हो कि इन वाह्याडम्बरोंसे ही धर्म-साधन होता है। इस प्रकारकी आप लोगोंकी धारणा नितान्त भ्रमात्मक है। प्रकृत धर्म-साधना निष्काम भावसे कर्म करनेसे होती है। वासनाके वशमें होकर कर्म करनेसे सिद्धि नहीं हो सकती। इससे प्रकृत फल नहीं मिलता। वासना और आडम्बरसे तो चित्त मलिन हो जाता है। तुम लोग तो और भी अधिक वन्धनोंमे आवद्ध होते हो। मनुष्य तो वैसे ही दुर्वल है। मोह, इन्द्रिय, मन और बुद्धि आदि अनेक प्रकारके वन्धनों में आवद्ध है। इन सकल वन्धनोंके प्रभावसे ही वासना विकट हो उठती है और विकट वासना ही चित्तकी मलिनता और बुद्धिके विकार की कारण है। चित्त-शुद्धि और बुद्धि-संस्कार, गूढ धर्मसाधनके लिये सर्व-श्रेष्ठ उपाय और उपादान है। वासनाके विकट होने पर चित्तशुद्धि और बुद्धिसंस्कार साधित नहीं हो सकते। अतएव जिससे वासना परित्याग करके धर्म-कर्मोका अनुष्ठान हो सके, उसीके लिये यत्नवान् होना चाहिये। निष्काम भावसे सद्गुरुके प्राप्त करनेकी चेष्टा करो। विशुद्ध-तत्वकी प्राप्तिकी व्याकुलता उत्पन्न होनेसे सद्गुरुकी प्राप्ति हो सकती है, जो ज्ञानाञ्जन-शलाका द्वारा इस अज्ञानान्धकारको दूर कर सकता है। अज्ञानान्धकार दूर होने पर ही तत्वकी प्राप्ति होगी। तव तुम समझ सकोगे कि हम कौन हैं। अपने वास्तविक रूपको जानने

पर ही संसारके वन्धनोंसे मुक्त हो सकोगे । 'अहंब्रह्म' का ज्ञान स्पष्ट आभासित होगा । मैं ही ब्रह्म हूं—ब्रह्मसे भिन्न नहीं, जब तक यह ज्ञान प्राप्त नहीं होता, तब तक वन्धनोंसे मुक्ति नहीं हो सकती । 'अहं-ब्रह्म' को समझना ही प्रकृत ज्ञान-तत्त्व है। माया-मोहमें फंसा हुआ जीव भगवान्से अपनेको भिन्न समझता है। माया-मोहका पर्दा उठते ही वह इसके परम तत्त्वको जान लेता। सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म हो कर जीव, परमानन्दका उपभोग करता है। अतएव हे वैष्णव गण, इन वाह्याडम्बरोंसे मुक्त होकर तुम परमानन्दकी प्राप्तिके लिये यत्नवान् हो। विना आत्म-तत्त्वकी प्राप्तिके मुक्ति नहीं हो सकती।" आचार्य शङ्करके अखण्डनीय युक्ति-तर्क और अपूर्व निगूढ़ धर्म-मीमांसाको सुन कर वैष्णवोंकी धर्म सम्बन्धी भ्रमात्मक धारणा दूर हो गयी। उन्होंने शङ्कर स्वामीको साष्टाङ्ग प्रणाम कर उनके धर्म-मतको स्वीकार किया। इसके वाद शङ्कर स्वामीने सुब्रह्मण्य नामक स्थानमें कुछ दिन अवस्थान कर अद्वैत मतका प्रचार किया।

काशी-अवस्थानके समय शङ्कर स्वामीने देखा था और अनुभव किया था कि इस आर्य-भूमि भारतवर्षसे सत्यसनातन वैदिकधर्म दिन पर दिन विलुप्त हो रहा है। परम पवित्र धर्मक्षेत्र काशीमें ही वैदिक धर्मके स्थानमें विविध अपधर्मोंका प्रभाव परिवर्द्धित हो रहा है। कर्मवादी, चन्द्रोपासक, महोपासक, गरुडोपासक, त्रिपुरसेवी नाना प्रकारके कदाचारी धर्म सम्प्रदायोंका अभ्युदय हो रहा था। ये लोग अपने विकृत धर्मके प्रचारसे वैदिक सनातनधर्मको विलुप्त करने का उपक्रम कर रहे थे। इन सब वातोंको देख कर शङ्कर-स्वामी अत्यन्त दुःखी हुए और वैदिकधर्मकी स्थापना और प्रचारके लिये व्याकुल हो उठे। इसके पश्चात् शङ्कर स्वामीने अपने शिष्योंसे परामर्श कर प्रत्येक प्रसिद्ध स्थान पर एक-एक प्रचार-मठ स्थापित करनेका विचार

स्थिर किया। परन्तु ऐसे मठ स्थापित करनेसे पहले यह आवश्यक था कि—कदाचारी सम्प्रदायोंके प्रमुख पण्डितों और धर्माचार्योंको शास्त्रार्थ कर पराजित किया जाता। सुतरां शङ्कर स्वामीने समस्त देशमे भ्रमण कर इन सम्प्रदायोंके मुखियोंको पराजित करना आरम्भ किया।

इस प्रकारसे समस्त देशमे भ्रमण कर शङ्कर स्वामीने उपरोक्त सम्प्रदायोंके प्रभावको अपनी प्रखर प्रतिभा तथा प्रगाढ़ विद्वत्ता द्वारा नष्ट किया और सनातन-वैदिक-धर्मकी प्रतिष्ठा की। इसी भ्रमण में शङ्कर स्वामीने उत्तर दक्षिण और पूर्व पश्चिम चारों दिशाओंमे प्रधान मठ स्थापित किये। इसके वाद कुरुक्षेत्रको होते हुए वद्रिकाश्रममें उपस्थित हुए। अथर्ववेदके प्रचारके लिये यहा एक मठ स्थापित किया गया। आज भी यह मठ 'जोशी मठ' के नामसे प्रसिद्ध है। इस मठ के अध्यक्ष पद पर अपने सुयोग्य शिष्य सनन्दनको अभिषिक्त किया। यहांसे प्रस्थान कर शङ्कर-स्वामी फिर दक्षिणकी ओर चले। मार्गमे अनेक पण्डितों और धर्माचार्योंको परास्त करते हुए अन्तमे मध्यार्जुन नामक स्थानमें पहुंचे। यह स्थान तुङ्गभद्रा नदीके तट पर अवस्थित है। यहांकी नैसर्गिक शोभाको देख कर शङ्कर स्वामी बहुत प्रसन्न हुए। परन्तु यहां भी उस समय बौद्धों और वामियोंके मतका वहुत प्रचार था। वैदिक-धर्मके भावोंको जाग्रत करनेके लिये यहा भी शङ्कर स्वामीको अनेक पण्डितोंसे शास्त्रार्थ करना पडा। पण्डित लोग शङ्कर स्वामीको तीव्र-बुद्धि और अद्भुत विद्वत्ता और सूक्ष्म विचारोंको देख सुन कर विमुग्ध हो गये। अनेक लोगोंने शङ्कर स्वामीके सिद्धान्तोंको स्वीकार किया। स्थिति अनुकूल देख कर शङ्कर स्वामी ने यहां भी यजुर्वेदके प्रचारके लिये एक मठ स्थापित किया और अध्यक्ष पद पर अपने विद्वान् शिष्य सुरेश्वराचार्यको अभिषिक्त किया।

इस मठका नाम 'विद्या-मठ' रखा गया। परन्तु आज कल यह मठ "शृङ्गेरी-मठ" के नामसे प्रसिद्ध है। सुरेश्वराचार्य यहां रह कर गुरु की आज्ञानुसार वैदिकधर्मका प्रचार करने लगे। अनेक विद्वान् पण्डितोंने भी इस कार्यमें सहयोग प्रदान किया, जिससे यहां एक प्रधान वैदिक-धर्म सङ्घ स्थापित हो गया। इसी सङ्घके शिष्य समुदायका नाम 'भारती' पड़ा। भारती-उपाधिधारी जो साधुगण आजकल भारतमें भ्रमण करते पाये जाते हैं, उनका उद्भव-स्थान यही मठ था।

इस मठके समीपस्थ स्थानोंमें बौद्ध धर्मका अत्यन्त अधिक प्रचार था। वायु, वरुण, उदक और भूमि इत्यादिके नामसे बौद्धोंके अनेक सङ्घ स्थापित थे। शङ्करने 'विद्या-मठ' स्थापित कर इन बौद्धों को पराजित कर बौद्ध धर्मको विध्वंस करना आरम्भ किया। इन लोगोंमें से अनेकोंने अपने धर्म-मतको भ्रमात्मक समझ कर परित्याग कर दिया और वैदिक धर्मकी शरण ली।

इसके पश्चात् अनेक स्थानोंमे भ्रमण करते हुए शङ्कर, भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाभूमि हिंदुओंके परम पवित्र तीर्थ द्वारकामे पहुंचे। समुद्र-तटकी मनोरमताको देख कर शङ्कर स्वामीकी प्रबल इच्छा हुई कि, यहां भी वैदिक धर्मके प्रचारके लिये एक मठ स्थापित किया जाय। अपने शिष्योंसे शङ्कर स्वामीने वैदिकधर्म-प्रचार करने को कहा। शिष्यगण उद्योग और आयोजन करने लगे। थोड़े समयके उद्योग करने पर ही शङ्कर स्वामीकी इच्छा पूर्ण हुई। बड़े समारोहसे यहां 'शारदा-मठ'की स्थापना की गयी। श्रीकृष्णने श्रीमद्भगवद्गीता में स्वयं कहा है कि—'वेदानां साम वेदोऽस्मि' इस लिये बहुत तर्क-वितर्कके बाद शङ्कर स्वामीने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी इच्छाके अनुसार उनके प्रिय सामवेदकी प्रतिष्ठा या प्रचार की ही व्यवस्था की।

साथ ही सामवेदके पार-दर्शी परम पण्डित शिष्य विश्वरूपको इस मठ के अध्यक्ष और परिचालक पद पर अधिष्ठित किया।

यहासे शङ्कर स्वामीने कुवलयपुर-भवानीनगरकी ओरको प्रस्थान किया। मार्गमें हिरण्यगर्भ, आदित्य, गाणपत्य और अग्निहोत्र प्रभृति सम्प्रदायोंके आचार्योंसे शङ्करने शास्त्रार्थ किया। इन सम्प्रदायोंके प्रायः सभी आचार्य द्वैतवादी थे। शङ्कर स्वामीने द्वैतवादका युक्ति तर्क और प्रमाणोंसे खण्डन कर इन लोगोंको परास्त किया। इनमेंसे अनेक लोगोंने शङ्करकी अद्‌भुत प्रतिभा और महान् विद्वत्ता को देख कर आश्चर्य प्रकट किया और अनेक पण्डितोंने शङ्करके मतको स्वीकार किया। यहासे चल कर शङ्कर स्वामी अदोवच पहुंचे। यहां नृसिंह-उपासकों और द्वैतवादियोंका प्रभाव था। यहांके सभी पण्डितों को शास्त्रार्थमें पराजित कर अपने धर्ममत में शामिल किया। यहां से चल कर शङ्कर स्वामी काञ्ची पहुंचे। उस समय हिमशीतल नामका राजा काञ्चीमें राज्य करता था। राजा, बौद्ध-धर्मानुयायी था और उसके दरबारमें अनेक बौद्ध-पण्डित और श्रवण रहते थे। इन लोगोंके प्रभावसे यहां सनातन वैदिक धर्मका बिलकुल लोप हो गया था। यहां के इस नास्तिकतावादको देखकर शङ्कर स्वामीने राजाके बौद्ध-पण्डितों को शास्त्रार्थके लिये आह्वान किया। अब लगा समारोहसे शास्त्रार्थ होने। बौद्ध-पण्डित शून्यवाद और निर्वाण-तत्त्वकी श्रेष्ठताका प्रति-पादन करने लगे। शङ्करने इन पण्डितोंके युक्ति और तर्कोंको क्षणभर में खण्ड-खण्ड करके रख दिया। अन्तमे यहा बौद्ध-पण्डितों को पराजित कर शङ्करने वैदिक-धर्मकी स्थापना की। शङ्करकी असाधारण प्रतिभा पर मुग्ध होकर राजाने भी अपने पण्डितों सहित बौद्ध-धर्म को परित्याग कर शुद्ध सनातन-वैदिक-धर्मकी शरण ली। वैदिक-धर्म के प्रचारके लिये शङ्कर-स्वामीने यहां दो वैदिक-धर्म-प्रचार-केन्द्र

स्थापित किये । एकका नाम 'विष्णुकाञ्ची' और दूसरेका नाम 'शिव-काञ्ची' रखा । आज भी ये दोनों केन्द्र उपस्थित हैं ।

यहांसे चल कर शङ्कर-स्वामी विख्यात तीर्थ कामरूपमें पहुंचे । अभिनव गुप्त नामका वहां एक परम पण्डित रहता था । अभिनव-गुप्तकी शास्त्रोंमे गहन गति थी । परन्तु था वड़ा कुमति । शङ्कर से शास्त्रार्थमें पराजित होकर उसने समझा कि मेरा वड़ा अपमान हो गया । प्रतिशोध लेनेके लिये उसने अभिचार-क्रिया द्वारा शङ्कर को शारीरिक कष्ट देनेका विचार स्थिर किया और अन्तमें सुयोग पाकर विचारको कार्यमें परिणत कर डाला । इससे शङ्कर स्वामीको भगन्दर रोग हो गया । परन्तु अपने साथी एक मन्त्र-कुशल शिष्यके मन्त्र-प्रभावसे शङ्कर स्वामीका यह रोग शान्त हो गया ।



अष्टम-परिच्छेद ।

कुमारिल भट्टका उद्भव ।

भारतवर्षमे उस समय कैसा धर्म-विप्लव उपस्थित हो रहा था, इसका उल्लेख हम पहले परिच्छेदोमे कर चुके हैं । जैन और बौद्धोंके मत-प्रचारके कारण वेदों और यज्ञानुष्ठानोंको बड़ी घृणाकी दृष्टि से देखा जाता था । बौद्ध और जैन वर्णव्यवस्थाकी निन्दा करते हुए वेदों और शास्त्रोंको ब्राह्मणों की गपोड़बाजी बताते थे । सन्ध्या-वन्दनादि करनेवाले कर्मकाण्डियों को भण्ड और पाखण्डी बताया जाता था । इसी तरहसे कापालिक मतके अनुयायी लोग, द्विजोंके शिरोंको बलिदान कर भवानीको प्रसन्न करनेकी चेष्टा करते थे ! वेदों और ब्राह्मणों पर इस प्रकारसे जब चारों ओरसे विपत्तिके बादल छा रहे थे, तब ब्राह्मणोंने इन मिथ्या अपधर्मों का विध्वंस करनेके लिये अपना सङ्गठन करना आरम्भ किया । दलके दल ब्राह्मण-बालक फिर वेद-वेदाङ्गोंको पढ कर पण्डित होने लगे । उस समय ब्राह्मणोंने वैदिक-धर्मकी रक्षाके लिये सर्वप्रथम यह कर्तव्य निश्चित किया कि—कुछ भी हो, हमको वेदोंके अध्ययनाध्यापनमें ही अधिक तत्परता दिखानी चाहिये । इसी समय कुमारिल नामके एक तेजस्वी ब्राह्मण-युवकका आविर्भाव हुआ । कुमारिल का जन्म-स्थान कौनसा था, उन्होंने कौनसे ब्राह्मण-वंशमें जन्म लेकर उसको गौरवान्वित किया था, यह तो सब ज्ञात होना कठिन ही नहीं, नितान्त असम्भव है । क्योंकि भारतके शृङ्खलाबद्ध इतिहासका कभी सङ्कलन ही नहीं हुआ ।

परन्तु 'शङ्कर-दिग्विजय' आदिसे जो पता लगता है, उसका मर्म यही है कि कुमारिल भट्टने नियमपूर्वक ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन कर अनेक शास्त्रोंको पढ़ा, वेदोंका अच्छी तरहसे विश्लेषण कर उनके वास्तविक मर्मको हृदयङ्गम किया। कुमारिल दर्शनोंके भी अद्वितीय विद्वान् थे। वे तपस्वी और तेजस्वी भी इतने थे कि, निकटपूर्वसे लेकर अब तक उनकी समानता करनेवाला कोई त्यागी और दृढ़प्रतिज्ञ ब्राह्मण इस भारतभूमिमें फिर उत्पन्न नहीं हुआ। कुमारिलने यह तैयारी नास्तिक बौद्धों और पिशाच-कर्मा वामियोंके धर्मोच्छेदके लिये की थी। बाल्यावस्थामें ही कुमारिलने यह प्रण किया था कि मैं इन अपधर्मों को विध्वस्त कर वैदिक-धर्मकी पुनः स्थापना करूंगा। सुतरां शास्त्रोंमें अपूर्व योग्यता प्राप्त कर कुमारिलने यथासमय अपना कार्यारम्भ किया। यह उस समयकी बात है जब कि शङ्कर नितान्त बालक थे। शास्त्रोंमें कुमारिलकी जैसी गहन गति थी, वैसा ही उनका सत्यतामें दृढ़ विश्वास था। अपूर्व विद्वान् होनेके कारण ही पण्डितसमाजने कुमारिलको भट्टपाद और सुब्रण्यकी उपाधियोंसे विभूषित किया था। कुमारिल भट्टने जब वैदिक-धर्मके प्रचारका कार्य आरम्भ किया, उस समय बौद्धोंकी ही चारों ओर तूती बोलती थी। कुमारिल भट्ट आर्ष-शास्त्रोंके तो विद्वान् थे, परन्तु बौद्ध तथा जैन-शास्त्रोंसे अनभिज्ञ होनेके कारण उनके प्रचार-कार्यमें बड़ी बाधा उपस्थित होती। इस-लिये छद्मवेशधारी बौद्ध-विद्यार्थीका रूप धारण कर कुमारिल-भट्टने बौद्धोंकी एक प्रधान पाठशालामें प्रवेश किया और थोड़े ही दिनोंके परिश्रमसे उनके शास्त्रोंके मर्मको अच्छी तरहसे समझ लिया।

एक दिनकी बात है कि कुमारिल भट्ट बौद्ध-पाठशालामें बैठे हुए अध्ययन कर रहे थे। और भी अनेक छात्र बैठे पठन-पाठनमें निमग्न थे। इसी समय कोई प्रसङ्ग उपस्थित होने पर उनके बौद्ध-गुरु

वेदोंकी निन्दा करते हुए वैदिक धर्मको भण्डोंका धर्म बताने लगे। कुमारिलने भी बौद्ध गुरु द्वारा होती हुई वैदिकधर्मकी निन्दाको सुना, परन्तु कुछ धैर्यका अवलम्बन करने पर भी आत्मसंवरण न कर सके। सहसा उनके नेत्रोंसे अविरल अश्रुपात होने लगा। इस अश्रुपातको देख कर उनके सहपाठी छात्रों और स्वयं गुरुको कुमारिल पर सन्देह हुआ और उस दिनसे वे एक संदिग्ध छात्र समझे जाने लगे। बौद्धों ने इस बातको अन्तमें अच्छी तरहसे समझ लिया कि यह वैदिकधर्मी ब्राह्मण है, और हमारे शास्त्रोंके मर्मको समझनेके लिये ही छद्म-रूप रूप धारण कर इसने पाठशालामें प्रवेश किया है। बौद्ध लोग कुमारिल से सशङ्कित हो उन्हें अपना परम शत्रु समझ कर पाठशालासे निकाल बाहर करनेका कोई उपाय सोचने लगे। अन्तमे अकस्मात् एक दिन ऐसी घटना घटित हुई कि उससे बौद्धोंकी इच्छा भी पूर्ण हो गयी। बात यह थी कि कुमारिल भट्ट एक दिन एक ऊंची दीवार पर बैठे हुए कुछ विचार कर रहे थे। इसी समय विद्वेष-बुद्धि बौद्ध छात्रोंने पीछेसे आकर उनको धक्का दे दिया। पहले तो एक बार 'अहिंसा-अहिंसा' की तुमुल-ध्वनि करने वाले बौद्ध छात्रों पर एक कुटिल दृष्टि-पात किया और तुरन्त ही यह कह कर नीचे गिर पड़े कि—'यदि वेद सत्य हैं, तो मुझे कौन मार सकता है।' दीवार परसे गिर पड़ने के कारण कुमारिल भट्टकी एक आंख सदाके लिये जाती रही। * परन्तु

---

* पतन्पतन्सौधतलान्यरोरुहं, यदि प्रमाणं श्रुतयो भवन्ति।
जीवेयमस्मिन्पतितोऽसमस्थले, मज्जीवने तच्छ्रुतमानता गतिः।
यदीह संदेह पदप्रयोगाद्व्याजेन शास्त्रश्रवणाच्च हेतोः।
ममोच्चदेशात्पततो व्यनङ्क्षीदेकं चक्षुर्विधि कल्पनासा॥

'शङ्कर-दिग्विजय'

कुमारिलने इसकी कुछ भी परवा नहीं की और क्योंकि उन्होंने छद्म-वेश धारण कर बौद्धोंकी पाठशालामें अध्ययन किया था, इसलिये इसे भगवान्‌का दिया दण्ड समझा। वे लोगोंसे कहा करते थे कि मैंने बोद्धोंको धोखा देकर उनकी पाठशालामें अध्ययन किया था, इसीलिये भगवान्‌ने मुझे यह दण्ड दिया है।

इसके बाद बौद्धोंके धर्मके मर्मको पूरी तरहसे समझ कर कुमारिल-भट्टने फिर वैदिक धर्मका प्रचार करना आरम्भ किया। कुमारिल समस्त देशमें भ्रमण कर बौद्धोंके मतका घोर खण्डन और वैदिक-धर्मके महत्वका प्रतिपादन करने लगे। अनेक जगह बौद्धोंसे कुमारिल का शास्त्रार्थ होता। युक्ति और तर्क तथा प्रमाणोंकी झड़ी लगा कर बौद्ध पण्डितोंको अवाक् कर देते। सर्वसाधारण दर्शक श्रोतागण इस अद्‌भुत दृश्य, प्रखर प्रतिभा एवं प्रगाढ़ पाण्डित्यको देख कर मुग्ध हो जाते। इसी प्रकारसे शास्त्रार्थ करते और बौद्धोंकी पोल खोलते हुए कुमारिल भट्ट प्रसिद्ध बौद्ध राजा सुधन्वाकी राजधानीमे पहुंचे। राजा सुधन्वा बड़े विद्वान् थे, परन्तु हो गये थे बौद्ध-धर्मानुयायायी। उनके राज-दरबारमें भी अनेक बौद्ध पण्डित, भिक्षु और श्रवण रहते थे। कुमारिल यही सोच कर सुधन्वाकी राजधानीमें आये थे कि किसी प्रकारसे सुधन्वा राजाके भ्रमात्मक धर्म-विश्वासको हटा कर वैदिकधर्मी बनाया जाय। राजा सुधन्वाके वैदिक-धर्मी हो जानेसे वैदिक धर्मके प्रचारमें बड़ी सहायता मिलेगी। क्योंकि राजा सुधन्वा के उत्साहकी बड़ी प्रशंसा सुनी जाती थी। अस्तु—उनकी राजधानी में पहुंच कर उन्होंने एक मन्दिरमें डेरा डाला और शास्त्रार्थके लिये सुयोग देखने लगे। एक दिन कुमारिल भट्ट स्नान करके चुपचाप राज-महलके नीचेसे होकर जा रहे थे कि एकाएक उनके कानों में आवाज पड़ी—'क गच्छामि किं करोमि को वेदानुद्धरिष्यति।' इस

व्याकुल-वाणीको सुन कर कुमारिल भट्ट अवाक् रह गये। वे सोचने लगे कि इस नास्तिकपुरीमें और भी कोई प्राणी है, जिसे वेदों और वैदिक धर्मके उद्धारकी चिन्ता है ? परन्तु तुरन्त ही उन्हें एक पथिक से पता लगा कि सुधन्वा राजाकी पुत्री वैदिक धर्मानुयायिनी है। वह रात-दिन इसी चिन्तामें व्याकुल रहती है कि—वेदों और वैदिक-धर्मका उद्धार कैसे हो, क्योंकि इस राज-नगरमें तो बौद्धोंके नास्तिकता-वादका ही बोलबाला है। यहां तक कि उसके माता-पिता भी बौद्ध मतानुयायी हैं। पथिककी आश्चर्य-चकित करनेवाली बात को सुन कर अत्यन्त उत्साहित हो उन्होंने वहीं राजमहलके नीचे खड़े होकर बड़े जोर से कहा,—'माचिन्त्य वरारोहे, भट्टाचार्योस्मि भूतले।' महाराज सुधन्वाकी पुत्रीने पहले से कुमारिल भट्टकी प्रखर-बुद्धि, प्रगाढ विद्वत्ता और वैदिकधर्म प्रचारकी तत्परताकी प्रशंसा सुन रखी थी। उसने यह भी सुन रखा था कि कुमारिल भट्ट आज-कल इस राजधानीमें ही आये हुए हैं। सुतरां उसका विश्वास भट्टकी इस मर्मवाणीको सुन कर और भी पक्का हो गया। राजकुमारीने तुरन्त पण्डित कुमारिल भट्टको अपनी दासियों द्वारा राज-महलमें बुला भेजा। कुमारिल भट्टके राज-अन्तःपुरमें पहुंचने पर राजकुमारी ने उनकी चरण-धूलि ली। इसके पश्चात् बौद्ध पण्डितोंसे शास्त्रार्थ करनेके सम्बन्धमें बहुत देर तक परामर्श होता रहा। अन्तमें सब बातें ठीक हो जाने पर कुमारिलभट्ट अपने डेरे पर आये और उन्होंने राजकुमारीके परामर्श के अनुसार राजाके पास अपने आने की सूचना भेजी और उनके बौद्ध पण्डितोंसे शास्त्रार्थ करनेकी इच्छा प्रकट की।

राजा सुधन्वा बौद्ध होकर भी बड़े सदाचारी एवं कर्तव्यपरायण थे। उन्होंने कुमारिल भट्टको बुला कर बड़े आदर सत्कारसे उनका

अभिनन्दन किया और उनकी इच्छानुसार अपने राज-दरबारमें ही शास्त्रार्थका प्रबन्ध कर दिया। अगले दिन बड़े समारोहसे राज-दरबारमें बौद्ध-पण्डितगण आये और महाराज भी अपने राज-सिंहासन पर मध्यस्थ होकर बैठे। एक ओर उच्चासन पर एकाकी कुमारिलभट्ट बैठे। उनके आस-पास कुछ राजधानी-निवासी बौद्ध-धर्मके ग्राससे बचे हुए ब्राह्मण बैठे। आरम्भमें ही कुमारिलभट्टने एक आमके वृक्ष पर बैठी कोयलकी मधुर-वाणीको सुन कर कहा,—

"मलिनैश्चेन्न संगस्ते नीचैः काककुलैःपिका,
श्रुतिदूषक निर्ह्रादैः श्लाघनीयस्तदाभवेः॥"

तात्पर्य यह है कि—हे मधुर-कण्ठी कोकिल, यदि तू श्रुति-कठोर ध्वनि करने वाले इन कौवोंका सङ्ग छोड़ दे, तो तू प्रशंसनीय हो जाय। इस श्लोकका सीधा-साधा अर्थ तो यही है कि हे कोकिल, यदि तू इन कौवोंके सहवास और मेल-मिलापको छोड़ दे, तो तेरे इस मधुर-स्वमें और भी स्निग्धता आ जाय, तुझे और भी अधिक गौरव प्राप्त हो। इसका दूसरा व्यङ्गपूर्ण अर्थ यह था कि हे कुल-शील और बुद्धिमान् राजन्, तू वैसे तो सदाचारी, कर्तव्य पालन करने वाला शिष्ट है ही, परन्तु यदि तू इन नास्तिक, निरीश्वरवादी श्रुति-स्मृति और वेदोंकी निन्दा करने वाले बौद्धोंके झुण्डमें न होता, तो कितना अच्छा होता ?

बौद्ध पण्डितोंके हृदयों पर इस मर्मस्पर्शी व्यङ्गोक्तिको सुन कर आगसी लग गयी। उन्हे ऐसा प्रतीत होने लगा कि जैसे भयङ्कर विषधर सर्पने काट खाया हो। क्रोधसे उनके मुखमण्डल लाल हो उठे। नेत्रोंसे भीषण अग्नि-स्फूलिङ्ग वहिर्गत होने लगे। परन्तु इस प्रकारकी भाव-भंगिका सत्यव्रती कुमारिल भट्ट पर क्या प्रभाव पड़ सकता था ? अन्तमें शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। बौद्ध-पण्डितोंने कुमा-

रिलको उत्तेजित करनेके लिये पहले अत्यन्त घृणित शब्दोंमें वैदिक-धर्मकी निन्दा करनी आरम्भ की। अटल और हिमगिरी की तरहसे अचल कुमारिलभट्टने युक्ति-तर्क और अकाट्य प्रमाणोंके साथ उनके प्रश्नोंका उत्तर देकर बौद्ध-धर्मके शुष्क-शून्यवाद एवं निर्वाणके स्वरूप और मौखिक अहिंसावादिताकी पोल खोलनी आरम्भ की। जब बौद्ध-पण्डित शास्त्रार्थमें कुमारिलभट्टका मुकाबला न कर सके तो अपने शून्यवादकी छिछालेदर करानेके लिये छोटी-छोटी बातों पर उतर आये। राजाकी आज्ञासे बाहरसे अनेक प्रसिद्ध विद्वान् बौद्ध-पण्डित बुलाये गये। नम्बरवार कुमारिल भट्टने सबसे शास्त्रार्थ किया। अन्तमे ` पराजित होना पडा। बौद्ध-पण्डितोंके मुंह सूख गये। चारों ओर वैदिक-धर्मका जय-जयकार होने लगा। अनेक लोग दलके दल आकर कुमारिल भट्टसे वैदिक धर्मकी दीक्षा लेने लगे। इस अपूर्व और अद्भुत व्यापारको देख कर बौद्ध-पण्डित क्रोधसे उन्मत्त हो उठे। उन्होंने कहा कि यदि वैदिक धर्म और वेदोंमें इतनी सत्यता और करामात है, तो तुम उसकी परीक्षा दो। राजाने भी बौद्ध-पण्डितोंके प्रभावमें आकर उनकी इस नीच प्रवृत्तिपूर्ण बातको स्वीकार कर लिया। अगले दिन राज-दरबारमें बौद्ध-पण्डित एक पात्रमें विषधर सर्पको बन्द करके लाये। राजाको भी यह बात बता दी गई। कुमारिल भट्टके आने पर उनसे पूछा गया कि इस बन्द पात्रमें क्या वस्तु है? यदि तुम्हारा वैदिक धर्म सच्चा है, तो उसकी परीक्षा हो जाय। कुमारिल भट्टने भगवान्का नाम स्मरण कर कहा,—"इस पात्रमे शालिग्रामकी मूर्ति है।"

बौद्ध पण्डित कुमारिल भट्टकी बातको सुन कर लगे आनन्दसे नाचने। परन्तु जब सबके सामने राज-दरबारमें उस पात्रको खोल कर देखा गया, तो उनकी नानी मर गई। क्योंकि पात्रमें सचमुच ही

सर्पकी जगह शालिग्रामकी मूर्ति मौजूद थी ! इस आश्चर्य-व्यापारको देख कर सब लोग बड़े आश्चर्य-चकित हुए। परन्तु कुटिल बौद्ध-पण्डितोंने कहा कि नहीं यह परीक्षा ठीक नहीं हुई। एक परीक्षा और देनी होगी और वह यह होगी कि तुम पर्वतसे कूद कर अपने प्राण बचाओ, तो समझें ईश्वर कोई वस्तु है, जिसने तुम्हारी रक्षा की और वेद तथा वैदिक धर्ममे कुछ तत्त्व है ! धर्म-विश्वासी, दृढ़-प्रतिज्ञ ब्राह्मण कुमारिल भट्ट तो वैदिकधर्मके प्रचारके लिये प्राणोंकी बाजी लगा कर मैदानमें निकला था। कुमारिलने बौद्धोंकी इस बातको स्वीकार कर लिया और सबके सामने देखते ही देखते वे पर्वत परसे कूद पड़े ! कूदते समय उन्होंने कहा था कि यदि वेद और ईश्वर सत्य हैं, तो मुझे कौन मार सकता है। पर्वत परसे गिर कर कुमारिल भट्टके एक पांवमें गहरी चोट लगी, जिससे वे कुछ लङ्गड़ेसे हो गये। परन्तु उन्होंने बड़े उत्साहसे खड़े होकर कहा,—"यह चोट भी मुझे इसलिये लगी है कि मैंने संदिग्ध शब्द 'यदि' का प्रयोग किया था। यदि मैं 'यदि' शब्दका प्रयोग न करता, तो मुझे तनिक भी चोट न लगती।" कुमारिलके अद्भुत और अपूर्व कार्यकलापोंको देख कर राजा सुधन्वा तो वैदिकधर्मी हो ही गये, साथ ही उन्होंने आज्ञा दी कि सब लोग बौद्ध धर्मको परित्याग कर वैदिक धर्मकी दीक्षा लें और जो वैदिक-धर्मकी शरणमे नहीं आना चाहता, वह हमारे राज्यसे निर्वासित कर दिया जाय। सुतरां इस राजाज्ञाके अनुसार समस्त राज्यमें वैदिक-धर्मकी दुन्दुभि बजने लगी।

कुमारिल अपने समयके अद्वितीय विद्वान् थे। वैदिकशास्त्रों और बौद्ध-दर्शनोंमें उनकी गहन गति थी। इसके सिवा कुमारिल भट्ट में आत्मगौरव और आत्म-विश्वासकी मात्रा बहुत अधिक थी। वेदों और स्मृतियों तथा ईश्वर पर उन्हें इतना विश्वास था, जितना कि

अपने अस्तित्व पर । कुमारिल भट्टने जैमिनीके मीमासा-शास्त्र पर वार्तिक लिखे और आश्वलायन गृह्यसूत्रों पर वार्तिक लिखे हैं और अनेक अलङ्कारोंको जो शास्त्रोंमें आते हैं, स्पष्ट किया है । कुमारिल भट्टकी अन्तिम परीक्षा तो इतनी व्याकुल कर देने वाली है कि संसार के इतिहासमें उसका कोई उदाहरण ही नहीं मिल सकता । अगले परिच्छेदमे उसका वर्णन किया गया है ।



नवम-परिच्छेद ।

कुमारिल भट्टका तुषानल-प्रवेश ।

---:o:---

जिस समय शङ्कर अपने कार्यकलापोंसे संसारको चकित कर रहे थे, उस समय कुमारिल भट्टका प्रचार-कार्य समाप्त हो चुका था। उनके प्रधान शिष्य मण्डन मिश्र तथा अन्यान्य शिष्योंने उनके प्रचार कार्यको संभाल लिया था और कुमारिल भट्टने बौद्धोंकी पाठशालामें छद्मवेश धारण कर पढ़नेके कारण विश्वासघातका प्रायश्चित्त करनेके लिये प्रयागको प्रस्थान किया था। उन्होंने विचार स्थिर किया था कि मैंने बौद्धवेश धारण कर जो बौद्धोंके यहां पठन-पाठन किया है, यह विश्वासघात हुआ है। उस विश्वासघातका प्रायश्चित्त एक प्रकार से हो सकता है और वह इस तरहसे कि प्रयागमे त्रिवेणी-तट पर तुषानल प्रज्वलित कर मैं अपने शरीरको भस्म कर दूं ! सुतरा— कुमारिल भट्टने सब कार्योंसे निवृत्त होकर प्रयागको प्रस्थान किया। जानेसे पहले लोगोंने उनको अनेक प्रकारसे समझाया बुझाया। उनसे कहा गया कि आपने जो कुछ किया है, वह तो केवल वैदिकधर्मकी पुनर्स्थापनाके लिये किया है। व्यक्तिगत स्वार्थकी तो उसमें गन्ध भी नहीं। परन्तु दृढ़प्रतिज्ञ-तेजस्वी ब्राह्मण कुमारिल भट्टने किसीके अनुरोध और अनुनयको स्वीकार नहीं किया। वे प्रयाग पहुंच गये और वहां पहुंच कर उन्होंने तुषानल प्रज्वलित कर उसमें प्रवेश किया। इस नश्वर देहको भस्म करनेके पहले उनकी बहुत प्रबल इच्छा थी कि एक वार अवतारी महापुरुष शङ्करसे भेंट हो जाती, तो बहुत

अच्छा होता। क्योंकि शङ्करकी महिमाका प्रचार उस समय समस्त देशमें हो रहा था। कुमारिल भट्ट भी अपने एक परम-प्रबल सहयोगी के विचित्र कार्य-कलापोंको सुन कर परम प्रसन्न होते थे। परन्तु वार-वार इच्छा होने पर भी भेंट करनेका सुयोग प्राप्त नहीं हुआ था। परन्तु शरीर विदग्ध होनेसे पहले उनकी यह परम इच्छा भी पूरी हो गई। शङ्कर अपने शिष्यों सहित कहीं प्रचारार्थ जा रहे थे। मार्ग मे ही उन्हें कुमारिल भट्टके प्रायश्चित्तायोजनकी बात मालूम हुई। शङ्कर ने कुमारिल भट्टके त्याग और धर्म निष्ठाकी वातोंको सुना था। उनकी एकान्त इच्छा थी कि वे कुमारिल भट्टसे मिल कर वैदिक धर्मका प्रचार करें, तो बड़ी सफलता प्राप्त होगी। क्योंकि कुमारिल भट्ट जैसा त्यागी तपस्वी और विद्वान् और प्रतिभाशाली सच्चा ब्राह्मण, उस समय देशमे कहीं तलाश करने पर भी नहीं मिल सकता था। शङ्कर स्वामी भी प्रायश्चित्तकी बात सुन कर स्तब्ध रह गये और उसी समय शिष्यों सहित वहांसे प्रस्थान कर वे त्रिवेणी-तट पर प्रयाग पहुंचे। वहां जाकर उन्होंने जो विचित्र हृदयविदारक दृश्य देखा, उससे वे परम ज्ञानी शङ्कर भी अपनी अश्रुधाराको न रोक सके। त्यागी ब्राह्मणकी सत्य-निष्ठाको देख कर वे अवाक् रह गये। उन्होंने देखा कि सत्यनिष्ठ ब्राह्मण कुमारिल भट्टका शरीर तुषानलमें दग्ध हो रहा है—और कुमारिल भट्ट हिमगिरि पर्वतकी तरह अचल हुए शरीरकी समस्त यन्त्रणाओंको सहन करने लग रहे है। अत्यन्त समीपमे उपस्थित होकर शङ्कर स्वामीने कुमारिल भट्टको सम्बोधन कर कहा,—"भट्ट, यह क्या कर रहे हो ? किस कारणसे इस प्रकारसे जीवन विसर्जन करने लग रहे हो ? किस पापके कारण यह तुषानल आपके पुण्यमय पवित्र शरीरको भस्म करने लग रहा है ?" कुमारिल भट्टके तेजोमय मुख-मण्डलकी गम्भीरताको देख कर शङ्कर चञ्चल हो उठे। वे वार-वार

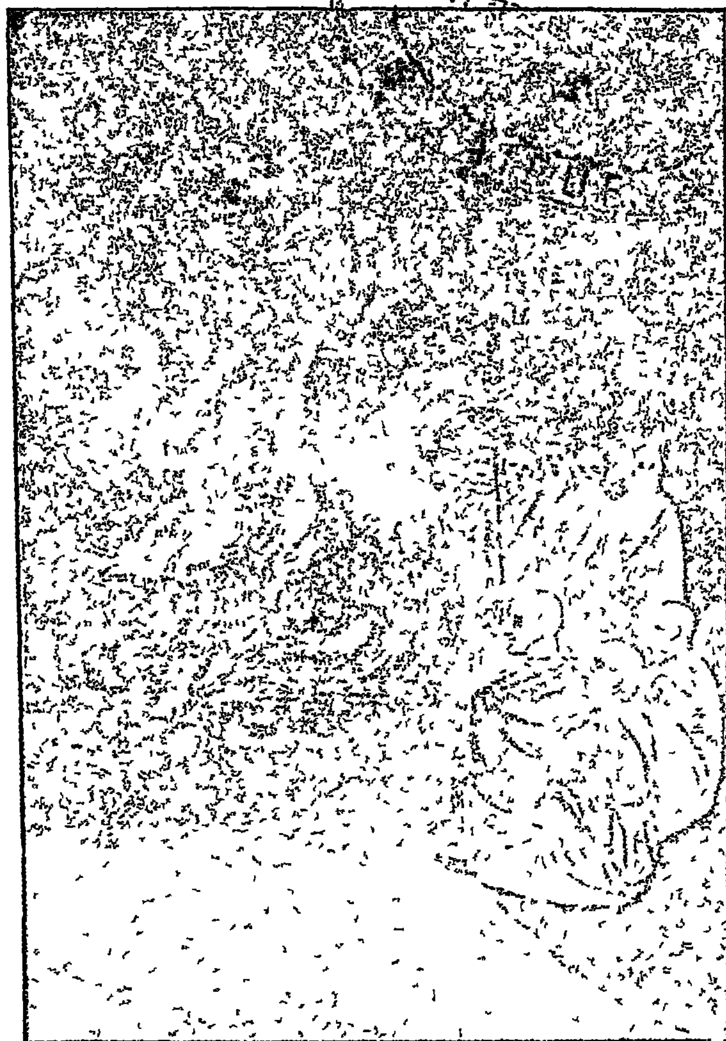
तुषानलमें दग्ध होनेका कारण पूछने लगे और अत्यन्त उत्कण्ठित होकर बोले,—"भट्ट, आप तो परम ज्ञानी और पण्डित हैं। मेरा तो दृढ़ विश्वास और धारणा है कि आप जैसा समदर्शी और सहृदय व्यक्ति कभी स्वप्नमें भी पाप नहीं कर सकता। शास्त्रोंमें उत्कट पाप के लिये तुषानलमें भस्म होकर आत्म-विसर्जन करनेका विधान तो अवश्य है, परन्तु वह आप जैसे महात्माके लिये नहीं है। कहिये ? कहिये ? पण्डितप्रवर, शीघ्र कहिये ! इस प्रायश्चित्तका क्या कारण है ? मैं अधिक देर तक इस भीषण दृश्यको देखनेमें असमर्थ हूं।" शङ्करके दर्शनसे कुमारिलको बड़ा आनन्द हुआ। उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा, जैसे मृत देहमें पुनः प्राणोंका संचार हो रहा हो। चिताके पास जो दर्शक खड़े थे, वे एकाएक कुमारिलके मुखमण्डलके भावको परिवर्तित होते देख चकित रह गये। पहले जहां उनके मुख पर यन्त्रणाओंके दुःखकी व्यथा प्रकट होती थी, वह क्षण भरमें लुप्त हो गई। उनका मुखमण्डल एकदम प्रसन्न और उत्फुल्ल हो उठा। दर्शक सोचने लगे कि अवश्य ही कोई अलौकिक काण्ड उपस्थित हुआ है। बिना दैवी शक्तिके प्रभावके ऐसा कभी नहीं हो सकता। नहीं तो तुषानल में दग्ध होते हुए कुमारिलके मुखमण्डल पर अनिर्वचनीय आनन्दका भाव और अपूर्व उत्फुल्लता कैसे विकसित होती ? अभी क्षण भर पहले कुमारिल भट्टके मुखमण्डल पर दुःख-यन्त्रणाकी व्यथाके चिन्ह दृष्टिगोचर होते थे, किन्तु हठात् शङ्कराचार्यके आगमनसे उनकी दुःख-यन्त्रणा दूर हो गई। कुमारिलकी प्रफुल्लताको देख कर प्रतीत होता था जैसे पार्थिव सुख दुःखोंका परित्याग कर दिया हो। लोगोंने समझा यह सब शङ्कराचार्यके प्रभावसे ही हुआ है।

शङ्कराचार्यके उपस्थित होने पर कुमारिल भट्टने चितामें बैठे ही बैठे पहले तो संन्यासी समझ कर प्रणाम किया और फिर बोले,—

"आचार्य, मेरा सौभाग्य है कि देह-त्यागसे पहले आपके दर्शन कर सका। बहुत दिनोंसे इच्छा थी कि मैं आपसे मिल कर वैदिकधर्मका प्रचार करूं। परन्तु सुयोग न मिलनेसे वैसा नहीं हो सका। परन्तु जब आप पधारे हैं, तो तब तक मेरे सामने खड़े रहिये, जब तक कि मेरी इहलोकलीला समाप्त न हो जाय। आपके दर्शन करनेसे मेरी शारीरिक और मानसिक यन्त्रणायें तिरोहित हो गई हैं। महात्मन्, आपके दर्शनके सौभाग्यसे संसार-यन्त्रणा तो साधारण बात है, संसारके सकल पाप-ताप विलुप्त हो जाते हैं और भव-बन्धनसे मुक्ति प्राप्त होती है। आप साक्षात शङ्कर-स्वरूप हैं। इस घोर कलिकालमें संसारसे मोह-रूपी अज्ञानान्धकारको दूर करके परम तत्त्वज्ञानसे संसार को आलोकित करनेके लिये ही आपने नर-देह धारण किया है। आप दया करके मेरे उद्धारके निमित्त तब तक ठहरिये, जब तक कि मेरा प्राणवायु अनन्त आकाशमें विलीन न हो जाय। आपके दर्शन करते हुए यदि प्राण देहसे निकलेंगे, तो मुझे इस बन्धनमें लिप्त होनेके लिये फिर इस धराधाममें नहीं आना पड़ेगा। मैं सब बन्धनोंसे मुक्त हो जाऊंगा।"

इस प्रकार बार-बार कातर-कण्ठसे सविनय अनुरोध और प्रार्थना होते देख शङ्कर व्याकुल हो उठे और बोले,—"पण्डित प्रवर, किस कारणसे आखिर आप यह प्रायश्चित्त कर रहे हैं? आपने क्या ऐसा कठोर पाप किया है, जिसके कारण आप अपने परम पुण्यमय देहको इस प्रकारसे तुषानलमें भस्म करके प्रायश्चित्त कर रहे हैं? यदि कुछ गोप्य न हो, तो अकपट समस्त वृत्तान्त कहिये। शास्त्रोंमें लिखा है कि यदि गुप्त रूपसे किये किसी पापको सर्वसाधारणके सामने व्यक्त किया जाय, तो उसका बोझ हलका हो जाता है। आप तो परम ज्ञानी, महापण्डित हैं। शास्त्रोंके प्रमाणोंका आपके सामने उल्लेख करनेकी

शंकराचार्य —



कुमारिल भट्टका तुषानलमें दग्ध होना तथा शङ्करकी उपस्थिति ।

आवश्यकता नहीं है । यदि कोई आपत्ति न हो तो सब वृत्तान्त स्पष्ट करके कहिये । इससे आपको लाभ ही होगा, हानि नहीं ।"

परम प्रशान्त भावसे कुमारिल भट्टने चितामें बैठे ही बैठे कहा, "आचार्य, जो भाग्यवान् मरते समय आपके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त करता है, उसके अमङ्गल और हानि-लाभकी आशङ्का ही नहीं । आप तो प्रत्यक्ष मङ्गल-स्वरूप हैं । कल्याण आपकी अपर एक मूर्ति विशेष का नाम है । मैं अपने जन्म-जन्मान्तरोंके संचय किये पुण्य-प्रतापके फलसे ही इस समय आपके दर्शन कर रहा हूं । बहुत इच्छा थी कि आपके पाससे तत्त्वज्ञानका गूढ़ उपदेश श्रवण कर आत्मज्ञान लाभ करता । क्योंकि आत्मज्ञान ही सर्वश्रेष्ठ है । आत्मज्ञान ही ब्रह्म-ज्ञान है । जिससे आत्मदर्शन और आत्म-उपलब्धि हो, उसीसे महामुक्ति और निर्वाण-पद प्राप्त होता है । आप उसी तत्त्व-ज्ञानका प्रचार करने के लिये इस लोकमें अवतीर्ण हुए हैं । मेरा यह दुर्भाग्य है कि मैं अपने कानोंसे आपके तत्त्वज्ञानको सुन कर इस मानव जन्मको सफल और सार्थक नहीं कर सका । यह क्या कुछ कम परितापकी बात है कि आपके दर्शनोंका सौभाग्य प्राप्त होने पर भी आपके मुखसे ज्ञानोपदेश न सुन सका । खैर, जो कुछ भी हो—मैं आपके दर्शनसे संसार के भव-बन्धनोंसे मुक्त हो गया । आपके दर्शनमात्रसे मेरी तुषानल-दग्ध-यन्त्रणा लुप्त हो गई !"

कुमारिल भट्टका शरीर भस्म होने लग रहा था और वे प्रशान्त भावसे शङ्करसे अनुनय-विनय कर रहे थे। शङ्करभट्टकी देहको अधिकाधिक रूपमें भस्म होते देख व्याकुल हो फिर बोले,—"भट्ट, यह प्रायश्चित्त क्यों हो रहा है, इसका कारण तो बताइये ? यदि और कुछ समय तक यह परम पवित्र पुण्यमय शरीर संसारमें रहता, तो वैदिक-धर्मका बहुत कुछ कार्य संसाधित होता । नास्तिक शून्यवादी बौद्ध-

धर्मके प्रभावसे वैदिक-धर्म पर कुठाराघात हो रहा है। आप यदि जीवित रह कर उस कदाचारसे वैदिकधर्मकी रक्षा करते तो बड़ा काम होता।"

उत्तरमे कुमारिल भट्ट बोले,—"आचार्य, दुःखकी बात और क्या बताऊं? उसीके लिये यह कठोर प्रायश्चित्त हो रहा है। मैंने बौद्ध-धर्म और दुष्ट बौद्धोंके दमनके लिये जीवन उत्सर्ग करनेकी प्रतिज्ञा की थी। उसी उद्देश्यकी साधनाके लिये मैं उनमें गुप्त रूपसे शामिल हुआ था। उनकी दुरभिसन्धियों और मिथ्या पाखण्ड तथा गुप्त गति-विधिको जाननेके लिये ही मैंने छद्मवेश धारण कर उनकी पाठशाला मे प्रवेश किया था। मैंने उसी छद्मरूपमें उनके शास्त्रोंको पढ़ा और उनके पाखण्डको समझा। परन्तु अब मुझे अपना वह व्यवहार, कपट-पूर्ण मालूम हुआ। जिसके मूलमे मिथ्या, प्रवञ्चकता और चातुरी विद्यमान है, उसमे सफलता प्राप्त होनी कठिन है। इसीलिये नितान्त अनुतप्त होकर मैंने इस कठोर प्रायश्चित्तका आयोजन किया है। अस्तु, जो कुछ भी हो मुझे प्रायश्चित्त करने दीजिये और आप संसारका कल्याण कीजिये।"

शङ्कर स्वामीने उत्तर दिया कि आपने वेदोंकी रक्षाके लिये ये सब काम किये हैं, इस लिये आपने कोई पाप नहीं किया है। आप अपने व्रतको पूरा करें और मेरे साथ मिल कर देश और धर्मका उद्धार करें। पातकी मनुष्योंके लिये आप जैसे महापुरुषोंका दर्शन ही पातक का प्रायश्चित्त है। जिन्होंने टूटी हुई धर्मकी मर्यादाको नये सिरेसे स्थापित किया, भला उनके लिये प्रायश्चित्त कैसे हो सकता है? आपने अपने गुरुके विरुद्ध कोई काम नहीं किया, बल्कि आपने तो अविद्या और अन्धकारको दूर किया है और भूले-भटके पुरुषोंको सन्मार्गकी ओर प्रवृत्त किया है। आपका यह सारा काम धर्मके अनुसार है।

कौन इसको पातकोंकी श्रेणीमें गिन सकता है? आपके जीवनका एक एक श्वास देशके लिये कल्याणकारी है। आप इस प्रायश्चित्तके विचारको छोड़ें और मेरे साथ इस धर्म-कार्य्यमें हिस्सा लें। मेरे भाष्य पर वार्तिक रचें। कुमारिलने उत्तर दिया कि "आपका यह भाव आपके गौरव और विद्वत्ताको प्रकट करता है। बड़ोंकी रीति है कि वे दूसरोंके छोटेसे गुणोंको भी बड़ा समझा करते हैं। मुझे भी धर्मकी मर्यादा पर स्थिर रहना बड़ा प्यारा है। मैं अपने विचारको बदल नहीं सकता। यह मेरा निर्णय, मेरा निर्णय ही नहीं, किन्तु शास्त्रोंका निर्णय है और इसका उल्लङ्घन करना मुझे कदापि सह्य नहीं। यदि आप वैदिक-धर्मका प्रचार करना और बौद्धोंको पराजित करना चाहते हैं, तो मण्डन मिश्रको अपने साथ काम करनेको मिलायें। उसको साथ करने से आप सारे जगत् पर विजय लाभ कर सकेंगे। वह विश्वरूपके नामसे प्रख्यात है, गृहस्थ है, वैदिक-कार्योंमें लगा हुआ है, पर निवृत्ति-मार्ग पर उनका विश्वास नहीं। आप सबसे पहले उसके पास पधारिये। वह शास्त्रोंका वेत्ता और मेरा सबसे योग्य शिष्य है। मुझे भी उसके साथ बड़ी प्रीति है। आप जाकर उसके साथ शास्त्रार्थ करें और उसको अपने मतमें लायें। उसकी पत्नी बड़ी विदुषी है। इस शास्त्रार्थमें उसको मध्यस्थ बनायें, वह धार्मिक स्त्री किसीका पक्षपात नहीं करेगी और सचाईके पक्षमें निर्णय करेगी। यदि वह आपके पक्षमें आ गया तो वह आपके भाष्य पर बड़े उत्तम वार्तिक रचेगा। परन्तु जब तक मेरी देह भस्म न हो जाय, आप मेरे सामने खड़े रहें, मुझे आपसे बड़ी प्रीति है, क्योंकि आपने वेदोंके उद्धारका झण्डा फहराया है।"

इसके बाद दोनों चुप हो गये। तुषानल प्रतिक्षण तीव्र होता जा रहा था। धीरे-धीरे तुषानलने पवित्र ब्राह्मणके शरीको भस्मीभूत करना आरम्भ किया। उनके शिष्य और प्रेमी भक्त सब पास खड़े इस दृश्य

को देख कर रो रहे थे । यह एक ऐसा हृदयविदारक दृश्य था कि जिसको देख कर कोई पत्थर हृदय पुरुष भी क्यों न हो, फूट-फूट कर रोये विना नहीं रह सकता था और धर्मके निमित्त यह वलिदान भी एक ऐसा वलिदान था जो कि जगतमें उपमा नहीं रखता । जगत् में वहुत पुरुषोंने अपने-अपने विश्वासके प्रचारमें प्राण दिये हैं, पर उनमें ऐसी सहिष्णुता, ऐसा धैर्य्य और ऐसी वीरता नहीं दिखाई दी । जातिका सुधार करने वालोंको अत्याचारियोंने अपने वलसे पकड़ा । उन्हें मारा, आगमें जलाया, सूली पर, फासी पर लटकाया, जहर दिया । इस मौतके प्यालेको बहुत ही कम लोगोंने खुशी-खुशी पिया, पर ऐसा कुमारिलके सिवा और कोई पुरुष नहीं हुआ, जिसने धर्मके निमित्त स्वयं ऐसा प्रायश्चित्त किया हो और जीतेजी अपने पुण्यमय शरीरको तिल-तिल करके तुषोंकी अग्निमें स्वयं जला दिया हो !"

इस भयानक दृश्यको देख कर जितने आदमी पास खड़े थे, वे सबके सब फूट-फूट कर रोने और लगे । किसीमें यह शक्ति न थी कि एक दूसरेको शान्ति दे और न ही कोई एक दूसरेकी ओर देख ही सकता था । हां, उस समय एक कुमारिल ही थे, जो सबको रोते हुए देखते थे । पर आप शान्तचित्तसे परमात्माके ध्यानमें मग्न थे, क्योंकि वे समझते थे कि मैंने अपने जीवनके उद्देश्यको पूरा कर लिया है । वे अपनी ओर मृत्युको आता हुआ नहीं देखते थे, किन्तु उनको पूरा विश्वास था कि मैं शाश्वत जीवनकी ओर जा रहा हूं । इसी आनन्दमें वे ऐसे मग्न थे, मानो वे आगको आग नहीं समझते, किन्तु वे समझते थे कि मैं दुःख दूर करने वाली माताकी गोदमें वैठा हूं और सच्चे विश्वासके यज्ञमे अपने आपको हवन कर रहा हू । उनका धर्म जीवन, आकाशमे चारों दिशाओंमें विश्वासके पवित्र गन्धको फैला रहा था ।

दशम-परिच्छेद ।



मण्डनमिश्र और सरस्वती ।



मण्डनमिश्रके वंश और कुलका तो इतिहासमें कुछ पता नहीं लगता, परन्तु कुमारिल भट्टाचार्यके कथनानुसार उनका नाम पहले विश्वरूप था। वे शास्त्रोंके अद्वितीय ज्ञाता और शास्त्रार्थमे प्रचण्ड तर्क और युक्तियों तथा प्रमाणोंका समावेश कर प्रतिवादीको परास्त कर देते थे। प्रखर प्रतिभा और अपूर्व विद्वत्ताको देख कर ही लोगोंने उनका नाम मण्डन मिश्र रक्खा था। मण्डन मिश्र जैसे प्रतिभाशाली विद्वान् थे, वैसे ही धन-सम्पन्न भी थे। वे भिक्षा-वृत्ति नहीं करते थे। वे परम आत्मज्ञानी और तत्त्ववेत्ता होते हुए भी बड़े ठाट-बाटसे रहते थे। प्रचण्ड त्यागी, महा विद्वान् कुमारिल भट्टके शिष्य थे। कुमारिलकी तरहसे ही द्वैतवादी अर्थात् जीव और ब्रह्मको अलग-अलग मानते थे। 'सरस्वती' उनकी महीयसी विदूषी पत्नीका नाम था। शङ्कर स्वामीके साथ शास्त्रार्थकी घटना, शङ्करके जीवनकी विशेष घटना है। इस लिये हम सरस्वती का परिचय देना आवश्यक समझते हैं।

पटनाके पास शोण-नदके तटस्थ किसी ग्राममे महीयसी सरस्वती का जन्म हुआ था। इनके पिताका नाम विष्णुमित्र था। सरस्वतीका जन्म इन्हींकी पत्नीके गर्भसे हुआ था। सरस्वतीके शारीरिक बाह्य चिन्होंको देख कर ऐसा प्रतीत होता था, जैसे साक्षात् भगवती सरस्वती इस लोकमें अवतीर्ण हुई हों। सरस्वतीकी प्रखर प्रतिभाको देख

कर पं० विष्णुमित्रने उसे शास्त्र पढ़ाना आरम्भ किया। सरस्वतीने अपने पूर्व-जन्मकी अतीत स्मृतिकी तरहसे थोड़े समयमें वेद, वेदाङ्ग और इतिहास तथा गणित एवं धर्मशास्त्र और दर्शनोंको पढ़ डाला। 'शङ्कर-दिग्विजय' में लिखा है कि ऐसा कोई शास्त्र नहीं, जिसमें सरस्वतीकी गति न हुई हो। थोड़े ही समयमें सरस्वतीके रूप और गुणकी चर्चा समस्त प्रान्तमें हो उठी। रूप और गुणमें समानता देख कर लोग उसको 'उभय भारती' कहने लगे थे।

कहावत है कि रत्नोंकी कद्र जौहरी ही जानता है। सरस्वतीकी विद्या-बुद्धिकी प्रशंसा जब मण्डन मिश्रने सुनी, तो वे बड़े आकर्षित हुए। सरस्वतीने भी मण्डन मिश्रकी विद्वत्ताकी देश-व्यापी चर्चा सुन रखी थी। वह भी मण्डन मिश्रकी गुणावलिको सुन कर विमुग्ध हो गई। मिलने और—और शास्त्रचर्चा करनेकी दोनोंकी इच्छा होती थी, परन्तु दोनोंमें एक पुरुष था और दूसरी स्त्री। इस लिये लोक-प्रथाके अनुसार एकसे दूसरेकी भेंट होनी दुर्लभ थी। अन्तमें इस भेंट करने या मिलनेकी प्रबल इच्छा और आकांक्षाने दूसरा रूप धारण किया। इसे पूर्व-जन्म-व्यतीत सम्बन्ध ही समझना चाहिये। क्योंकि मण्डन मिश्रकी यह आकांक्षा हो गई थी कि यदि सरस्वतीको पत्नी रूपमे पा सकूं, तो वह तरणी स्वरूप होकर इस दुर्ग रूपी संसार सागरसे पार होनेमें सहायता देगी और सरस्वतीने भी जबसे मण्डन-मिश्रकी विद्या-बुद्धिकी प्रशंसा सुनी थी, वह भी मिलनेके लिये अधीर और व्याकुल हो रही थी। दोनोंके आत्मिक संकेत एक दूसरेके पास पहुंच कर दोनोंको व्याकुल कर रहे थे।

मण्डन मिश्रकी व्याकुलता तो यहां तक बढ़ गयी थी कि वे संसारसे विरक्तसे हो गये थे। पुत्रकी इस व्याकुलताको देख कर पिताने खेदपूर्वक पुत्र मण्डनसे इस व्याकुलताका कारण पूछा। सत्यवादी

पुत्र मण्डन मिश्रने लज्जा और सङ्कोचवश और तो कुछ न कहा, किन्तु बातों ही बातोंमें सरस्वतीकी विद्या-बुद्धिकी प्रशंसा कर दी। विद्वान् पिता समस्त रहस्यको समझ गये। मण्डन मिश्रके पिताने अपने एक दूतको सरस्वतीके पिताके पास भेज कर कहला भेजा कि मण्डन मिश्रके पिता अपने विद्वान् पुत्रके साथ विदूषी सरस्वतीका विवाह करना चाहते हैं। सरस्वतीके पिताने अपनी पत्नीसे परामर्श कर प्रस्तावको स्वीकार कर लिया। क्योंकि मण्डनमिश्रकी विद्या-बुद्धिकी प्रशंसा देश भरमें हो रही थी। धनकी भी उनके यहां कमी नहीं थी। क्योंकि वंश-परम्परासे वे लोग राजपण्डित होते चले आये थे। अस्तु, प्रस्ताव स्वीकार होने पर यथासमय मङ्गल-मुहूर्तमें दोनों का विवाह हो गया। विवाहके पश्चात् बिदा होते समय सरस्वतीके पिताने उसे अनेक उपदेश देकर कहा,—"बेटी, उस घरको अपना घर समझना। सास-श्वसुरको माता-पिता और देवर-ननदोंको भाई और बहन समझ कर उनके साथ स्नेह रखना। अबसे स्वामी ही तुम्हारा सब कुछ है। पति, गुरु इष्टदेव सब कुछ स्वामी है। स्वामी की सेवामें कभी असावधानी मत करना। और फिर तू तो विदूषी है। शास्त्रोंके मर्मको समझती है। कोई ऐसा कार्य मत करना, जिससे पिता और श्वसुरका कुल कलङ्कित हो। मैं आशीर्वाद देता हूं कि—बेटी, तू चिर-दिन सौभाग्यवती हो।" उभयभारती-सरस्वतीने बिदा होते समय पिताकी चरण-धूलि मस्तक पर लगा कर उनके उपदेशोंको ग्रहण किया और सानन्द पतिके साथ श्वसुर-गृहके लिये बिदा हुई। मण्डन मिश्रने सरस्वतीको पत्नी रूपमें पाकर और सरस्वतीने मण्डन मिश्रको पति रूपमें पाकर परम प्रसन्नता प्राप्त की। दोनों पति-पत्नी बड़े आनन्दके साथ अपना गृहस्थ-धर्म पालन करने लगे और इसी प्रकारसे अनेक वर्ष व्यतीत हो गये।

मण्डन मिश्र, कुमारिल भट्टके पट्ट-शिष्य थे, यह पहले परिच्छेदमें लिखा जा चुका है। गुरुकी तरहसे शिष्य, मण्डनमिश्र भी वैदिक-धर्म-प्रचार और बौद्ध-धर्मके नाशके लिये सदा प्रयत्न करते रहते थे। बड़ी दूर-दूरसे लोग उन्हे शास्त्रार्थके लिये बुलाते थे। स्वयं भी अनेक विद्वान् उनके यहा जाकर उनसे शास्त्र-चर्चा करते थे। मण्डन मिश्र बड़े कर्मकाण्डी थे। बौद्ध पण्डितोंके अनाचार और मिथ्या व्यवहारको देख कर उनसे बहुत घृणा करते थे। बौद्धों के पाखण्डकी पोल खोलनेमें उनकी खूब ख्याति हो चुकी थी। अनेक धर्माचार्य बौद्ध, मण्डन मिश्रकी प्रखर प्रतिभा और प्रचण्ड विद्वत्तासे घबड़ाते थे। शङ्कर-स्वामीने कुमारिल भट्टसे जब मण्डन मिश्रकी विद्वत्ता एवं प्रगाढ़ धर्म निष्ठाकी बात सुनी, तो वे बड़े प्रसन्न हुए। और कुमारिल भट्टके प्राण-त्यागके पश्चात् वे मण्डन मिश्रकी खोजमें निकले। मण्डनमिश्र और उनकी विदूषी पत्नीका परिचय देनेके लिये हमने इस परिच्छेदके आरम्भमें उनके जन्म, विद्या-बुद्धि और विवाह का संक्षेपमें उल्लेख कर दिया है। इसके पश्चात् कैसे शङ्करसे भेंट हुई और शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ, उसका क्रमबद्ध उल्लेख हम नीचे करते हैं।

प्रयागसे चल कर शङ्कर-स्वामी 'माहिष्मती' नामक नगरीमें पहुंचे। मण्डन मिश्र उस समय इसी नगरीमें निवास करते थे। यह नगरी-नर्मदा तट पर विन्ध्याचल और रक्ष नामक पर्वत-मालाओंके बीचमें स्थित थी।

यथासमय एक दिन दोपहरके समय शङ्कर-स्वामी माहिष्मती नगरीमें पहुंचे। मार्गमें उन्हे दो तीन दासियां मिलीं। भाग्यक्रमसे पूछने पर मालूम हुआ कि वे मण्डनमिश्रकी ही दासियां हैं और जल लानेके लिये नर्मदा-तट पर जा रही हैं। शङ्कर-स्वामीने उनसे

शङ्कर-स्वामीने अपनी योगमायासे * सूक्ष्म शरीर धारण कर मण्डन-मिश्रके घरमें प्रवेश किया। द्वारपाल इस क्रिया-कलापको जान भी न सका कि वह शिखा-सूत्र रहित भीतर कैसे और कब घुस गया।

शङ्कर-स्वामीने एकाएक भीतर पहुंच कर देखा कि मण्डन मिश्र अपनी परम विदूषी पत्नीके साथ बैठे पितृ-श्राद्ध कर रहे हैं। आस-पास अनेक निमन्त्रित ब्राह्मणगण बैठे हुए हैं। श्राद्ध और विवाहादि मङ्गल कार्यों में संन्यासीका प्रवेश निषिद्ध समझा जाता है। परम पण्डित मण्डनमिश्र एकाएक एक भव्य मुखमण्डल और प्रशस्त ललाट-समन्वित संन्यासीको भीतर देख कर चकित हुए और अपने द्वारपालों पर भी रुष्ट हुए। परन्तु द्वारपालोंका इसमें क्या अपराध था? शङ्कर तो सूक्ष्म देह धारण कर भीतर घुसे थे। अस्तु, पण्डित मण्डन मिश्रने शङ्करकी उत्सुकतापूर्ण भाव-भंगिको देख कर उनसे पधारनेका कारण पूछा। शङ्करने संक्षेपमें उनके प्रश्नका उत्तर देते हुए कहा,—"पण्डितवर, मैंने आपकी विद्वत्ताकी बड़ी प्रशंसा सुनी है। आज आपके यहा भिक्षा पानेके लिये अनेक ब्राह्मण और भिक्षुक उपस्थित हुए हैं। इस श्राद्ध-वासर पर मैं भी एक भिक्षा चाहता हूं। वह भिक्षा शास्त्रार्थ है। मेरी एकान्त इच्छा है कि आपसे शास्त्र-चर्चा करूं।"

शङ्करकी बात सुन कर मण्डन मिश्रने पहले तो एक बार शङ्कर-स्वामीको आपाद-मस्तक देखा और फिर कहा,—"मुझे किससे शास्त्रार्थ करना होगा? क्या तुमसे? तुम किस प्रकृतिके आदमी हो जी?" उत्तरमें आचार्य शङ्करने कहा,—"मैंने ब्राह्मण कुलमें जन्म लिया है और महाज्ञानी शास्त्रविशारद आचार्यके निकट शास्त्रोंका

* दुर्वारमालोच्य सयोग शक्त्या,
व्योमाध्वनाऽयात रङ्कणान्स ।

अध्ययन किया है । आप मुझसे शास्त्रार्थ कीजिये, यही मेरी वासना है, यही मेरी प्रार्थना है ।" मण्डन मिश्रने कहा,*—तुम ब्राह्मण-वंश सम्भूत हो ! तुम्हारे बाह्य लक्षणोंसे तो तुम ब्राह्मण-सन्तान नहीं प्रतीत होते । क्योंकि तुम्हारे गलेमें यज्ञोपवीत नहीं, मस्तक शिखा-हीन है ! तुम कैसे विचित्र ब्राह्मण हो ?" आचार्य शङ्करने मुस्करा कर कहा,—"केवल शिखा और उपवीत धारण करनेसे ही क्या ब्राह्मणत्व लाभ होता है । ब्रह्मज्ञ-व्यक्तिका यही लक्षण समझना विडम्बना मात्र है । भारवाही ही ब्राह्मण नहीं होता । ब्रह्मज्ञानकी प्राप्ति ही ब्राह्मणका लक्षण है । इस व्यर्थ भार-वहनसे क्या लाभ और क्या फल ?"

शङ्कर-स्वामीकी बात सुन कर मण्डन मिश्र क्रुद्ध हो उठे और क्रोधके आवेशमें बोले,—"देखता हूं तुम सब कुछ त्याग कर संन्यासी हुए हो ! तुम्हारा देह कन्थाका भार वहन कर सकता है, किन्तु उपवीत और शिखाका इतना ही अधिक भार था, जो वहन नहीं हो सका ! देखता हूं कि तुम केवल भारवाही गर्दभ विशेष हो ।" आचार्य शङ्करने व्यङ्ग कर कहा,—"गर्दभ कौन है ? रमणी जिसको गाली दे, ताड़ना करे और वह हतभाग्य उसी रमणीका पालन-पोषण करे, उस

---

* म०—कुतोमुण्ड्यागलान्मुण्डी पन्थास्तेपृच्छ्यते मया,
किमाहपन्थास्त्वन्माता मुण्डेत्याह तथैवहि ।
श०—पन्थानं त्वमपृच्छस्त्वां पन्था प्रत्याह मण्डन ।
त्वन्मातेत्यत्र शब्दोऽयं न मां ब्रूयाद पृच्छकम् ॥
म०—अहो पीता सुरा नैव दवेता यतःस्मर ।
श०—किं त्वं जानासि तद्वर्णमहं वर्ण भवान्‌रसम् ।
म०—मत्तोजातः कलञ्जाशी विपरीतानि भाषते ।
सत्यं ब्रवीति पितृवत्त्वत्तो जातः कलंजभुक् ॥

का भार वहन करे, वही हतभाग्य ही तो गर्दभ है। मैं उन्हीं हतभाग्य भारवाहीगणोंके भारको विनष्ट करनेके लिये यत्नवान् और प्रवृत्त हुआ हूं।" उत्तरमे मण्डन मिश्रने कहा,---"तुम्हारा यह वैराग्य अद्भुत है। इसी प्रकारके वैराग्यसे क्या संन्यास धारण करनेका अधिकार प्राप्त होता हो? तुम विना संसारके कर्मक्षेत्रमें अवतीर्ण हुए, कैसे प्रकृत वैराग्यवान हो सकते हो? विना वैराग्यके संन्यास धारण करना निरी मूर्खता, वञ्चकता है।" शङ्करने कहा,—"वेदोंमें लिखा है कि कर्मों द्वारा ही महद्-ज्ञान अधिगत हो सकता है। जो प्रकृत ब्राह्मण हैं, वे विचार-बुद्धि द्वारा स्वर्गादि लोकोंकी परीक्षा कर वैराग्य-पथका अवलम्बन करते हैं। जिस शुभ मुहूर्तमें भी संसारसे वैराग्य हो, उसी मुहूर्तमें संन्यासी होनेका शास्त्रोंमें विधान है। ऐसा ज्ञानी पुरुष ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम और वाणप्रस्थाश्रमका परित्याग कर संन्यासी हो सकता है। विशुद्ध आत्मतत्त्वकी खोजमें प्रवृत्त हो सकता है।

कन्थां वहसि दुर्बुद्धे गर्दभेनापि दुर्वहाम्।
शिखा यज्ञोपवीताभ्यां कस्ते भारो भविष्यति॥
शं०—कन्थां वहामि दुर्बुद्धे तव पित्रापि दुर्भराम।
शिखा यज्ञोपवीताभ्यां श्रुतेर्भारो भविष्यति॥
म०—त्यक्त्वा पाणिगृहीतीं स्वामशक्त्वा परिरक्षणे।
शिष्य पुस्तक भारेच्छोर्व्याख्याता ब्रह्मनिष्ठता।
शं०—गुरु शुश्रूषणालस्य.त्समावर्त्य गुरो.कुलात्।
स्त्रियाः शुश्रूषमाणस्य व्याख्याता कर्मनिष्ठता।
म०--स्थितोसि योषितां गर्भे ताभिरेव विवर्धितः।
अहो कृतघ्नता मूर्ख कथं ता एव निन्दसि॥
शं०—यासां स्तन्यं त्वया पीतं यासां ज्ञातोऽसि योनितः।
तासु मूर्ख रम स्त्रीषु पशुवद्रमते कथम्॥

संसार-धर्ममें कर्ममें अथवा धन-सम्पदमें लिप्त रहनेसे मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता। एक मात्र त्याग-पथके अवलम्बनसे ही मोक्ष-प्राप्तिका मार्ग मिल सकता है और संसारत्यागी परिव्राजक महात्मा ही प्रकृत त्यागी पुरुष होता है। क्योंकि परिव्राजक वर्णभेदहीन, वस्त्रहीन, मुण्डित-मस्तक होकर स्वच्छन्द यथेच्छापूर्वक भ्रमण कर सकता है। वह कभी विवाह-वन्धनमे आवद्ध नहीं होता। शिखा और उपवीत धारण करनेका वन्धन भी उसके लिये अनावश्यक है। ब्रह्मज्ञान, प्रकृत ब्रह्मनिष्ठा संन्यासका अवलम्बन करनेसे ही प्राप्त होती है। इस लिये आप क्रुद्ध क्यों होते हैं? मैंने यथार्थ ब्रह्मज्ञानकी प्राप्तिके लिये संन्यास धारण किया है। इसमें आपके लिये तो कोई क्रोधकी वात नहीं है।"

शङ्करकी वात सुन कर मण्डनमिश्र फिर व्यङ्ग कर वोले,—"ओह! अब समझा"—तुम पत्नी और परिवारवर्गका भार वहन करने

म०—वीरहत्या भवान्सोऽसि वन्हीनुद्वास्य यत्नतः।
आत्महत्या भवानस्त्वम विदित्वा परमहम्।
भिक्षुभ्योऽन्नमदत्वा त्वं स्तेन भवन्मोक्ष्यसे कथम्।
दौवारिकान्वञ्चयित्वा कथं स्तेनवदागतः।
कर्मकाके न संभाष्य अहं मूर्खेण संप्रति।
अहो प्रकटितं ज्ञानं मतिभंगेन भाषिणा॥

शं०—मति भंगे प्रवृत्तस्य मतिभंगो न दोषभाक्।
मतिभंगे प्रवृत्तस्य पञ्चम्यन्त समस्यताम्॥

म०—क्व ब्रह्म क्व च दुर्मेधाः क्व संन्यासः क्व वा कलिः।
स्वाद्वन्न भक्षकामेण वेषोऽयं योगिनां धृतः॥

शं०—क्व स्वर्गं क्व दुराचारः क्वाग्निहोत्रं क्व वा कलिः।
मन्ये मैथुनकामेन वेषोऽयं कर्मिणां धृतः॥

में अपनेको असमर्थ समझ कर ही गृहस्थाश्रम-परित्यागी हुए हो।" उत्तरमें शङ्करने कहा,—"तुम गृही हो, तुम नहीं जानते कि ब्रह्मचर्य-पालन करना और गुरु-सेवा का काम कितना कठिन है। मालूम होता है तुमने उसीके भयसे भीत होकर आलस्य और भोगका आश्रय लेकर गृहस्थ किया है। परन्तु तुम्हें ज्ञात होना चाहिये कि गृहीके लिये शास्त्रोंमें पञ्चयज्ञोंका विधान है। अर्थात् वेदाध्ययनसे ब्रह्मयज्ञ, श्राद्धादि क्रियाओंसे पितृयज्ञ, होम-क्रियासे देव-यज्ञ, काकादिको भोजन देनेसे भूतयज्ञ और अतिथि सेवासे नर-यज्ञ सम्पन्न होते हैं। परन्तु शास्त्रों द्वारा कथित इन पञ्चयज्ञोंमें तुम्हारी प्रवृत्ति नहीं है। रमणी-सेवा, स्त्री-सङ्ग ही तुम्हारे गृह-धर्मका उद्देश्य प्रतीत होता है?" उत्तेजित होकर मण्डनमिश्रने कहा,—"नारी-सेवा अधर्म कैसे है? जिस रमणीने नौ मास तक तुमको गर्भमें धारण किया, बाल्यावस्थामें लालन-पालन किया, उसी नारीजातिकी तुम निन्दा करते हो! यही तुम्हारा धर्म-ज्ञान है? तुम नितान्त मूर्ख हो। इसी लिये महीयसी देवी-तुल्या नारीसे घृणा करते हो!" शङ्करने कहा—"तुम पशु तुल्य हो। तुम जिस स्त्रीसे उत्पन्न हुए हो उसीके साथ पशुवत् रमण करते हो!"

मण्डनने और भी उत्तेजित होकर कहा,—"तुम अज्ञ और अन्ध के सदृश हो। इन्द्रघातक हो। श्रुतियोंमें लिखा है कि जो गार्हपत्य, आवहनीय, दक्षिण नामक तीन अग्नि-सेवाओं द्वारा इन्द्रको परितुष्ट करता है, वही मानव है। किन्तु तुम तो इन्द्रघातक हो। क्योंकि तुमने इन अग्नि-त्रयका परित्याग कर संन्यास धारण किया है।" उत्तरमें शङ्करने कहा,—"पाप कई प्रकारके हैं। पापी भी बहुत तरह के होते हैं। किन्तु आत्म-हत्या के बराबर पाप और आत्मघातीके बराबर कोई पापी नहीं होता। जो मानव देह धारण करके भी आत्म

तत्त्वको नहीं लाभ करता, वह आत्महत्या रूपी महापाप करता है। तुमने भी आत्मतत्त्वका त्याग करके आत्महत्या रूपी महापाप किया है। श्रुतिमें लिखा है कि जो ब्रह्मवित् नहीं—वह ब्रह्मज्ञानी नहीं, वह आत्मघाती है। मृत्युके वाद इस प्रकारके पापी 'असूर्य' नामक महा अन्धकारमय नरकमें वास करते हैं।"

आचार्य शङ्करके तर्कपूर्ण वाक्योंको सुन कर मण्डन मिश्र निरुत्तर हो गये और अत्यन्त क्रोधान्ध होकर वोले,—"तुम तो बड़े नीच हो जी, तुम द्वारपालोंकी आंख बचा कर कैसे भीतर घुस आये? यह चौर-कर्म तुमने कैसे किया?" उत्तरमें शङ्कर गंभीर होकर वोले,—"हां मैं चोरकी तरहसे ही भीतर घुस आया हूं। किन्तु तुम्हारा यह नीच व्यवहार कैसा? तुम भिखारियोंको भिक्षा न देकर स्वयं भोग कर रहे हो? जो क्षुधार्त्त भिक्षुकोंको भिक्षा न देकर स्वयं सुख-सम्पद् का भोग करता है, उससे बड़ा चोर और कौन हो सकता है?" शङ्करकी बात सुन कर मण्डन मिश्रका पारा और भी चढ़ गया। मण्डन मिश्रने कहा,—"तुम केवल मुखसे ही ब्रह्म-ब्रह्म कहते हो। किन्तु कहां वह भूमाभाव ब्रह्म और कहां तुम्हारे जैसा मेधाहीन व्यक्ति! सोच कर देखो, यह समय कलिकालका है। कहां संन्यास और कहां कलिकाल! तुम तो महालोभी और चोर हो। क्योंकि श्राद्धका मिष्टान्न भोजन करनेके लिये ही तुमने यह वेश धारण किया है। संसारमें आकर गृही-गृहस्थियोंको प्रतारित करना ही तुम्हारा उद्देश्य है।"

प्रत्युत्तरमें शङ्करने कहा,—"कहां स्वर्ग और कहां तुम्हारे जैसा विषयासक्त व्यक्ति! कहां अग्नि-होत्र याग और कहां घोर कलिकाल! तुम्हारे आचार-व्यवहारसे तो यह स्पष्ट हो गया कि तुम धर्महीन हो। इन्द्रिय-सुख उपभोग करनेके लिये ही तुमने धार्मिक गृहस्थका रूप

धारण किया है !" मण्डनने कहा,—"जाओ ! जाओ !! मैं इस समय पवित्र श्राद्ध-कार्यमें लगा हुआ हू। इस विशुद्ध कर्मके समय तुम्हारे जैसे अन्ध-मूढ और मूर्खके साथ तनिक भी सम्भाषण करनेकी मेरी इच्छा नहीं है।"

जिस समय उपरोक्त वाक्-वितण्डा हो रहा था, उस समय वहां दो ऋषिकल्प ब्राह्मण भी उपस्थित थे। मण्डन मिश्रके दुर्वाक्योंको सुन कर उन्होंने मण्डनमिश्रसे कहा,—"वत्स, जिस मनुष्यकी पत्नी-पुत्रोंको लेकर संसार करनेकी इच्छा नहीं, जो आत्मतत्त्वको जानता है, उसके प्रति ऐसे असाधु-जनोचित कर्कश वाक्योंका प्रयोग करना, साधु जनों का कर्तव्य नहीं है। तुमने अभी तक इनको नहीं पहचाना है। ये तो महापुरुष-यति साक्षात् नरायणके तुल्य हैं। ये बड़ा अनुग्रह कर तुम्हारे घर आये हैं। तुम सादर अभिनन्दन कर इनका निमन्त्रण करो।"

मण्डनमिश्र अब तक आत्मविस्मृतसे होकर शङ्करके प्रति कर्कश कटु वाक्योंका प्रयोग कर रहे थे। उपरोक्त ऋषिकल्प—विद्वानोंकी बात सुन कर आत्मबोध हुआ। वे प्रकृतिस्थ होकर प्रशान्त भावसे अनुताप करने लगे। आचार्य शङ्करसे क्षमा-याचना करते हुए मण्डन-मिश्रने आचमन कर उनको सादर निमन्त्रित किया। उत्तरमें शङ्करने भी नम्र होकर कहा,—"मैंने तुमसे एक भिक्षा माग रखी है। "मण्डन ने फिर आत्मस्थ होकर पूछा,—"कहिये, क्या ?" शङ्कर बोले,—"युक्ति-तर्क भिक्षा। मैं युक्ति और तर्कके साथ आपसे शास्त्रार्थ करना चाहता हू।" मण्डन मिश्रने शङ्करकी शास्त्रार्थ-भिक्षा को स्वीकार कर लिया और यह तय हुआ कि जो परास्त हो जायगा, वही विजयी का शिष्यत्त्व स्वीकार करेगा। इसके बाद शङ्कर स्वामीने कहा,—"मेरा प्रधान विषय वेदान्त है। वेदान्तके गूढ सिद्धान्तोंका प्रचार करना ही मेरा उद्देश्य है।"

उत्तरमें—बड़े अभिमानसे मण्डनने कहा,—"बहुत ठीक ! आप की जिस विषयमे इच्छा हो शास्त्रार्थ कर लेना। इस संसारमे मुझे पराजित करने वाला कौन है ? बहुत दिनोंसे मेरे भी मनमे आपके साथ शास्त्रार्थ करनेको साध थी। ठीक है—वह साध अब मिट जायगी। यह तो आप जानते ही होंगे कि मैं कृतान्तका नियामक हूं। ईश्वर ही उसका विनाशकर्त्ता है। मीमांसाशास्त्रमें लिखा है और मीमांसक भी कहते हैं कि ईश्वर नहीं है। कर्म ही जीवको शुभाशुभ फल प्रदान करने वाला है। मैंने भी तर्क और विचार द्वारा कर्म-धर्म को ही सुदृढ़ किया है। आप भी तार्किक हैं। आप जैसे तार्किकको पाकर मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूं। परन्तु एक बात है।" शङ्करने कहा,—"क्या ?"

मण्डनने कहा,—"बात यही है कि तर्कके समय अनेक शास्त्रीय गूढ़-प्रसङ्ग उपस्थित होंगे। मैं एक प्रकारकी बात कहूंगा और आप दूसरी तरहकी। तब तथ्यातथ्यका कौन निश्चय करेगा। विचारक या मध्यस्थ तो नितान्त आवश्यक होगा, जो यथार्थ मन्तव्यका प्रकाश कर सके।"

मण्डन मिश्रकी इस बातका उत्तर देते हुए उन निमन्त्रित ऋषि-कल्प दोनों व्यक्तियोंने कहा—"आपकी पत्नी-देवी * उभयभारती

---

* ततः समादिश्य सदस्यतायां सधर्मिणी मंडन पण्डितोऽपि।
सशारदां नाम समस्त विद्या-विशारदां वाद समुत्सुकोऽभूत।
पत्या नियुक्ता पति देवता सा—सदस्यभावे सदती. चकासे।
तयोर्विवेक्तुं श्रुत तारतम्यं समागता संसदि भारतीव॥
प्रवृद्धावादोत्सुकतां तदीयां विज्ञाय विज्ञः प्रथमं यतीन्द्रः।
वरावरज्ञः स परावरैक्य परां प्रतिज्ञामकरोत्स्वकीयाम्॥

'शङ्कर-दिग्विजय'

पण्डिता हैं, विदुषी हैं। वे मध्यस्थताके लिये उपयुक्त होंगी।"
शङ्कर और मण्डन मिश्र दोनोंने इस वातको स्वीकार कर लिया। इसके वाद शङ्कर वहांसे विदा हुए और शिष्योंको लेकर रेवा-नदीके तट पर उन्होंने डेरा डाला।

इसके वाद यथासमय अपने शिष्यों सहित शङ्कर शास्त्रार्थके लिये मण्डन मिश्रके यहा उपस्थित हुए। शङ्कर और मण्डन दोनों ही महा पण्डित थे। समस्त देशमें दोनोंकी प्रख्याति थी। शास्त्रार्थकी वात सुन कर अनेक पण्डित और विद्वद्गण शास्त्रार्थ सुननेके लिये वहां उपस्थित हुए।

इसके पश्चात् शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। सात दिन तक वरावर शास्त्राथ होता रहा। मण्डन मिश्र और शङ्कर स्वामीका शास्त्राथ शङ्करके जीवनकी विशेष उल्लेखनीय घटना है, इस लिये उस महत्त्व-पूर्ण शास्त्रार्थको हम अगले परिच्छेदमे श्रीआनन्दगिरिके 'शङ्कर-दिग्विजय' से अविकल उद्धृत करते हैं।



एकादश-परिच्छेद ।

मण्डन मिश्रसे शास्त्रार्थ ।

—:o:—

पण्डितवर मण्डनमिश्रके विशाल-भवनमे शास्त्रार्थका आयोजन किया गया। अनेक पण्डित और विद्वद्गण शास्त्रार्थ-सभामें श्रोता रूपमें पधारे। शङ्कर और पं० मण्डनमिश्रके मतानुसार देवी उभय-भारतीने मध्यस्थका आसन ग्रहण किया। सर्वप्रथम देवी उभय-भारतीने ही परम सुगन्धित पुष्प-माल्य दोनों शास्त्रार्थ-कर्ताओंके गले में पहना कर कहा,—"मैंने दोनों विद्वानोंके गल-प्रदेशमे पुष्प मालायें पहनायी हैं। जिसकी मालाके पुष्प पहले म्लान हों, उसे ही पराजित समझ लेना होगा।" इसके पश्चात् शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ।

सर्वप्रथम शङ्कर स्वामीने जीवात्मा और परमात्माकी ऐक्यताकी स्थापना करते हुए कहा, —"रजतके गुणको लाभ करके शुक्ति जैसे रजत रूपमें प्रकाशित है, उसी प्रकारसे नित्यानन्द और आनन्दस्वरूप एक ही परमार्थ वा परमात्मा विशुद्ध ब्रह्म निविड़ अनादि ज्ञानसे आच्छादित होकर, इस निखिल ब्रह्माण्ड रूपमें प्रकाशमान होता है। परमात्मा और जीवात्माका ऐक्यबोध ही यथार्थ प्रकृत तत्त्व-ज्ञान है। तत्त्व-ज्ञानकी प्राप्ति होने पर अखिल विश्व-ब्रह्माण्ड के कारण जो अज्ञान भ्रम उत्पन्न हुआ होता है, वह विनष्ट हो जाता है। अज्ञान और भ्रमके दूर होने पर मानव, जीवात्मा और परमात्माके यथार्थ स्वरूपको जान सकता है। निर्वाण-मुक्ति अथवा जीवन्मुक्ति परमात्मा की अनुभूतिका ही नाम है। प्रमाण स्वरूप में वेदान्तमें कथित

सिद्धान्तोंका उल्लेख करता हूं। यथा-ब्रह्म एक-अद्वितीय, ब्रह्म सत्य और ज्ञान स्वरूप अनन्त, वह विज्ञानमय और आनन्दमय है। (एकमेवाद्वितीयं सत्यं ज्ञानमवन्तं विज्ञानमानन्दं ब्रह्म) यही परिदृश्यमान अखिल ब्रह्माण्ड केवल ब्रह्ममय है। (सव खल्विदं ब्रह्म) जो आत्मतत्त्ववेत्ता हैं वे शोक-तापको सहन करनेमें समर्थ होते हैं। (तरति शोक आत्मवित्) वे तो एकमात्र केवल ब्रह्मका ही ध्यान करते हैं, सब जगह उन्हींको देखते हैं। उनके लिये शोक-मोह कुछ भी नहीं है। (तत्रको मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यता) जो ब्रह्मको जान जाते हैं वे स्वयं ब्रह्ममय हो जाते हैं। (ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति।) वे फिर संसारमें नहीं आते। (न सः पुनरावर्ततेनगः पुनरा वर्तते।) इत्यादि श्रुति वाक्य ही मेरे पक्षमे प्रमाण हैं।" इसके बाद शङ्करने फिर कहना आरम्भ किया,—"पण्डितवर, मैंने अपने पक्षके मुख्य प्रमाणों का उल्लेख कर दिया। मैं एक बार फिर प्रतिज्ञा करता हूं कि यदि मैं इस तर्क-विचारमें पराजित हुआ, तो तुरन्त इन कषाय वस्त्रों को परित्याग कर आप जैसे शुभ्र वस्त्र धारण करूंगा। विचारकालमें देवी उभयभारती ही जय-पराजयका निर्धारण करेंगी।"

शङ्कर स्वामीके पूर्वपक्ष स्थापनके बाद पं० मण्डनमिश्र बोले,—"स्वामिन्, आपने जो कहा है कि परमात्मा चित्स्वरूप है, इस विषय में वेदान्त-वाक्य प्रमाण नहीं माने जा सकते। क्योंकि जो चित्स्वरूप है सो नित्य है, और जो वाक्य स्वरूप है—वह अनित्य है। सुतरां नित्यके साथ अनित्यका सम्बन्ध असम्भव है। यह सम्बन्ध हो ही नहीं सकता। शब्दकी शक्ति ही एकमात्र कार्यमें संश्लिष्ट हो सकती है। किन्तु चित् पदार्थ-कार्यसे अतीत है। कार्यातीत परमात्माके साथ शब्द कभी संश्लिष्ट नहीं हो सकता। तब फिर चित्स्वरूप परमात्माका आन्वित्व कैसे माना जा सकता है? वेदान्तके पूर्व भागमें

जो मीमांसावाक्य हैं, वे अवश्य ही प्रामाण्य हैं। क्योंकि वे कर्म-विषयमें विजड़ित है। केवल कार्यके प्रति ही प्रसिद्ध वाक्य समूहकी शक्तिकी स्वीकृति है। फलतः कर्मसे ही मुक्ति लाभ हो सकती है। अतएव कर्म ही देहधारी जीवके जीवन का एकमात्र करणीय और वाञ्छनीय कर्तव्य है। श्रुतिमें लिखा है कि यावज्जीवन अग्निहोत्र-महायज्ञ अनुष्ठान करना चाहिये। (यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहुयात्।) मेरे तर्कका यही प्रमाण है। मैं यदि इस विचार-तर्कमें पराजित हूंगा, तो इन शुभ्र वस्त्रोंका परित्याग कर कषाय वस्त्र धारण करूंगा और गृहस्थाश्रमका परित्याग कर दूंगा। आपके पक्षमें मेरी पत्नी उभयभारती जैसे साक्षी हुई है, मेरे पक्षमें भी वैसे ही वही साक्षी है।"

इस प्रकारसे पूर्व और उत्तर पक्ष स्थापित होने पर दोनों महा-विद्वानोंमें घोर शास्त्रार्थ होने लगा। बराबर सोलह दिन तक यह चिरस्मरणीय शास्त्रार्थ होता रहा। भोजनके समय देवी उभयभारती अपने पति पं० मण्डनमिश्रसे कहती,—चलिये महाराज, भोजन तैयार हैं। शङ्कर स्वामीसे कहती - भिक्षा तैयार है। * इस वाक्यावलि से प्रतिदिन यही प्रतीत होता कि अभी तक कोई पराजित नहीं हुआ। नीचे हम शास्त्रार्थको 'शङ्कर-दिग्विजय' से उद्धृत करते हैं।

मण्डन मिश्र—आप जीव और ईश्वरकी एकता बताते है, इसमें कोई प्रमाण नहीं।

शङ्कर स्वामी—प्रमाण है उद्दालकने श्वेतकेतुको उपदेश किया है कि श्वेतकेतो, तू वह अर्थात् परमेश्वर है।

---

* दिने दिने वासर मध्यमेत्ता, ब्रूते पतिं भोजनकाल मेव।
समेत्य भिक्षुं समयञ्च भैक्ष्यै दिनान्य भूवन्निति पद्मपाणि॥

मण्डन मिश्र—ऐसे वचन केवल जपके लिये हैं, उनके जप करने से पाप दूर होते हैं, ये किसी अर्थकी विवक्षासे नहीं बोले गये, जैसे हू और फट् हैं।

शङ्कर स्वामी - हूं-फट् आदि शब्दोंमे अर्थकी प्रतीति न होनेसे इनको जपके उपयोगी कहा गया है। पर उपनिषद्के इन वचनके तो अर्थ स्पष्ट हैं, फिर यह केवल जपोपयोगी कैसे हो सकता है ?

मण्डन मिश्र—'तत्त्वमसि' वाक्यसे स्पष्ट अभेद प्रतीत होता है, पर इसका तात्पर्य अभेद-बोधनसे जीवात्माकी नित्यता प्रकट करना है, क्योंकि आत्माको नित्य समझनेसे पुरुष यज्ञादि कर्मोंमें प्रवृत्त होता है, जिनका फल दूसरे लोकमें होता है। इसलिये सारा ज्ञान-काण्ड कर्मकाण्डका अङ्ग है अर्थात् ज्ञानकाण्ड आत्माको नित्य बनाता है और आत्माको नित्य समझनेसे पुरुष पारलौकिक कर्मोंमें तत्पर होता है, जो कर्मकाण्डका उद्देश्य है।

शङ्कर-स्वामी—कर्मकाण्डके अर्थवाद तो कर्मका अङ्ग बन सकते हैं, क्योंकि वे उसी प्रकरणमें आये हैं, पर जीव और ब्रह्मकी एकताके बोधक-वचन किस प्रकार कर्मकाण्डका अङ्ग बन सकते हैं, जिनका प्रकरण सर्वथा विभिन्न है।

मण्डन मिश्र—'मनोब्रह्मेत्युपासीत, आदित्यो ब्रह्मेत्यादेशः" अर्थात् मन ब्रह्म है ऐसी उपासना करे और सूर्य ब्रह्म है, यह आदेश है। यहां सूर्य और ब्रह्मको जो वस्तुतः ब्रह्म नहीं, उपासनाके निमित्त ब्रह्म बताया है। इस वचनके कहनेसे मन और सूर्य ब्रह्म नहीं बन जाते, किन्तु उपासनाके लिये उन्हें ब्रह्म ख्याल करना चाहिये और उपासनाका फल यह है कि जिस कर्ममें कोई उपासना बतलाई है, उस कर्म में उस उपासनाके करनेसे कर्म अधिक बलवाला बनता है। इसी प्रकार यह कहनेसे कि—'वह तू है, जीव और ईश्वर एक नहीं

बन जाते, केवल उपासना के निमित्त जीव को ईश्वर ख्याल करना बताया है।

शङ्कर स्वामी—'मनोब्रह्मेत्युपासीत' यहां तो विधि पाई जाती है, कि ऐसी उपासना करे, पर 'तत्त्वमसि' में तो कोई विधि नहीं, कि जीवको ब्रह्म समझे वा ब्रह्म ख्याल करके उपासना करे। इस लिये यह वचन यथार्थ ज्ञानको प्रकट करता है, उपासनाके लिये नहीं।

मण्डन मिश्र—रात्रिसत्र (यज्ञ) के करनेमें कोई विधि नहीं, पर यह बतलाया गया है कि इसका फल प्रतिष्ठा लाभ करना है। इसलिये यह कल्पना की जाती है कि इस यज्ञके करनेकी विधि है। इसी प्रकार 'वह तू है' के ध्यानका फल मुक्ति बतलाया गया है। उचित है कि यहां भी विधि-कल्पना की जाय अर्थात् जो मुक्ति पाना चाहता है, वह जीवको ब्रह्म ध्यान करके उसकी उपासना करे।

शङ्कर-स्वामी—यदि मुक्ति उपासनाका फल है, तो वह क्रियाजन्य हुई, तब वह स्वर्गकी तरह अनित्य हो जायगी। क्योंकि उत्पन्न हुई वस्तु अवश्य नष्ट होगी। निःसन्देह उपासना भी एक कर्म है, क्योंकि इसका करना वा न करना, ठीक करना वा अन्यथा करना, मनुष्य के अपने अधीन है। सारे कर्मोंकी यही अवस्था है। पर ज्ञान मनुष्यके अपने हाथ नहीं, वह वस्तुके अधीन है। उसमें जानना वा न जानना वा अन्यथा जानना मनुष्यके अपने अधीन नहीं। जैसी वस्तु होगी, वैसा ज्ञान होगा इसलिये ज्ञान-कर्मके अन्तर्गत नहीं हो सकता।

मण्डन मिश्र—यदि ऐसा ही जाना जाय तो भी यह वचन जीव और ब्रह्मकी एकताको प्रकट नहीं करता, किन्तु इससे यह प्रकट होता है कि वह (जीव) उसके (ईश्वर के) सदृश है। क्योंकि जब भिन्न वस्तुओंका अभेद बताया जाता है, तो उसका यह अभिप्राय होता है

कि यह उसके सदृश है। उसे यह पुरुष शेर है अर्थात् यह पुरुष शेर के सदृश पराक्रम वाला और निडर है।

शङ्कर-स्वामी - क्या जीव चेतन होनेमें परमेश्वरके सदृश है वा सर्वज्ञ सर्वात्मा और सर्वशक्ति होनेमे भी? यदि कहा कि चेतन होने में, तो इसके उपदेशकी आवश्यकता नहीं, क्योंकि यह समता तो प्रसिद्ध ही है और यदि सर्वज्ञ सर्वात्मा और सर्वशक्ति होनेमे परमात्मा के सदृश हो जाता है तो फिर भेद ही क्या रहा, वह तो परमेश्वरका स्वरूप ही है।

मण्डन मिश्र—सदृश होनेसे यह अभिप्राय है कि उस अवस्थामें जीवात्मामें परमात्माके तुल्य सुख और ज्ञान आदि प्रकट होते हैं जो पहले अविद्याके कारण छिपे हुए थे।

शङ्कर स्वामी—यदि यह मानते हो कि जीवात्मामें परमात्माके सदृश गुण है, पर वे अविद्याके आवरणसे ढके हुए हैं और अविद्याके दूर होने पर वे गुण प्रकट होते हैं, तो फिर इसके माननेमें क्या दोष है कि जीव वस्तुतः ब्रह्म है, पर वह अविद्या रूपी आवरणसे ढका हुआ होनेके कारण अपने आपको ब्रह्म नहीं समझता। जब आवरण दूर हो गया तो फिर वह सचमुच ब्रह्म है।

मण्डन मिश्र—अच्छा, तो इसका यह अभिप्राय समझिये कि ब्रह्म जीवके तुल्य है—अर्थात् जैसे जीव चेतन है वैसे ब्रह्म भी चेतन है और इससे यह परिणाम निकला कि इस जगत्का बनाने वाला ब्रह्म जड़ नहीं, चेतन है।

शङ्कर स्वामी—ऐसा दशामें तो 'तत्त्वमसि' की जगह 'तत्त्वमस्ति' वाक्य होना चाहिये अर्थात् वह है तू, न कि तू वह है और जगत्का कारण जड़ नहीं चेतन है। इसका उत्तर तो इस वचनसे मिल जाता है "तदैक्षत" अर्थात् उसने ख्याल किया।

मण्डन मिश्र—जीव और ईश्वरका अभेद प्रत्यक्ष प्रमाणके विरुद्ध है इसलिये यह वचन केवल जपके लिये है।

शङ्कर-स्वामी—अभेदका प्रत्यक्षके साथ तब विरोध हो, जब प्रत्यक्षसे भेद सिद्ध हो। पर प्रत्यक्षसे तो भेद सिद्ध ही नहीं होता। क्योंकि भेदके अर्थ हैं कि यह वस्तु वह वस्तु नहीं, जैसे सूर्य और चन्द्रमें भेद है अर्थात् सूर्य चन्द्र नहीं और नहीं अर्थात् अभावके साथ किसी इंद्रियका सम्बन्ध नहीं होता। इसलिये भेदमें प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं। जब प्रत्यक्षसे भेद सिद्ध नहीं होता तो प्रत्यक्षका अभेदके साथ विरोध कैसे हुआ।

मण्डन मिश्र—प्रत्येक पुरुष इस बातको अनुभव करता है कि मैं ब्रह्म नहीं। भला जिस बातको आत्मा अनुभव करता है, वह किस तरह दूर हो सकती है।

शङ्कर-स्वामी—मैं ब्रह्म नहीं, यह प्रत्यक्ष प्रमाण अविद्यायुक्त जीव और माया युक्त ईश्वरके भेदको सिद्ध करता है और श्रुतिका यह अभिप्राय है कि जब अविद्या और मायाको अलग कर दिया जाय, तो उनका आपसमें कोई भेद नहीं रहता। यह भेद केवल उपाधिका है और जिस कारण प्रत्यक्ष उस भेदको सिद्ध करता है जो उपाधिसे रहित हो। इसलिये प्रत्यक्ष और श्रुतिमें कोई विरोध नहीं। क्योंकि इनका विषय अलग अलग है और यदि मान भी लिया जाय कि प्रत्यक्ष और श्रुतिका आपसमें विरोध है, तो भी प्रत्यक्ष की अपेक्षा श्रुति प्रबल प्रमाण है (क्योंकि प्रत्यक्षसे भेदज्ञान तो पहले होता है और श्रुतिसे अभेद-ज्ञान पीछे और एक ही विषय पर वे ज्ञान जो एक दूसरेके विरुद्ध हों, उनमेंसे पूर्वज्ञान दुर्वल वा बाधित और पर ज्ञान बलवान् वा बाधक समझा जाता है, जैसा कि पुरुष पहले भ्रांति से सीपको चांदी समझता है। पर जब उसको सीप समझ लेता है,

तब उसका पहला चांदीका ज्ञान दूर हो जाता है। यदि यह माना जाय कि पहला ज्ञान सत्य था तो दूसरा उसके विरुद्ध उत्पन्न हो नहीं सकता। इसी प्रकार पहले प्रत्यक्षसे भेदका ज्ञान होता है और फिर श्रुति अभेदको सिद्ध करती है, इस लिये श्रुतिके सम्मुख प्रत्यक्ष दुर्बल है।

मण्डन मिश्र—यदि यह माना जाय, कि प्रत्यक्ष प्रमाणके साथ श्रुतिका कोई विरोध नहीं, तो भी इसका अनुमान प्रमाणके साथ विरोध स्पष्ट पाया जाता है। जैसे जीव ब्रह्म नहीं, क्योंकि वह सर्वज्ञ नहीं—जो सर्वज्ञ नहीं, वह ब्रह्म नहीं। जैसे कि पृथ्वी सर्वज्ञ नहीं तो वह ब्रह्म नहीं। शास्त्रोंमें लिखा है कि ईश्वर, स्वामी और सारे विश्व को अपने नियममें रखने वाला है और जीव उसकी प्रजा और उसके नियममें चलने वाला है। यदि जीव और ब्रह्ममें भेद न माना जाय, तो कोई स्वामी और प्रजा, नियन्ता और नियम्य नहीं बन सकता।

शङ्कर स्वामी—बताइये अनुमान प्रमाण वास्तविक भेद को प्रकट करता है, वह व्यावहारिक भेदको यदि कहा जाय कि वास्तविक भेदको प्रकट करता है तो उसके लिये कोई दृष्टान्त नहीं बन सकता। आप तो पृथ्वीको भी ब्रह्मसे भिन्न नहीं मानते हैं। अतएव अनुमान प्रमाण में आप इसका दृष्टान्त किस प्रकारसे दे सकते हैं? पर यदि यह कहा जाय कि अनुमान व्यावहारिक भेद को सिद्ध करता है, तो आपका हमसे कुछ भेद नहीं, क्योंकि कल्पित भेदको हम भी मानते हैं और इसी कल्पित भेदके आश्रय स्व-स्वामी और नियम्य-नियामकका भेद बन सकता है।

मण्डन मिश्र—जीव-ईश्वरका भेद तो आप उपाधिसे मानते हैं अर्थात् अविद्याको उपाधिके कारणसे जीव और ब्रह्म अलग प्रतीत होते हैं, वस्तुतः वे एक ही हैं, पर पृथिवी और ईश्वरमें भेद उपाधिके बिना ही है, इसलिये यह दृष्टान्त बन सकता है।

शङ्कर स्वामी—हम पृथिवी और परमेश्वरमें भेद भी अविद्या-रूपी उपाधिसे ही मानते हैं, क्योंकि जब तक अविद्या है तब तक ही भेद है, अविद्याके नष्ट होने पर कोई भेद नहीं रहता इसलिये आपका दृष्टान्त नहीं घटता।

मण्डन मिश्र—द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्योऽभिचाकशीति।

अर्थात्—इकट्ठा रहने वाले सुन्दर परों वाले (एक दूसरेके) सखा पक्षी एक वृक्ष पर रहते हैं, उनमें एक तो उस वृक्षके मीठे फल को खाता है और दूसरा उस फलको न खाता हुआ देखता है।

इस मन्त्रमें जीवात्माको कर्मोंका फल भोगने वाला और परमात्माको उसके कर्मों का देखने वाला बताया है। इससे स्पष्ट सिद्ध है कि जीव और ईश्वर एक नहीं, किन्तु अलग अलग हैं।

शङ्कर-स्वामी—यह मन्त्र जीवात्मा और परमात्मा में प्रत्यक्ष प्रमाणके सिद्ध भेदको प्रकट करता है। पर इसका मुख्य अभिप्राय भेदके सिद्ध करनेका नहीं, किन्तु इस में प्रत्यक्ष सिद्ध भेदका अनुवाद मात्र है।

जिस प्रकार अर्थवाद अपने अर्थमें प्रमाण नहीं होते, किन्तु उन का तात्पय लिया जाता है। इसी प्रकार यह श्रुति भी इस बातको सिद्ध करनेके लिये नहीं कही गयी कि जीव और ईश्वर में वास्तवमें भेद है, किन्तु यहां तो प्रत्यक्ष सिद्ध भेदका अनुवाद किया गया है। पर याद रहे कि यह उत्तर तो इस बातको मान कर दिया गया है कि सचमुच इस मन्त्रमें आत्मा परमात्माका वर्णन है। पर असल बात यह है कि यह मन्त्र आत्माको अन्तःकरणसे अलग बताकर उसका सब प्रकारसे भोगोंसे अलग रहना बतलाता है अर्थात् भोगने वाला पक्षी अन्तःकरण है और आत्मा उसको देख रहा है।

मण्डन मिश्र—यदि यह श्रुति जीवात्मा और परमात्माको प्रकट नहीं करती, किन्तु अन्त.करण और आत्माको प्रकट करती है, तो इस से यह अभिप्राय निकलेगा कि अन्तःकरण जो जड है, वह भोगता है आत्मा जो चेतन है वह नहीं भोगता। अतः जड़ भोगने वाला नहीं वन सकता। इस लिये ऐसा अर्थ करने से श्रुति अप्रामाणिक ठहरेगी।

शङ्कर स्वामी—यह आक्षेप नहीं आता क्योंकि इस मन्त्रका यह अर्थ 'पैंगिरहस्य ब्राह्मग' में लिखा है कि भागने वाला सत्व अर्थात् अन्तःकरण और देखने वाला क्षेत्रज्ञ अर्थात् आत्मा है।

मण्डन मिश्र—इस जगह भी 'सत्व' शब्द का अर्थ जीवात्मा और 'क्षेत्रज्ञ' का अर्थ परमात्मा हो सकता है और इस ब्राह्मण में जीवात्मा और परमात्मा का प्रसङ्ग है, अन्त.करण और जीव का नहीं।

शङ्कर स्वामी—वहां तो स्पष्ट लिखा है 'तदेतत्सत्वं येन स्वप्नं पश्यत्यथयोऽयं शारीर उपद्रष्टा स क्षेत्रज्ञ स्तावेतौ सत्य क्षेत्रज्ञौ"

अर्थात् स्वत्व यह है जिससे स्वप्नको देखना है और जो देखने वाला शरीरमें होने वाला है, वह क्षेत्रज्ञ है ये दानों सत्व और क्षेत्रज्ञ हैं। यहा स्वप्नके देखनेवाले को क्षेत्रज्ञ और देखनेके द्वारा स्वप्न देखता है, और जोवात्मा देखने वाला है इस लिये यहा अन्त.करण और जीवात्माका वर्णन है जीव और ईश्वरका नहीं।

मण्डन मिश्र—इन शब्दोंसे 'जिससे स्वप्नको देखता है' जीवात्म अभिप्रेत है, अन्त.करण नहीं। क्योंकि यह जड़ शरीर आत्माके द्वार स्वप्नको देखता है, और इन शब्दोंसे जो देखने वाला है वह क्षेत्रज्ञ है, अभिप्राय परमात्मासे है क्योंकि वह सर्वव्यापक और सबका देख वाला है इसलिये यह स्वप्नको देखता है।

शङ्कर स्वामी—यहां लिखा है जिससे स्वप्नको देखता है, वह सत्व है, इससे प्रकट होता है कि सत्व वह वस्तु है जो स्वप्नके देखने का द्वार है, न कि देखने वाला और देखनेका द्वार अन्तःकरण है, न कि जीवात्मा और जीवात्मा देखने वाला है न कि देखने का द्वार। बल्कि यहां देखने वालेको शरीर (शरीरमें होने वाला) बतलाया है। इसलिये वह ब्रह्म नहीं समझा जा सकता, क्योंकि शरीरमें होने वाला जीवात्मा है परमात्मा तो सारे विश्वमें वर्तमान है, उसको शारीर किस तरह कहा जा सकता है।

मण्डन मिश्र—जब परमात्मा सारे विश्वमें विद्यमान है, तो शरीर में भी है इसलिये उसका नाम शारीर हो सकता है।

शङ्कर-स्वामी—जब परमात्मा शरीरसे बाहर भी है तो उसका यह नाम नहीं हो सकता, जिस प्रकार आकाश शरीरके बाहर भी है, पर उसको कोई शरीर नहीं कहता।

मण्डन मिश्र—यदि इस मन्त्रमें अन्तःकरण और जीवात्माका ही वर्णन है तो जड़ अन्तःकरणको भोक्ता (भोगने वाला) मानना पड़ेगा, क्योंकि उसमें लिखा है कि उनमेंसे एक स्वादु फलको खाता है और आपके विचारमें वह अन्तःकरण है जो जड़ है, पर इसमें कोई प्रमाण नहीं कि जड़ भोगता है।

शङ्कर-स्वामी—जिस प्रकार लोहा आगके साथ मिलनेसे जलाने वाला बन जाता है, यद्यपि वह स्वयं जलानेकी शक्ति नहीं रखता, इसी प्रकार जड़ अन्तःकरण भी चेतनके साथ मिलनेसे भोक्ता बन जाता है।

मण्डन मिश्र— ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके,
गुहां प्रविष्टौ परमे परार्द्धे।
छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति।
पञ्चाग्नयो ये च त्रिणाचिकेताः॥

अर्थात्—पुण्यलोकमें उत्तम स्थान (हृदय) के अन्दर गुफामें प्रविष्ट हुए दोनों ऋत (कर्मफल) के पीने वाले हैं। इन दोनों को ब्रह्मवेत्ता और पञ्चाग्नि विद्या के जानने वाले और त्रिणाचिकेत (जिन्होंने तीन वार नाचिकेत नामक अग्नि चयन किया है।) छाया और धूप बतलाते हैं। इस श्रुतिसे सिद्ध है कि जिस प्रकार धूप और छायामे भेद है, इसी प्रकार जीव और ईश्वर भी सर्वथा भिन्न-भिन्न हैं।

शङ्कर स्वामी—यह श्रुति भी व्यावहारिक भेद को सिद्ध करती है, इसका अभिप्राय यह नहीं कि भेद सच्चा है। सच्चा तो अभेद है, जो तत्त्वमसिसे प्रकट किया गया है और वह 'तत्त्वमसि" श्रुति इस श्रुतिकी बाधक है, क्योंकि इस श्रुतिमें अपूर्व (ना मालूम) अर्थात् जीव और ब्रह्मकी एकताके विषयमें बताया है, जिसके लिये श्रुतिकी आवश्यकता है—और 'ऋतं पिबन्तौ' श्रुतिमें भेद बतलाया है और वह अपूर्व नहीं, क्योंकि श्रुतिकी सहायताके विना भी समझमें आ सकता है, इसलिये श्रुतिका तात्पर्य भेद सिद्धिमें नहीं, किन्तु लोक-सिद्ध भेदका अनुवाद मात्र है।

मण्डन मिश्र—प्रत्यक्षादि प्रमाण भी भेद-श्रुतिकी पुष्टि करने वाले हैं। इसलिये भेद श्रुति प्रबल है और अभेद श्रुति पर किसी प्रमाणका मेल नहीं इसलिये वह दुर्बल है।

शङ्कर स्वामी—वेदोंकी प्रबलता किसी दूसरे प्रमाण के अधीन नहीं, किन्तु दूसरे प्रमाणोंका साथ मिल जाना श्रुतिको दुर्बल करता है, क्योंकि वह बात जो विना वेद समझ मे आ सकती है, वेद उसके प्रकट करने के लिये प्रकाश नहीं हुआ, वे बातें जो किसी दूसरे प्रमाणसे सिद्ध हो सकती हैं। वेदोंमें उनका कथन अनुवाद-मात्र समझा जाता है, वस्तुतः वेद उस बातके बताने के लिये प्रवृत्त



शङ्करके साथ मण्डनमिश्र और उभयभारतीका शास्त्रार्थ।

हुए हैं, जहां दूसरे प्रमाणोंकी पहुंच नहीं, इसलिये अभेद वेदका अभिप्रेत है भेद नहीं।

मण्डन मिश्र—तैत्तिरीयमें यह लिखा है,—

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्।

सोऽश्नुते सर्वान्कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता॥

अर्थात् सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्मको जो परम आकाश (हृदय) के अन्दर गुफामें स्थिर जानता है, वह सर्वज्ञ ब्रह्मके साथ सब कामनाओं को भोगता है। इसमें यह बताया गया है कि मुक्त जीव ब्रह्म के साथ उन सारी कामनाओं को भोगता है। इससे स्पष्ट सिद्ध है कि मुक्तिमें जीव और ब्रह्म अलग-अलग रहते हैं, इस लिये भेद ही सत्य है।

शङ्कर स्वामी—इसके यह अर्थ नहीं है कि ब्रह्मके साथ सारी कामनाओंको भोगता है। किन्तु इसका यह अभिप्राय है कि अविद्या का परदा दूर होनेसे ब्रह्मरूप होकर वह एक साथ उन सारी कामनाओंको भोगता है, जो पहले ही उसके अन्दर विद्यमान होती हैं, पर अविद्याके कारण वह न मालूम परदेके अन्दर छिपी हुई थीं।

मण्डन मिश्र—आत्मा वाअरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो,

मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः।

अर्थ—हे मैत्रेयि, श्रवण (सुनने) मनन (विचार करने) और निधिध्यासन (चित्तको वार वार उसमें लगाने) से आत्माको साक्षात् करना चाहिये। इस वचनमें जीवात्मा को साक्षात् करने वाला और परमात्मा को साक्षात्के योग्य बतलाया है, इस लिये भेद सत्य है।

शङ्कर स्वामी—यहां भी व्यावहारिक भेदको लेकर कर्म और कर्त्ता को प्रकट किया गया है, क्योंकि यदि भेदको सच्चा माना जाय तो अभेद

श्रुतिके साथ विरोध ठहरता है और अभेदमें वेदका असली तात्पर्य है, इसलिये यहां भी लोक-सिद्ध भेदका अनुवाद मात्र है।

मण्डन मिश्र—यदि जीवात्माका परमात्माके साथ अभेद हो तो वह मालूम होना चाहिये। पर अभेद मालूम नहीं देता, इसलिये अभेद नहीं है, इस अर्थापत्ति प्रमाणसे भेद सिद्ध होता है।

शङ्कर स्वामी—अन्धेरेमें घड़ा मालूम नहीं होता, इससे यह नहीं समझा जा सकता कि घड़ेका स्वरूप अन्धेरेमे नहीं है, क्योंकि अन्धेरेके दूर हो जाने पर वह स्पष्ट मालूम हो जाता है। इसी प्रकार अविद्यासे अभेद मालूम नहीं होता, तो भी यह नहीं कह सकते कि अभेद है ही नहीं, क्योंकि अविद्या का परदा उठ जाने पर अभेद स्पष्ट मालूम होता है।

शास्त्रार्थ देर तक होता रहा और दोनों वादियोंने अपने-अपने पक्षकी सिद्धिमें बहुतसे तर्क और प्रमाण उपस्थित किये। पर अन्तमे शङ्कराचार्यने मण्डन मिश्रको सब प्रकारसे निरुत्तर कर दिया। जब सरस्वतीको विश्वास हो गया कि उसका पति शास्त्रार्थमे पराजित हुआ है तो उसने दोनों महानुभावोंके आगे हाथ जोड़ कर कहा, महाराज, अब भिक्षाका समय आ गया है आप दोनों भिक्षा * के लिये पधारें। इन बचनोंसे मण्डन मिश्रने समझ लिया कि मैं शास्त्रार्थमें स्वामी शङ्कराचार्यका मुकाबला नहीं कर सका और सरस्वतीने मेरे विरुद्ध निर्णय दे दिया है! इस पर निर्णयके आगे इस विद्वान् ब्राह्मणने अपना सिर झुका दिया। सरस्वतीके इस निर्णय पर

---

* इत्थं यति क्षिति मतेरनुमोद्य युक्ति-
मालांच मण्डन गले मलिनामवेक्ष्य।
भिक्षार्थमुच्चलत मद्य युवामितो मा-
वाचष्ट तं पुनरुवाच यतीन्द्रमस्वा॥

मण्डन मिश्रने शास्त्रार्थ करना बन्द कर दिया और अब एक शिष्य की तरहसे अपने सन्देह दूर करनेके लिये उसने शङ्कर स्वामी से कहा,—"महाराज, मुझे इस पराजयसे कोई क्लेश नहीं, पर मुझे इस बातने सन्देहमें डाल दिया है कि आपने जैमिनि मुनिके वचनों का खण्डन क्यों कर दिया ? भला, भूत भविष्यत्के सारे वृत्तान्तोंको जानने वाला, सारे जगत्का भला चाहने वाला, वेदोंके प्रकाशका फैलाने वाला और तपका भण्डार, जैमिनि मुनि किस प्रकार झूठा साहित्य लिख सकता था ? शंकर स्वामीने उत्तरमें कहा कि, जैमिनि मुनिके कथनमें किसी प्रकारके संशय-विपर्ययका अवसर नहीं। यह हमारी ही भूल है कि हम अपनी अनभिज्ञताके कारणसे उनके हृदयके भावोंको नहीं समझ सकते।—मण्डनमिश्रने कहा कि यदि और विद्वानोंने उसके अभिप्रायको नहीं समझा तो आप ही प्रकट करें, जिससे मेरी शान्ति हो। शङ्कर स्वामीने उत्तर दिया। जैमिनि मुनि का यह अभिप्राय था कि लोग परमानन्द लाभ करें। पर इस ख्याल से कि साधारण लोग जगत्के धन्दोंमें फंसे हुए हैं, जब तक उनका अन्तःकरण शुद्ध न हो, वे पारमार्थिक ज्ञानके अधिकारी नहीं बन सकते, इस लिये उन्होंने धर्मकी व्याख्या की। क्योंकि धर्मके अनुष्ठानसे शुद्ध अन्तःकरण मिलता है, जिससे मनुष्य ब्रह्मज्ञानका अधिकारी बनता है, जैसा कि उपनिषद्में लिखा।

तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति
यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेन।

'ब्राह्मण उस परमात्माको वेदोंके अभ्यास, यज्ञ, दान, और विषयों से बच कर तप करनेसे जाननेकी इच्छा करते हैं।

इस श्रुतिमें धर्मके अंगोंको ब्रह्मज्ञानके उत्पन्न करने वाला बतलाया है, अतएव इस श्रुतिके सहारे ब्रह्मज्ञानका प्रथम साधन होनेके

कारण उसने कर्मोंका वर्णन किया है और ब्रह्मके वर्णनसे उदासीन रहा है। उसका यह अभिप्राय नहीं है कि परमात्मा नहीं, किन्तु वह यह समझता था कि धर्मके अनुष्ठानसे अन्तःकरण शुद्ध होगा और उसके कारणसे स्वयमेव ब्रह्म विद्याका प्रकाश हो जायगा इस लिये उसने केवल धर्मका वर्णन किया।

मण्डनमिश्रने पूछा जैमिनिके इस सूत्रका क्या अभिप्राय है,—

आम्नायस्य क्रियार्थत्वा दानर्थक्य मतदर्थानां।

वही वचन सार्थक है जिससे कोई कर्म सिद्ध होता है और जिन वचनोंसे कोई कर्म सिद्ध नहीं होता वे सबके सब निरर्थक है।

इस सूत्रसे स्पष्ट पाया जाता है कि सारे वेदका तात्पर्य कर्मका बतलाना है फिर आप ब्रह्मविद्याको कर्मसे असम्बद्ध किस तरह मानते हैं? शङ्कर स्वामीने उत्तर दिया कि सारा ही वेद परम्परासे परमेश्वरको प्रकट करता है, इस लिये कर्मोंका फल भी परम्परासे परमात्माकी ...मे है और इस सूत्रका अभिप्राय यह है कि कर्मोंके सम्बन्धमें जो अर्थवाद हैं, वे विधि और निषेधकी स्तुति और निन्दाके लिये हैं, उनका अपना कोई विशेष उद्देश्य नहीं। क्योंकि यह सूत्र कर्मकाण्डके सम्बन्धमें कहा गया है, ब्रह्म विद्याका विषय भिन्न है। अतएव इस सूत्रके अभिप्रायसे वे वाक्य निरर्थक नहीं समझे जाते, जो ब्रह्मविद्याके सम्बन्धमे होकर कर्मोंके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं रखते।

मण्डनमिश्रने पूछा कि जब सारा वेद परमेश्वरको ही प्रकट करता है, तो उसने कर्मोंको स्वयमेव फल देने वाला किस तरह बतलाया? इससे तो परमेश्वरका स्पष्ट खण्डन पाया जाता है। शङ्कराचार्यने उत्तर दिया। कणाद मतानुयायी मानते हैं, जो कर्म है उसका कर्ता अवश्य है, जैसे मन्दिर कार्य है तो राज इसका कर्ता है। इसी प्रकार यह जगत् भी कार्य है इस लिये इसका भी कोई चेतन कर्त्ता है और जिस

कारण मनुष्यमें जगत् रचनेकी शक्ति नहीं। इसलिये जगत्का कर्त्ता परमेश्वर है, इत्यादि अनुमान प्रमाणसे ही परमेश्वरके अस्तित्वमें प्रमाण दिया जा सकता है। वेद ईश्वरके अस्तित्वको सिद्ध करनेमें केवल अनुवाद मात्र ही हैं और जैमिनि मुनिका इस प्रकारके अनुमान के खण्डनसे यह अभिप्राय है कि परमात्माका ज्ञान वेदके बिना हो ही नहीं सकता। अनुमान उसको ठीक-ठीक नहीं बता सकता। और यही श्रुतिमें आया है :—

नावेदविन्मनुते तं बृहन्तम्।

अर्थात् वेदका जानने वाला उस महान् (परमात्मा) को नहीं समझ सका। सो इसी बातका ख्याल करके उन्होंने इन युक्तियोंका खण्डन किया है, जिससे साधारण जन परमेश्वरको सिद्ध करते हैं और इसी भ्रान्तिसे लोग उसको अनीश्वरवादी कहते है। पर उसके तात्पर्यको समझनेसे प्रतीत होता है कि न तो यह अनीश्वरवादी है और न ही उपनिषदोंके साथ उसका कुछ विरोध है। क्या यदि उसने ऐसी युक्तियोंका खण्डन किया, जो वास्तवमें वेदके सहारे बिना ईश्वरकी सिद्ध नहीं कर सकतीं तो उससे वह अनीश्वरवादी हो गया ? वह परमेश्वरके जानने वालोंमें श्रेष्ठ और सबसे उत्तम था। क्या उल्लूके कल्पित अन्धकारसे सूर्यका प्रकाश दूर हो जायगा ? कभी नहीं। इसी प्रकार अविद्वानोंसे कल्पित मिथ्या दोष जैमिनि मुनिको नास्तिक नहीं बना सकता। परमेश्वर पर श्रद्धा रखनेवालोंमें सबसे बढ़ कर श्रद्धावान् जैमिनि इस कलङ्कसे रहित हैं।

इसके बाद शङ्कर-स्वामीने कहा,—"इस जगत्का कोई कर्त्ता अवश्य है। कारण कि जैसे जगत्के घट-पटादि कार्य किसी कर्त्ताके द्वारा किये जाते हैं। यदि इनका कोई कर्त्ता न हो, तो ये कभी भी इस रूपमें सम्पन्न नहीं हो सकते। इसी प्रकारसे बिना कर्त्ताके सृष्टि

के कार्य भी यथावत् रूपसे सम्पन्न नहीं हो सकते। वेद और वेद वाक्योंके अस्तित्वको न मानने पर भी तर्क और युक्तिसे ईश्वर अनुमान हो सकता है।"

शङ्कर-स्वामीसे यह बात सुन कर भी मण्डनमिश्रका समस्त संदेह दूर नहीं हुआ। संशयापन्न होकर भी मन ही मनमें चिन्ता करने लगे। सभामें महामुनि जैमिनीके ही तुल्य एक मीमांसावित् महापण्डित उपस्थित थे। उन्होंने संशयापन्न मण्डनको सम्बोधन कर कहा,—"मण्डन, तुमने इनको पहचाना नहीं है। ये कोई साधारण व्यक्ति नहीं हैं। ये असाधारण महापुरुष हैं। इन्होंने सत्ययुगमें कपिलके रूपमे अवतीर्ण होकर शांख्य शास्त्र, त्रेतामें दत्तात्रायके रूपमें योगशास्त्र, द्वापरमे वेदव्यासके रूपमे वेदान्तदर्शनका प्रचार किया था। तुम इनकी शरण लो। ये स्वयं तुम्हारे ऊपर दयार्द्र होकर पधारे हैं।" वृद्ध पण्डितकी बातको सुन कर मण्डनमिश्रने शङ्कर-[illegible]की पद-धूलि मस्तक पर लगाई और अपनी पराजय मुक्त [illegible] स्वीकार की तथा संन्यासआश्रममें दीक्षित करने की प्रार्थना की।



द्वादश-परिच्छेद ।

सरस्वतीसे शास्त्रार्थ ।

शङ्कर और मण्डनमिश्रने शास्त्रार्थमें प्रवृत्त होनेसे पहले इस बातकी प्रतिज्ञा एक दूसरेसे की थी कि जो शास्त्रार्थमें पराजित होगा, वह विजितका शिष्यत्त्व स्वीकार करेगा और अपने वर्तमान आश्रम का परित्याग कर देगा । सुतरां मण्डनमिश्रने उनसे पराजित होकर उनका शिष्यत्व ग्रहण करनेकी अभिलाषा प्रकट की । मण्डन मिश्रकी पत्नी महीयसी देवी सरस्वती, इस दृश्यको देख कर बहुत दुखी हुई । परन्तु उपाय क्या था । क्योंकि पतिदेव प्रतिज्ञा-पाशमें आबद्ध थे । उभय-भारतीकी विद्वत्ताका उल्लेख पहले परिच्छेदोंमें विशद रूप से किया जा चुका है । सुतरां उभय-भारतीने शङ्कर-स्वामीको सम्बो-धन कर कहा,—"महात्मन्, आपने यद्यपि मेरे पतिदेवको शास्त्रार्थमें पराजित कर दिया है, तथापि शास्त्रानुमोदित रीतिसे अभी वे सर्वथा पराजित नहीं हुए । क्योंकि मैं उनकी अर्द्धाङ्गिनी हूं । आप जब तक मुझे भी परास्त न कर दें, तब तक मेरे पतिदेव पूर्णतया पराजित नहीं समझे जा सकते । उन्हे संन्यास-धर्ममें दीक्षित करनेसे पहले मुझसे आपको शास्त्रार्थ करना होगा । यदि मैं उनकी अर्द्धा-ङ्गिनी भी परास्त हो गई, तो वे सहर्ष आपका शिष्यत्व स्वीकार कर सकेंगे, नहीं तो वे अपनी प्रतिज्ञाका पालन करनेको वाध्य नहीं हैं ।"* देवी उभय भारतीकी बात सुन कर शंकर-स्वामी बड़े चकित हुए और

---

* अपितु त्वयाऽद्य न समग्रजितः प्रथिताग्रणीमर्म पातयं दहम् ।

बोले,—"देवी, तुम अबला हो, एक भले घरकी बधू हो, शास्त्रार्थ करना तुम्हारा कर्त्तव्य नहीं है। तुम्हारे स्वामी पराजित हो गये हैं। तुमने ही तो स्वयं इसका निर्णय किया है। यदि मेरी बात ठीक न हो तो तुम स्वयं अपने पतिसे पूछ देखो कि वे पराजित हुए हैं या नहीं ? यदि वे अब भी कह देंगे कि वे पराजित नहीं हुए, तो मैं उनकी बातको स्वीकार कर लूंगा और एक बात है—तुम स्त्री हो। स्त्रियोंके साथ शास्त्रार्थ करना धर्मानुमोदित नहीं है।" शङ्कर-स्वामी की बात सुन कर उभय भारतीने कहा,—"नहीं महात्मन्, यह आपका भ्रम है। मेरे पतिदेव तो अवश्य पराजित हो गये हैं, मैं इस बातको स्वीकार करती हूं, परन्तु जब तक आप मुझे भी शास्त्रार्थमें पराजित न कर दें, तब तक वे सम्पूर्ण रूपसे पराजित नहीं समझे जा सकते। रही स्त्रियोंके साथ शास्त्र-चर्चा न करनेकी बात, सो भी आपका भ्रम है। क्योंकि गार्गी की याज्ञवल्क्य मुनिके साथ, जनक की सुलभाके साथ शास्त्र-चर्चा हुई थी।" * सरस्वती—उभय-भारती की युक्ति और तर्कपूर्ण बात सुन कर शङ्कर-स्वामीने शास्त्रार्थ करनेकी स्वीकृति दे दी और कहा कि तुम शास्त्रार्थ आरम्भ करो। तब देवी सरस्वतीने अनेक तर्क-वितर्कोंका समावेश कर बड़ी प्रगल्भताके साथ शास्त्रार्थ करना आरम्भ किया। सभास्थित दर्शक और श्रोता-गण सरस्वतीके अगाध पाण्डित्यको देख कर चकित रह गये। शङ्कर

वपुरर्धमस्य नजिता मतिमेन्नपि मां विजित्य कुरु शिष्यमिमम् ॥

—'शङ्कर-दिग्विजय'

(श्रीविद्यारण्य विरचित।)

* अतएव गार्ग्यो विधया कलहं सह याज्ञवल्क्य मुनि राड करोत्।
जनकस्तथा सुलभा याज्ञवल्कया किमसौ भवन्ति न यशो निधयः॥

'श्रीशङ्कर-दिग्विजय'

स्वामी भी बड़े चकित हुए। अन्तमें कई दिनके शास्त्रार्थके बाद देवी सरस्वती भी परास्त हो गई। तब सरस्वतीने बड़ी चतुरताके साथ शङ्कर स्वामीको पराजित करनेके लिये कामशास्त्रकी चर्चा आरम्भ की। क्योंकि शङ्कर स्वामी तो बाल्यावस्थामें ही संन्यासी हो गये थे, इस लिये वे इस शास्त्रसे अनभिज्ञ थे। इस पर शङ्कर स्वामीने देवी सरस्वतीसे एक वर्षका समय मांगा, उदारमना महीयसी सरस्वती ने इस बातको स्वीकार कर लिया। तब शङ्करने शिष्यों सहित वहांसे कामशास्त्रके अध्ययनके लिये प्रस्थान किया।

शङ्करने अति तरुण वयसमें ही संन्यास और ब्रह्मचर्यका अवलम्बन किया था। अतः कामशास्त्रमें उनकी कुछ भी अभिज्ञता नहीं थी। क्योंकि बिना गृहस्थ धर्म-पालनके इसके अध्ययनका सुयोग कैसे मिलता? शङ्करने मण्डनमिश्रके घरसे चल कर कामशास्त्र सीखनेका विचार स्थिर किया। परन्तु बिना स्त्री-संसर्गके कामशास्त्र के रहस्यको जानना असम्भव व्यापार है। यदि सुन्दरी, सुरसिका बुद्धिमती किसी रमणीका कुछ दिन भी संसर्ग प्राप्त किया जाय, तो कामशास्त्रकी अभिज्ञता प्राप्त हो सकती है। किसी अध्यापकसे कामशास्त्र पढ़ कर उसमें पारङ्गत होना असम्भव है। केवल अध्ययन मात्रसे कामशास्त्रके निगूढ़ रहस्योंका उद्भेद करना महा कठिन काम था। किन्तु किसी ऐसी रमणीका सम्पर्क-सुयोग कैसे प्राप्त हो सकता था? क्योंकि शङ्कर तो बाल-ब्रह्मचारी संन्यासी थे। रमणी-संसर्ग उनके लिये नितान्त निषिद्ध एवं स्वभाव और धर्मके विरुद्ध था। हां, शास्त्र विधिके अनुसार किसी रमणीका पाणिग्रहण किया जाय, तो काम-शास्त्रकी अभिज्ञता प्राप्त होसकती थी। किन्तु परम पवित्र और चिर आचरित संन्यास धर्म और जीवनके श्रेष्ठ उद्देश्य धर्मप्रचार और धर्म-साधनाको जलांजलि देकर, सामान्य संसार-भोगी कीट-पतङ्गों

की तरहसे विवाह-वन्धनमें आवद्ध होना भी तो जीवनका उद्देश्य नहीं था। शङ्कर इसी प्रकारकी चिन्ताओंमें लीन हो गये। उन्हें कोई भी प्रशस्त मार्ग दृष्टिगोचर नहीं होता था।

इसी प्रकारकी चिन्ताओंसे व्याकुल होकर शङ्कर स्वामी अनेक देशों और स्थानोंमें भ्रमण करने लगे। अन्तमें अनेक दिनों के वाद एक दिन अमरदेव नामक राजा की राजधानी में उपस्थित हुए। राजा जैसा बुद्धिसम्पन्न था, वैसा ही भोगी और विलासी भी था। इसके राज्यमें आकर एक पहाड़ी पर शङ्करने अपने शिष्यों सहित डेरा डाला। उस पर्वतके चारों ओर घना जङ्गल था। इस लिये सर्व-साधारण लोग सरलतासे इनको वहां नहीं देख सकते थे। शङ्कर उसी एकान्त-निभृत स्थानमें रह कर आत्मचिन्तन और आत्मध्यान में कालयापन करने लगे। परन्तु वे सदा इस वात की चिन्ता करते रहते थे—कि कामशास्त्र की शिक्षा का कहीं सुयोग प्राप्त हो और उसमें पारिदर्शिता प्राप्त कर मण्डन-पत्नी उभय-भारतीको शास्त्रार्थमें पराजित किया जा सके।

इसी प्रकारसे अनेक दिन व्यतीत हो गये। अकस्मात् ऐसे ही एक दिन अमरु राजाकी मृत्यु हो गयी। राजाके देहसे प्राणवायु बहिर्गत हो गये। शङ्करको भी इस वातका पता लगा। वे सोचने लगे कि यह तो अच्छा सुयोग है। शङ्करने सुना था कि अमरु राजाकी पत्नी बड़ी रूपवती और कामशास्त्रकी पण्डिता है। शङ्कर सोचने लगे कि यदि उक्त राजमहिषीके साथ कुछ दिन संसर्ग हो तो कामशास्त्रमें विशेष व्युत्पत्ति लाभ की जा सकती है। अन्तमें विचार स्थिर करके शङ्कर अपने आत्माको, अमरु राजाके मृत देहमें संक्रामित करनेकी चेष्टा करने लगे। इसके पश्चात् बद्ध पद्मासन होकर वे समाधिस्थ हुए और विक्षिप्त चित्तको संयत और सामाहित करके सब इन्द्रियों के साथ

आत्माको निविष्ट किया। इसी समय अमरु राजाका प्राणशून्य देह, भस्म करनेके लिये श्मशानमें लाया गया। राज-पत्नी और आत्मीय-गण सजाई जाने वाली चिताके पास खड़े होकर रुदन करने लगे।

थोड़ी देरमें राजाके प्राणशून्य शरीरका भस्म करनेके लिये चिता तैयार हो गयी। तव राजाके देहको चिता पर रखनेके लिये राज-कर्मचारी गण अर्थी परसे उठाने लगे। शोकाकुला राजमहिषी स्वामी के शरीरको चिपट कर घोर आर्तनाद करने लगी। उधर पूर्णरूपसे समाधिस्थ होकर शङ्कर अपनी आत्माको मृत-राजाके देहमें संक्रामित करनेकी चेष्टा करने लगे। योगमायासे समाधिस्थ होने पर शङ्करको जव यह पूर्ण निश्चय हो गया कि मैं अपने जीवात्माको राजाके प्राण-शून्य देहमें संक्रामित कर सकूंगा, तो उन्होंने अपने शिष्योंको सम्बो-धन कर कहा,—"वत्स गण, तुम लोग ध्यानपूर्वक सुनो। मैं कुछ समयके लिये स्थानान्तरमे जाता हूं। किन्तु अपनी प्राण-शून्य देह तुम लोगोंके पास रखे जाता हूं। केवल प्राण और इन्द्रिय-ग्रामके साथ वहां अवस्थिति रहेगी। जव तक मैं लौट कर अपने निर्जीव देहमें प्रवेश न करूं, तव तक तुम लोगोंको वड़ी सावधानी और सतर्कता के साथ मेरे इस प्राण-शून्य देहकी रक्षा करनी होगी। खूब सावधान रहना, किसी द्वारा यह देह विनष्ट न होने पाये। यदि कोई मनुष्य या राजकर्मचारी मेरे देहकी खोज-खवर लेता हुआ यहां आये तो तुम लोग वहुत सतर्कतासे मेरे देहकी रक्षा करना। मैं तुम लोगोंको एक श्लोकावलि वताये जाता हूं। * तुम लोग जिस समय उसका पाठ

---

* मूढ़ जहीहि कि धनागम तृष्णां कुरुतनुबुद्धि मनसु वितृष्णाम।
यल्लभसे निज कर्मोपात्तं वित्तं तेन विनोदय चित्तम्॥ १॥
का तव कान्ता कस्ते पुत्रः संसारोऽयमतीव विचित्रः।
कस्य त्वं वा कुत आयात स्तत्वं चिन्तय तदिदं भ्रातः॥२॥

करोगे - मैं उस श्लोकावलिको सुन सकूंगा। उसी समय मेरे देहमें पुनः प्राणोंका सञ्चार होगा।" इस प्रकारसे शिष्योंको समझा कर शङ्कर स्वामीने वे श्लोक सुनाये। आज भी 'मोह-मुद्गर' के नामसे वे श्लोक संसारमें प्रसिद्ध हैं। शङ्करके बाद शताब्दियों तक हिन्दू इनको नित्य-नैमित्तिक समझ कर पाठ करते रहे हैं। किन्तु समयके परिवर्तन और पश्चिमीय शिक्षाके प्रभावसे आज इनका प्रचार बहुत कम हो गया है।

इस प्रकारसे शिष्योंको समझा कर शङ्करने अपने प्राणवायु को मृत-राजा अमरुके देहमें संक्रामित किया। शङ्करके जीवात्माके प्रवेश से मृत अमरु राजाका देह सञ्जीवित हो उठा। निद्रा भङ्ग होने पर जैसे कोई उठ बैठता है, ठीक उसी प्रकारसे अमरु राजा उठ बैठे। राजाने अपनेको श्मशानमें राजकर्मचारियों एवं आत्मीय गणों द्वारा घिरा हुआ देख कर उनसे आश्चर्य-चकित होकर पूछा कि मैं यहां कैसे और किस लिये लाया गया हूं ?

मा कुरु धनजन यौवन गर्व्वं हरति निमेषात् काल सर्व्वम् ।
मायामयमिदमखिलं हित्वा ब्रह्मपद प्रविशन्ते विदित्वा ॥ ३ ॥
नलिनी दलगत जलमति तरलं तद्वज्जीवन मतिशय चपलम् ।
क्षणमपि सज्जन सङ्गतिरेका भवति भवार्णव तरणे नौका ॥ ४ ॥
यावज्जननं तावन्मरणं तावज्जननी-जठरे शयनं ।
इति संसारे स्फुटतर दोषः कथमिह मानव तव सन्तोष ॥ ५ ॥
दिन यामिन्यौ सायं प्रातः शिशिर वसन्तौ पुनरायातः ।
काल क्रीडति गच्छत्यायुस्तदपि नः मुञ्चत्याशा वायु ॥ ६ ॥
अङ्गं गलितं पलितं मुण्डं दन्त विहीनं जातं तुण्डम् ।
करधृत कम्पित शोभित दन्तं तदपि न मुञ्चत्याशा भाण्डम् ॥७॥
सुरवर मन्दिर तरुतल वासः शय्या भूतलमजिनं वास ।
सर्व परिग्रह भोगत्यागः कस्य सुखं नः करोति विरागः ॥ ८ ॥

अमरु राजाकी अवस्था देख और प्रश्न सुन कर उपस्थित लोग भीत एवं चकित हुए। सब लोग एक दूसरेका मुंह देखते हुए इस अपूर्व और अद्भुत काण्डका मूक-भावसे कारण पूछने लगे। वे सरलतासे राजाके प्रश्न का उत्तर न दे सके। तब वार-वार व्याकुल-कण्ठसे राजा पूछने लगे, कि मुझे क्यों श्मशानमें लाया गया है? जब किसीको राजाके प्रश्नका उत्तर देने का साहस न हुआ, तब रानी ने कहा,—"देव, आप पीड़ित अवस्थामें संज्ञाहीन हो गये थे। आप को मृत समझ कर ही यहां लाया गया है। परन्तु यह परम सौभाग्य की बात है कि आप ईश्वर की कृपासे उस महानिद्रासे फिर जाग उठे। हमें तो किसीको भी आशा नहीं थी कि आप फिर जीवन लाभ करेंगे।" इस प्रकारसे कह कर रानी अश्रु विसर्जन करती हुई राजा

शत्रौ मित्रे पुत्रे वान्धो मा कुरु यत्नं विग्रह सन्धौ।
भव समचित्तः सर्व्वत्र त्वं वान्छस्यचिराद् यदि विष्णुम् ॥ ९ ॥
अष्टाकुलाचलाः सप्तसमुद्राः ब्रह्मपुरन्दर दिनकर रुद्राः।
न त्वं नाहं नायं लोकस्तदपि किमर्थं क्रियते शोक ॥ १० ॥
त्वयि मयि चान्यत्रैको विष्णुर्व्यर्थं कुप्यसि मय्य सहिष्णुः।
सर्वं पश्यत्वन्यात्मानं सर्व्वत्रोत्सृज भेद ज्ञानम् ॥ ११ ॥
वालस्तावत् क्रीड़ासक्त स्तरुणस्तावत् तरुणीरक्त।
वृद्धास्तावच्चिन्ता मग्नः परमे ब्रह्मणि कोऽपि न लग्नः ॥ १२ ॥
अर्थमनर्थं भावय नित्यं नास्ति ततः सुखलेश सत्यम्।
पुत्रादपि धनभाजां भीतिः सर्व्वत्रैषा कथिता नीतिः ॥ १३ ॥
यावद्वित्तोपार्जनशक्त स्तावन्निज परिवारैरक्तः।
तदनुच जरया जर्ज्जर देहे वार्त्ता कोपि न पृच्छति गेहे ॥ १४ ॥
कामं क्रोधं लोभं मोहं, त्यक्त्वात्मानं पश्यति कोऽहम्।
आत्मज्ञान विहीना मूढास्ते पतन्ति नरके मूढ़ाः ॥ १५ ॥

के पावों पर गिर पड़ी । राजाने सादर उसको उठा लिया और सब लोगोंको घर चलनेकी अनुमति प्रदान की ।

मृत राजा पुनः जीवन लाभ कर घर लौट आये । आनन्द कोलाहलसे राजभवन मुखरित हो उठा । राजधानीमें नाना प्रकारके आनन्द-समारोह होने लगे । सब लोगोंने यही समझा कि विशेष दैवबलसे राजाने पुनर्जीवन प्राप्त किया है । कोई कहने लगे कि राजाकी प्रकृत मृत्यु हुई ही नहीं थी । केवल अत्यन्त पीड़ाके कारण संज्ञाहीन होकर अचेत हुए थे । पुनः चैतन्य लाभ कर स्वस्थ हुए हैं । किन्तु असली कारणका किसीको भी पता नहीं लगा ।

जो पाठक संस्कृत नहीं जानते, उनके लिये इन श्लोकोंका भावार्थ दिया जाता है ।

रे मूढ, धनार्जनकी तृष्णाको परित्याग कर—शरीर, बुद्धि और मनकी वितृष्णाका भाव प्रदर्शन कर । अपने कर्म-फलसे जो तुझे प्राप्त होता है, उसी से सन्तोष कर । कौन स्त्री, कौन पुत्र ? इस संसारका व्यापार अत्यन्त विचित्र है । हे भ्रातः, तू कौन है, और कहांसे आया है, कभी इस बात पर विचार किया है ? धन-जन और यौवनके गर्वको परित्याग कर । निमिष मात्रमें इनका लोप हो सकता है । मायामय इस जगत्को त्याग कर परब्रह्म परमात्माके पाद-पद्मों पर अपनेको न्योछावर कर । पद्मपत्र स्थित जलकी तरह से यह जीवन अतीव चञ्चल है । साधु-संग ही केवल मात्र संसार-सागरसे पार उतरनेकी नौका है । जन्मके बाद मृत्यु, मृत्युके बाद फिर जननी-जठर माताके गर्भमें प्रवेश करना पड़ता है । रात-दिन संसारमें इसीकी पुनरावृत्ति हो रही है । अतएव हे मनुष्य, इस संसारमें फिर तेरे लिये कौनसी वस्तु है, जिससे सन्तोष हो ? दिन जाता है, रात्रि आती है । सन्ध्या समाप्त होती है, प्रातः होता है । शिशिर और वसन्त ऋतु पुनः पुनः आती हैं और चली जाती हैं । काल इसी प्रकार क्रीड़ा करता है । जीवनकी परमायु दिन पर दिन कम होती

शङ्कर इस प्रकारसे अपने आत्माको मृत अमरु राजाके देह में संक्रामित करके राज सुख-उपभोग करने लगे। ऐसी ही अवस्थामें गुणवती और रूपवती रानीका संसर्ग लाभ कर कामशास्त्रमें शङ्करने विशेष व्युत्पत्ति लाभ की। किन्तु इस प्रकारसे राजसुख भोग कर भी उनकी आत्मा संसारके सुख-भोगोंमे आसक्त नहीं हुई। वे उसी महापुरुष शङ्कर रूपसे अधिष्ठान करने लगे। उनकी बहिरिन्द्रिय-राज-सुख और रानीका सहवास सुखभोग करने लगीं, परन्तु पद्मपत्रके जल की तरहसे शङ्करका विशुद्ध आत्मा सम्पूर्ण रूपसे पवित्र और निर्मल ही रहा। बल्कि विशुद्ध मनके साथ संश्लिष्ट होकर राजाके देहने परम पवित्र और समुज्ज्वल भाव धारण किया। इस विचित्र मूर्तिको देख कर सभी विस्मयाविष्ट होते। यहां तक कि पुर-महिलायें और स्वयं रानी तक राजाकी देहकी इस विलक्षणताको देख कर आश्चर्यान्वित और विमुग्ध होती।

जाती है। किन्तु आशा रूपी वायुके झोकोंका कहीं भी विराम नहीं! शरीर गल जाता है, शिर सफेद होता है, मुख दन्त विहीन हो जाता है, हाथ पाव कांपने लगते हैं, यहां तक कि लाठी पकड़ कर भी नहीं चल सकता। तथापि आशा भ्रान्ति परित्यक्त नहीं होती।

देव-मन्दिरके भीतर अथवा वृक्षके नीचे अवस्थिति, भूमि पर शय्या, मृगचर्म परिधान और सब प्रकारके परिग्रह और भोग-सुखका परित्याग भला इस प्रकारके वैराग्य पर किसकी प्रीति न होगी? शत्रु, मित्र, पुत्र अथवा बन्धु उसके लिये सभी बराबर हैं। सभी समान प्रीति करते हैं। उसके लिये कोई भला-बुरा नहीं। विग्रह या सन्धि समान है। हे मनुष्य, यदि तू विष्णु पद प्राप्त करना चाहता है तो तू सर्वत्र और सब भूतों पर समान दृष्टि रख।

अष्ट कुलाचल, सप्त समुद्र, ब्रह्मा, देवराज, इन्द्र, दिवाकर, रुद्रदेव, तू मैं और ये सब लोग किसीका किसीके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। इसलिये हे

ऐसी अवस्थामें भी शङ्कर समय-समय पर अति उच्च ज्ञान वैराग्य पूर्ण श्लोक अमरु राजाके मुखसे परित्यक्त करा देते थे। जो भी इन श्लोकोंको सुनता, विमोहित हो जाता और सोचता कि यह कायाकल्प कैसे हो गया ? अमरु राजा विद्वान् और बुद्धिमान् था, परन्तु उसमें ऐसे भावपूर्ण भक्ति ज्ञानमय श्लोक रचना करनेकी शक्ति कभी नहीं देखी गयी थी। ऐसी अद्भुत अमानुषिक शक्ति कहांसे कैसे प्राप्त हुई ? इस प्रकारसे विचार कर सभी लोग विशेष चिन्तित हुए। राजा के मन्त्री और पण्डितगण अमरु राजाकी अद्भुत शक्तिको नाना प्रकारसे जल्पना-कल्पना करने और आलोचना-प्रत्यालोचना करने लगे, परन्तु असली कारण किसीको भी मालूम नहीं हुआ।

मनुष्य, तू किसके लिये शोक करता है। संसारकी सभी वस्तुओंमें भगवान्का वास है। अत: असहिष्णु होकर मेरे ऊपर किस लिये कोप करता है ? आत्मा आत्मा सब एक हैं। किसीमें कोई भेदभाव नहीं। यह भेदज्ञान मूढ़ता है।

बालक क्रीड़ामें ही आसक्त रहकर दिन यापन करता है, तरुण, तरुणीमें अनुरक्त रहता है, वृद्ध केवल चिन्तामें ही दिन व्यतीत करता है। पर ब्रह्म भगवान्का चिन्तन करनेका किसीको भी समय नहीं है। अर्थ नित्य अनर्थ स्वरूप है। इसमें सुखका लेशमात्र भी नहीं। क्योंकि धनवान्, पुत्र तक से भयभीत रहता है। जब तक तू अर्थोपार्जन करता है, तब तक तेरा परिवार तेरा अनुरक्त है। किन्तु जब तू जराजीर्ण होकर अर्थोपार्जन करनेमें अक्षम हो जायगा, तब तेरी कोई खैर-खबर भी नहीं पूछेगा।

काम, क्रोध, लोभ, मोह परित्याग कर तू अपने अन्तरात्मासे पूछ कि 'मैं कौन हूं ?' आत्मज्ञान विहीन मूढ ही नरकमें निवास करते हैं।

उपरोक्त सब श्लोकों द्वारा, शंकरने अपने शिष्योंको उपदेश दिया जिससे कि, उनका विवेक उदय हो। यदि इस जाग्रति-मन्त्रसे भी विवेक उदय न हो तो फिर नहीं समझा जा सकता कि मोह-मायाके पाशसे कैसे मुक्त हो सकता है ?

इधर रानी और आत्मीयवर्ग भी इस अद्भुत भावको देख कर उत्कण्ठित हो उठे। वे नाना स्थानोंसे विख्यात दैवज्ञ और गूढ़ मन्त्र पारदर्शी पण्डितोंको गोप्यरूपसे लाकर यथार्थ कारण जाननेकी चेष्टा करने लगे। परन्तु उन मन्त्रशास्त्रियोंने अनेक प्रकारसे गणित फलित और देवानुष्ठान करके भी यथार्थ कारण का पता न पाया। अन्तमें अकस्मात् एक दिन एक संन्यासीका आगमन हुआ। वह योगमायाके उस महत्वको जानता था कि एक जीवात्मा दूसरेके देहमें कैसे संक्रामित हो सकता है। उसने अमरु राजाकी भाव-भंगिको देखते ही ताड़ लिया कि अवश्य ही अमरु राजाके देहमें किसी महापुरुषकी आत्मा संक्रमित हुआ है। संन्यासीने इस गुप्त रहस्यकी चर्चा राजाके मन्त्रियों से की। साथ ही यह भी कहा राजाके कि देहसे इस भौतिक आत्माको निकालना बहुत आवश्यक है। नहीं तो विषम विपद्‌की सम्भावना है।

संन्यासीकी बातको सुन कर राजाके आत्मीय गण विशेष चिन्तित और उत्कण्ठित हुए। प्रधानमन्त्रीने और मंत्रियों से परामश कर महारानीसे हाथ जोड़ कर कहा,—"माता, आप विशेष बुद्धिमती और गम्भीर बुद्धि सम्पन्न हैं। आपने भी राजाकी भाव-भंगि देख कर अनुमान किया होगा कि, राजाकी देहमें महाराज अमरु की आत्मा अब नहीं है। उनके प्राणशून्य देहमें किसी महापुरुषके जीवात्माने प्रवेश किया है। समय-समय पर जो राजाके मुखसे ज्ञान-चर्चा होती है, उससे कभी भी यह प्रतीत नहीं होता कि वास्तवमें यह हमारे ही महाराज हैं। हम लोगोंकी सम्मतिमें तो अवश्य ही कोई योगीराज देहमें प्रवेश कर राजसुख भोग रहा है। आपने अपनी तीक्ष्ण बुद्धिसे पहले ही इस बातको समझ लिया होगा। इसके अति-रिक्त राज-भवनमें जो संन्यासी महात्मा पधारे हैं, उनका भी यही कहना है कि यह प्रकृत अमरु-राजाका आत्मा नहीं है।"

राजमन्त्रीकी बात सुन कर राजरानी बहुत क्षुब्ध-चकित और उत्कण्ठित होकर पूछने लगीं कि,—"तब फिर अब उपाय क्या है? मुझे भी ऐसा ही भ्रम होता है। यदि संन्यासीकी बात ठीक है तो उनसे ही कोई उपाय पूछा जाय।"

राजमन्त्रीने अन्तःपुरसे बाहर आकर संन्यासीसे भेंट की और उपाय पूछा। संन्यासीने उद्धारका उपाय बताते हुए कहा,—"राज्यके समस्त गुप्त स्थानोंमें खूब खोज-तलाश कराइये कि कहीं किसी साधु महात्माका कोई प्राण-शून्य देह तो नहीं पडा है। यदि कहीं कोई ऐसा देह मिले तो उसे जलानेका आयोजन करना चाहिये। ऐसा करने से उस महात्माके प्राणवायु अपसारित होकर स्वयं उस स्थानको चले जांयगे।"

ऐसा ही किया गया। अन्तमे शङ्करके देहका पता लगा कर राज-कर्मचारी वहा पहुंचे और शङ्करके शिष्योंने उन श्लोकोंका उच्चध्वनिसे उच्चारण करना आरम्भ किया। रक्षित संज्ञाहीन शङ्करके देहमें शङ्कर का आविर्भाव हुआ और उधर राजभवनमें अमरु राजाकी पुन. मृत्यु संघटित हुई *

---

* पाश्चात्य शिक्षा और सभ्यताने जिनकी आंखोंको चौंधिया दिया है, वे आत्माके देह-प्रवेशकी बातको नितान्त मिथ्या और निरी गप्प समझते होंगे। किन्तु जो आध्यात्मिक शक्तिके क्रिया-कलापोंको जानते हैं; जिनकी तीव्र बुद्धिने योगदर्शनको, यथार्थ रूपसे हृदयंगम कर लिया है, वे इस व्यापारको कभी भी मिथ्या नहीं समझ सकते। एक देहसे दूसरे देहमें आत्मा का संक्रमण होना—भौतिक व्यापार है। इसे मिथ्या और असम्भव समझने वाले योगके वास्तविक मर्मको हो नहीं समझते। भूत-प्रेत-ग्रस्त अनेक पुरुषोंको आज भी बहुत बड़ी संख्यामें देखा ,जाता है। यह भौतिक-व्यापार आत्माके संक्रमणके अतिरिक्त और क्या है? अन्तर केवल इतना हो है कि

शङ्करने यथासमय अपने देहमें प्रवेश कर मण्डनमिश्रके यहां प्रत्यागमन किया । उभयभारती और शङ्करका शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ । अन्तमें शङ्करने मण्डन-पत्नी देवी उभयभारती-सरस्वतीको शास्त्रार्थमें

योगी गण जीवितावस्थामें ही इतनी क्षमताको प्राप्त कर लेते हैं । योग-साधनाके अपूर्व फल और अष्टसिद्धिके निगूढ़ तत्वको आज भी अनेक भारतवासी जानते हैं । वे इस आत्म-संक्रमण व्यापारको कभी मिथ्या और असम्भव नहीं समझ कर इसकी उपेक्षा नहीं करते । किन्तु वे पुराने दिन चले गये । हिन्दूजाति पतनकी ओर अग्रसर हो रही है । योग-सिद्धि जैसी बहुमूल्य वस्तुका परित्याग करती जा रही है । उसकी साधनाका आधार नष्ट होता जाता है । आध्यात्मिक शक्तिका अनुशीलन भी नहीं होता—फिर विकास कहांसे हो ? ऐसी दशामें उपरोक्त योग-क्रियाको असम्भव समझना कोई आश्चर्यकी वात नहीं है । परन्तु जिन पश्चिमीय विद्वानोंकी शिक्षा-दीक्षा से भारतवर्षमें यह कुफल उत्पन्न हुआ है, वे सत्यताभिमानी लोग स्वयं इस क्रियाका विश्लेपण कर रहे हैं । कई पश्चिमीय दार्शनिकोंने इसकी सत्यता और सारवत्ताको स्वीकार किया है । अभिमरण 'मिस्मरिज्म' और प्रेततत्व 'स्प्रचुलिज्म' प्रभृति अध्यात्म-जगत्के व्यापारोंको यूरोपके वैज्ञानिकों तकने विज्ञान-सम्मत मान लिया है । प्रसिद्ध दार्शनिक वालेशने इन प्रयोगोंको विज्ञानकी कसौटी पर कस कर ठीक वताया है । इसके सिवा कविकुल चूड़ामणि सेक्सपीयरने एक जगह लिखा है,— There are more things on Eearth Hararıso than your philosphy can explain, यह बात केवल कविकी कल्पना नहीं है । ससारमें अनेक वस्तुयें विद्यमान हैं, जो हमारी सीमा-वद्ध बुद्धिमें नहीं आ सकतीं । ऐसी दशामें न समझ सकनेके कारण अध्यात्म शक्तिको मिथ्या औरअसम्भव वताना मूर्खता मात्र है । सत्य की उपलब्धि स्वयं अपनी बुद्धिको हीहो सकती है । युक्ति तर्ककी यह सामग्री नहीं है । अतः इस विषयमें अधिक तर्कऔर युक्तियोंकाआविर्भाव करना वृथा है । जैसी जिसकी मति-गति है, साधना-शक्ति भी वैसी हीउपलब्ध होती है ।

पूर्णरूपसे परास्त कर दिया। तब दोनों पति-पत्नीने मस्तक झुकाकर शङ्करका शिष्यत्व स्वीकार किया।

शास्त्रार्थके अन्तमे संन्यासधर्मको लेकर बहुत वितण्डावाद हुआ। शङ्करके प्रतिपक्षी मण्डनमिश्रका कहना था कि कलिमें संन्यास धर्म संगत और युक्तियुक्त शास्त्रोक्त होने पर भी वर्णाश्रम धर्मको दुर्बल कर देगा। शङ्करने युक्ति और तर्क प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध किया कि अधिकारीके लिये सन्यास सदा विधेय है और अनधिकारीके लिये त्याज्य है।

अन्तमें मण्डनमिश्रने शङ्करका शिष्यत्व स्वीकार कर लिया और उनके मतका अवलम्बन कर उनके ही सिद्धान्त विशुद्धाद्वैतका प्रचार करना आरम्भ किया। शङ्कर भी मण्डनमिश्र जैसे प्रकाण्ड पण्डितको शिष्य रूपमें पाकर भारतसे बौद्ध-मतको निताड़ित करनेमें बहुत कुछ सफलकाम हुए। क्योंकि मण्डन जैसा सुतार्किक और विद्वान् उस समय भारतमें सिवा शङ्करके और कोई नहीं था। अनेक लोगोंका कहना है कि मण्डन-मिश्र वाचस्पति मिश्रके नामसे विख्यात थे। स्मार्त और वेदान्त टीकाकारके नामसे भी उनकी प्रख्याति थी।



त्रयोदश-परिच्छेद ।



बौद्ध-धर्म-विध्वंस ।

उस समय बौद्धोंका समस्त देशमें बोलबाला था। बौद्धोंने बौद्ध-धर्मके वास्तविक मर्मको परित्याग कर भण्ड और पाखण्डपनका रूप धारण कर लिया था। समस्त देशमें घोर नास्तिकतावादका प्रचार हो रहा था। कुछ लोगोंका कहना है कि प्रतिशोध देनेके लिये पीछे हिन्दुओं और हिन्दू-राजाओंने बौद्धोंको विशेष रूपसे उत्पीड़ित किया था। कहा जाता है कि हिन्दुओं द्वारा उस समय बौद्धोंका भीषण निर्यातन हुआ था। उनके साथ बड़ा निष्ठुर व्यवहार किया गया था। दलके दल बौद्धोंको अग्निमें भस्म किया जाता था। पर्वतों परसे नीचे गिरा कर मार डाला जाता था। विख्यात अत्याचारी रोम-सम्राट नीरोके राजत्वकालमें जैसे ईसाइयोंके ऊपर अमानुषिक अत्याचार हुए थे, बहुतसे हिन्दू राजाओंने बौद्धों पर भी वैसे ही निष्ठुर अत्याचार किये थे। नीरोने जैसे निरीह क्रिश्चियनोंके दलके दलोंको वद्ध करके सिंह व्याघ्रोंके मुखमें निक्षेप किया था और प्रज्वलित अग्नि-स्तूपोंमें डाल कर भस्म कर दिया था, कहते हैं कि उसी प्रकारसे हिन्दू राजाओं ने बौद्धोंको निपीड़ित किया था। लोगोंका कहना है कि बौद्धोंपर अत्याचार होनेका मूल कारण शङ्कराचार्यकी भीषण उत्तेजना ही थी। किन्तु यह नितान्त भ्रम-मूलक कल्पना है। भारतवर्षके किसी भी ऐतिहासिकने इसका समर्थन नहीं किया। क्योंकि शङ्कर तो अत्यन्त सदाशय और परम साधु तथा संसारसे उदासीन रह कर सर्वत्र

सम्मानित और संपूजित हुए थे। उनके द्वारा ऐसे अत्याचारोंके होने की बात तो दूर रहो, कल्पना भी नहीं हो सकती। शङ्कर सम्बन्धी जिस घटनाके आधार पर लोगोंने ऐसी कल्पनायें की है, इसका भी इतिहासमें कोई प्रमाण नहीं मिलता। शङ्करका किसी धर्म या सम्प्रदाय से राग-द्वेश नहीं था। उनके समयमें भी अपने धर्मोंका स्वेच्छापूर्वक प्रचार होता था। कितने हो धर्म-सम्प्रदायोंमें कदाचार और कुसंस्कारोंका प्रचार था। उन कदाचार और कुसंस्कारोंकी शङ्कर घोर निन्दा करते थे, इसमे सन्देह नहीं। परन्तु वे किसी पर अत्याचार करते थे अथवा उनकी प्रेरणासे लोग अत्याचार करते थे, यह कहना नितान्त भ्रमात्मक है और बौद्ध-धर्म ही क्यों उन्होंने तो शैव और वैष्णवों‌के दोषों और भ्रमोंकी निन्दा की थी। वे जहां जिस मतमें कदाचार और अधर्मका असहनीय व्यापार देखते थे, कभी उसको नीरव रह कर सहन नहीं कर सकते थे। मालूम होता है शङ्करके प्रतिपक्षियोंने शङ्करके बाद राग-द्वेषवश इन अत्याचारोंकी अवतारणा की है। क्योंकि जो शङ्कर विशुद्ध अद्वैतवादी, ध्यान-धारणा द्वारा मुक्ति-साधन मानने वाले थे, हिंसा, क्रोध, लोभ और मोहरूपी रिपुओंका वर्जन और शम-दम-तितिक्षा आदि त्यागवृत्ति द्वारा ब्रह्म-प्राप्तिका साधन बताते थे, भला वे बौद्धों पर अत्याचार करते, यह बात किसी की समझमें भी नहीं आ सकती। वे तो सर्वभूत ब्रह्मसत्व उपलब्धि का उपदेश देते थे, वे दूसरों पर अत्याचार कैसे करते? हां, कुमारिल-भट्टके समय वैदिक-धर्मियों एवं बौद्धोमे भीषण संघर्ष हुआ था। उस समय बौद्धोंने हिन्दुओंपर भीषण अत्याचार किये थे। प्रतिशोध लेने के लिये हिन्दुओंने भी अवसर पाकर उनके साथ वैसा व्यवहार किया तो कोई आश्चर्य नहीं। परन्तु उसका उत्तरदायित्व शङ्कर पर नहीं आ सकता। हां, शङ्कर नास्तिक बौद्ध धर्मको पराभूत करके इस देश



शङ्कराचार्यका बौद्धोंसे शास्त्रार्थ ।

से दूर करना चाहते थे। जन्म भर उन्होंने इसके लिये चेष्टा की। परन्तु किसी मनुष्य क्या जीवमात्रसे उनका राग-द्वेष नहीं था।

एक बार मध्यप्रान्तके एक प्रबल पराक्रान्त राजाके यहां शङ्कर के साथ बौद्धोंका विषम तर्क-संघर्ष उपस्थित हुआ। उसमें यह बात तय हुई कि जो पराजित होगा, उसे प्रज्वलित अग्निकुण्डमें डाल दिया जायगा। यहांका राजा क्षमताशील और ऐश्वर्यशाली था, परन्तु था मूर्ख। जब शास्त्रार्थ आरम्भ होने लगा, तो राजाने दोनों दलोंसे पूछा कि आप लोग जो मन्तव्य प्रकाश करेंगे, उसके सत्या-सत्यका निर्णय कौन करेगा? राजाकी युक्ति-युक्त बात पर दोनों दलों ने विचार किया कि बात तो ठीक है। इस पर राजमन्त्रीने एक खाली पात्र ऊपरसे ढक कर राजसभामें ला रक्खा और राजासे परामर्श कर मन्त्रीने कहा कि जो यह बता देगा कि इसमे क्या है, उसी पक्ष की विजय समझी जायगी! मन्त्रीकी बातको सुनकर बौद्ध-दलके पण्डितों में से कोई कुछ कहने लगा और कोई कुछ। तब शङ्करने कहा कि इसमें भयङ्कर काला सर्प है! शङ्करकी बातको सुन कर राजा और मन्त्रीने समझा कि बौद्ध और शङ्कर दोनों झूठे और अधार्मिक हैं। परन्तु शङ्करके अनुरोधसे जब पात्रको खोला गया, तो सचमुच उसमें से एक भयङ्कर विषधर सर्प निकला! इस दैवी चमत्कारको देख कर राजा और मन्त्री तथा राज-दरबारीगण बहुत चमत्कृत हुए और उन्होंने उसी समय शङ्करको श्रद्धाके साथ साष्टाङ्ग प्रणाम किया। अब लगा शास्त्रार्थ होने। अन्तमें बौद्ध पराजित हुए। परन्तु शङ्करने उनको क्षमा कर दिया और अग्निमें डाल कर भस्म करने की बात को स्थगित करा दिया। बौद्ध पण्डित भी इस उदारता और सदा-शयता पर मुग्ध हो गये। उन्होंने शङ्कर के मतको सहर्ष स्वीकार कर लिया।

इसी प्रकारसे समस्त देशमें भ्रमण कर शङ्कर बौद्ध-धर्मियों को शास्त्रार्थमें परास्त करने लगे। उस समय वैसे भी बौद्धधर्मका अधः-पतन होने लगा रहा था। कदाचारने बौद्धोंके नैतिक जीवनको बिल-कुल पतित बना दिया था। सर्वसाधारण लोग उसे उपेक्षाकी दृष्टिसे देखने लगे थे। इस समय जैसे बङ्गालमें 'नेडा-नेढ़ियों' के दल जुट कर पवित्र और मङ्गलमय वैष्णव धर्मको कलङ्कित कर रहे हैं, ठीक उसी प्रकारसे बौद्धयुगके उस अन्तिम भागमें भिक्षुक और भिक्षुणीगण स्थान-स्थान पर संस्थापित बौद्ध-सङ्घ वा मठोंमें समवेत होकर नाना प्रकारकी विभत्स क्रियाओं द्वारा बौद्ध-धर्मको कलुषित कर रहे थे। उनसे कुछ दिन पहले जैसे देशमें तान्त्रिक सम्प्रदायने मद्य, मांस प्रभृति पञ्च-मकारोंके साधनकी दुहाई देकर पतिता-परित्यक्ता रमणियों को लेकर पापाचारका प्रचार किया था, बौद्ध सम्प्रदायमें भी अनेक पथ-भ्रष्ट पुरुष और रमणियां धर्मका नाम लेकर कदाचारमें प्रवृत्त हो रही थीं। अहिंसाका महामन्त्र लुप्त हो चुका था। धर्म और दया का परित्याग कर दिया गया था। इनके स्थानमें तान्त्रिकोंके कदर्य-मद्य, मास, मैथुन आदि कुक्रियाओंकी नदी प्रवाहित हो उठी थी। बौद्धोंकी इस प्रकारकी मति-गति और भाव-भंगिको देख कर सर्व-साधारण लोग उससे घृणा करने लगे थे। मारण, उच्चाटन और वशीकरण आदिकी कुक्रियाएं प्रच्छन्न भाव से बौद्धोंमें सन्निविष्ट हो गयीं थीं।

इन्हीं कुक्रियाओं और कदाचारोंको देख कर राजा और प्रजा बौद्धोंको अत्यन्त हीन और उपेक्षाकी दृष्टिसे देखने लगे थे। शास्त्रों में उनकी प्रवृत्ति नहीं रही थी। राजदरबारों और पण्डित-सभाओंमें जगह-जगह उनकी पराजय होती थी। इस अधःपतन और उनके कुत्सित कर्मोंको देख कर अनेक हिन्दू राजाओं ने बौद्धोंको अपने

राज्यसे निर्वासित कर दिया था। हठ और असभ्य आचरणोंके कारण कितने ही जोशीले राजाओं द्वारा उनका उत्पीड़न भी हुआ था। परन्तु शङ्करका इसमें जरा भी हाथ नहीं था। उनको जब कभी किसी के उत्पीड़न और निर्यातनकी बात मालूम होती, तो वे अपने प्रभाव से उस शक्तिसम्पन्न राजाको मना कर देते। इसी प्रकारसे बौद्धोंको अपनी अभूतपूर्व विद्या-बुद्धिसे परास्त और उदारता तथा सदाशयता से मोहित और मुग्ध करते हुए शङ्कर, समस्त भारतका भ्रमण करने लगे तथा समस्त देशके बौद्ध पण्डितों को शास्त्रार्थमें पराजित कर उन्होंने पुनः वैदिक-धर्मकी स्थापना की।



चतुर्दश-परिच्छेद।

विविध घटनायें।

—:०:—

शङ्करके जीवनके साथ जो अनेक घटनायें घटित हुई हैं, उन पर आजकल का शिक्षितसमाज सरलतासे विश्वास नहीं कर सकता; परन्तु हम उनका विना उल्लेख किये, शङ्करकी इस जीवनीको समाप्त भी नहीं कर सकते। शङ्करने समस्त भारतमे भ्रमण कर नाना मत-मतान्तरोंके पण्डितोंको शास्त्रार्थमें परास्त किया। इससे समस्त देश में शङ्करकी प्रख्याति हो गयी। समस्त देशमें शङ्कर का यश-सौरभ परिव्याप्त हो उठा। सैकड़ों और हज़ारों शिष्य और प्रशिष्य आ-आकर उनके चरणोंमें मस्तक झुकाने लगे। अनेक योगी, ब्रह्मचारी और संन्यासियों तथा गृहस्थोंने उनके मतको स्वीकार किया। शङ्कर के मतानुयायियोंका एक विशाल दल तैयार हो गया। इसी समय शङ्कर ने अनेक मौलिक पुस्तकोंका प्रणयन किया और कितने ही ग्रन्थोंपर टीका की। उन सब पुस्तकोंमें वेदान्तभाष्यकी बहुत अधिक प्रतिष्ठा हुई। शङ्कर-कृत इस भाष्यका नाम शारीरिक भाष्य है। दार्शनिक-पण्डितोंमें शङ्करके शारीरिक भाष्यका खूब नाम है। शारीरिक भाष्यको अत्यन्त श्रद्धाकी दृष्टिसे देखा जाता है। दार्शनिक पण्डितोंका कहना है कि शारीरिक-भाष्य-शङ्कर-कृत ही सर्वश्रेष्ठ है। विशुद्ध अद्वैततत्त्व और अद्वैतवादका उल्लेख जैसा युक्ति और तर्कके साथ इस भाष्यमें किया गया है, वैसा और किसी भाष्यमें नहीं है। इस भाष्यमे इस बातको बहुत ही विशद रूपसे समझाया गया है कि मायाके अन्धकार

में जीव-संसार-संसार करता फिरता है, किन्तु जब जीव इस बातको समझ लेता है कि उसका आत्मा भूमाभाव है—केवल मोहके बन्धन में पड़ कर सीमाबद्ध हो गया है। परन्तु इस मायाके अन्धकार और मोहके बन्धनसे निकल कर जीवात्मा जब बाहर हो जाता है, तो वह शिव हो जाता है, जीवात्मा-परमात्मामें परिणत हो जाता है। इस-लिये मोह-माया बद्ध जीवको दु.ख दैन्य और मोहपाशको काट कर भूमाभाव लाभ करना चाहिये। श्रवण, मनन, निधिध्यासन — विज्ञान मार्गके साधनों द्वारा आत्मबोध होता है और परमानन्द-धामकी प्राप्ति होती है। शरीरिक भाष्यमें इन्हीं निगूढ़—विषयोंका युक्ति और तर्कके साथ समावेश किया गया है। द्वैतवादी इस भाष्यको बहुत निन्दित समझते हैं। भक्तिके परमाधर बंगालके महाप्रभु गौरांगदेव तकने इस भाष्यको नितान्त हेय और परित्याज्य बताया है। परन्तु इस देशमे ऐसा एक समय उपस्थित हुआ था, जब कि समाजमें धर्म-संस्थापन और धर्मको रक्षाके लिये इस ग्रन्थकी अत्यन्त आवश्यकता पड़ी थी। इस समय जैसे युक्तिवादका प्राबल्य है, उस समय भी भारतमें युक्ति-वाद की ही जय-ध्वनि हो रही थी। नास्तिकताका भयङ्कर प्रचार हो रहा था। लोग कहते थे भगवान् क्या है, मनका एक विकार मात्र है! केवल कुछ कल्पनाओंके कारण संसारमें 'मैं' और 'तू' का भ्रम-जाल फैल रहा है। वास्तवमें न मैं कुछ हूं, न तू। इसी प्रकारके विकट विचारोंकी देशमें भीषण क्रान्ति हो रही थी। उसी समय शङ्करने शारीरिक आदिका भाष्य कर हिन्दू धर्मको प्रबल बौद्ध धर्मके नास्ति-कतावादसे बचाया। यदि शङ्कर युक्ति और तर्कसे काम न लेते तो बौद्धोंके सामने एक दिन भी उनका टिकना असम्भव था। फलस्वरूप आज हिन्दूजातिकी क्या गति होती, उसका सरलतासे अनुमान किया जा सकता है।

शारीरिक-भाष्यका बहुल प्रचार होनेसे जहां अनेक पण्डित शङ्कर का आदर-सम्मान करने लगे थे, वहां अनेक पण्डितगण उनके विरोधी होकर कड़ी आलोचना भी करने लगे थे। यहां तक कि 'शङ्कर-दिग्विजय' में लिखा है कि स्वयं वेदव्यासने शारीरिक-भाष्यके श्लोकों को लेकर उनकी आलोचना की थी। इसीसे इस भाष्यकी निगूढता और महत्ता समझी जा सकती है। 'दिग्विजय' में लिखा है कि एक बार काशीमें वेदव्यास स्वयं इस भाष्यको लेकर शङ्करके साथ तर्कालोचनामें प्रवृत्त हुए थे। उस घटनाका उल्लेख इस प्रकारसे किया गया है कि एक दिन काशी-धाममें मणिकर्णिका घाट पर बैठे शङ्कर एकाग्र मनसे आत्म-चिन्तन कर रहे थे। इसी समय एक वृद्ध ब्राह्मणका रूप धारण करके वेदव्यास वहां उपस्थित हुए। पुराणोंको माननेवाले लोग वेदव्यासको अमर और देवयोनिकी तरहसे सर्वत्र गमन-सक्षम और सर्वदर्शी मानते हैं। वे शारीरिक भाष्यके निगूढ़-तत्त्वको निगूढ और महत्व पूर्ण भावमें देख कर अत्यन्त सन्तुष्ट हुए और स्वयं वृद्ध ब्राह्मण के रूपमें शङ्कराचार्यके समक्ष उपस्थित होकर इस भाष्य पर आलोचना करनेकी इच्छा प्रकट की।

कहते हैं कि वेदव्यासजीने यद्यपि वृद्ध ब्राह्मणका रूप धारण कर रखा था, तथापि उनके मुखमण्डल पर दिव्य-ज्योति स्पष्ट प्रकट हो रही थी। क्योंकि प्रज्वलित अग्नि कभी भस्माच्छादित नहीं रह सकती। शङ्करने तुरन्त इस बातको ताड़ लिया। शङ्करने शिष्टाचारपूर्वक बड़ी नम्रता के साथ उनके आगमनका कारण पूछा।

उत्तरमें वृद्ध ब्राह्मणने कहा,—"तुम शङ्कराचार्य हो। तुमने वेदान्त का विशद भाष्य प्रस्तुत किया है। किन्तु मुझे तुम्हारे भाष्यमें कई जगह सन्देह और शङ्का उत्पन्न हुई है। उस संशयको दूर करने के लिये ही मैं यहां उपस्थित हुआ हूं।"

शङ्करने वृद्ध ब्राह्मण रूपी वेदव्यासकी बातको स्वीकार कर लिया और घोर शास्त्रार्थ होने लगा। वेदान्तके सम्बन्धमें नाना प्रकार के तर्क होते समय एक सूत्रके सम्बन्धमें प्रश्न उठा। वृद्ध ब्राह्मण रूपी व्यासदेवने पूछा,—"तदनन्तर प्रतिपत्तौरंहति सम्परिष्यन्तः प्रश्नमिव प्रणाम्यां।"

उपरोक्त सूत्रको लेकर घोर तर्क-वितर्क होने लगा। अन्तमें दोनों वक्ताओंने शास्त्रार्थकी उत्तेजनामें प्रचण्ड रूप धारण किया। शङ्कर तो इतने क्रुद्ध हुए कि उन्होंने वृद्धके मुंह पर एक चांटा तक रसीद कर दिया और अपने शिष्य पद्मपादको आज्ञा दी कि इस वृद्ध को यहांसे हटा दो। पद्मपाद सामान्य शिष्य नहीं था। वह भी उपयुक्त गुरुका उपयुक्त शिष्य था। गुरु-भक्त विद्वान् पद्मपादने जैसे दिव्य-दृष्टिसे शङ्करको जाना था, वैसे ही वेदव्यासको भी जान लिया था। गुरु शङ्करके कठोर आदेशको सुन कर पद्मपाद इधर-उधर करता हुआ मन ही मनमें कहने लगा,—

'शङ्कर शङ्कर साक्षात व्यासो नारायणं स्वयं।
तयोर्विवादे सम्प्राप्ते न जाने किंकरोम्यहम्॥'

अर्थात् आचार्य देव-शङ्कर तो साक्षात् शङ्कर हैं ही और व्यास-देव स्वयं नारायण। दोनोंमें विवाद हो रहा है। ऐसी दशामें क्य करूं?

अस्तु, जो कुछ भी हो, अन्तमें ब्राह्मणरूपी व्यासदेव शङ्करकं विचार-प्रणालीसे प्रसन्न हुए—और आत्मप्रकाश कर उन्होंने कहा "आचार्य शङ्कर, मैं तुम्हारे विचारोंको सुन कर अत्यन्त आनन्दि हुआ हूं। इस समय मैं जाता हूं। जानेसे पहले मैं तुमको एक वर प्रदान करता हूं। तुम्हारी परमायु अत्यल्पकाल मात्र निर्धारित हुई है। केवल सोलह वर्ष मात्र। मैं [illegible] आयु-वर्द्धित

होगी । तुम बत्तीस वर्ष तक जीवित रह कर धर्म-प्रचारका कार्य कर सकोगे ।"

शङ्करने वृद्ध ब्राह्मग वेशधारी वेदव्यासको बड़ी नम्रता और विनय के साथ विदा किया । शिष्य पद्मपादको भी इस तर्क-वितर्क और आलोचना प्रत्यालोचनामें बहुत आनन्द प्राप्त हुआ ।

\+ + + +

शङ्कर-शिष्य पद्मपाद अद्भुत और अपूर्व मनुष्य थे । उनके सम्बन्धमें एक कहानी प्रसिद्ध है । पद्मपाद चौल देशीय ब्राह्मण-सन्तान थे । इनका आदि नाम सनन्दन था । आचार्य शङ्कर काशी-धाममे आकर गङ्गा-तट पर निवास किया करते थे । एक दिन शङ्करने सनन्दन को गङ्गाके उस पार देख कर सोचा कि यह असाधारण व्यक्ति है । सनन्दन शङ्करका शिष्यत्व ग्रहण करनेके लिये आ रहे थे । परन्तु बीचमें गङ्गा प्रचण्ड उत्ताल-तरङ्गोंके साथ प्रवाहित हो रही थी । सनन्दन के इधर आनेके अत्यन्त आग्रहको देख कर शङ्करने हाथसे संकेत किया कि चले आओ । नौका वहां कोई थी नहीं—और आचार्य वार-वार हस्त-संकेतसे बुला रहे थे । सनन्दन बड़े सङ्कटमें पड़े । अन्तमे सनन्दनने निश्चय किया कि गुरुदेवका आदेश तो अवश्य ही पालन करना होगा । आचार्य साधारण व्यक्ति नहीं हैं । फिर जिनके अनुग्रहसे भवनदी पार की जा सकती है, उनकी साधारण कृपासे मैं इस साधारण नदीको अवश्य ही सरलतासे पार कर सकूंगा । इस प्रकारसे विचार कर सनन्दन प्रबल वेगसे प्रवाहित होती हुई गङ्गामें घुस पड़े ! सनन्दनकी अद्भुत गुरु-भक्ति और असाधारण विश्वासके बलसे नदी पार करते समय एक अद्भुत अनैसर्गिक व्यापार संघटित हुआ । सनन्दन जहां-जहां गंगा-सलिलमें पद-निक्षेप करते जाते, गंगाके गर्भ से वहीं-वहीं पर एक-एक प्रस्फुटित-पद्म उद्गत होता जाता । प्रति

पद-क्षेपमें पद्मके आविर्भावको देख कर, सनन्दन उत्साहित हो, प्रत्येक पद्मके ऊपर पांव रखते हुए अनायास ही नदीसे पार हो गये! गुरुके सामने उपस्थित हो और हाथ जोड़ कर सनन्दनने कहा,—"आपकी कृपा और अद्भुत दैव-बलके कारण मैं वेगवती गंगा को पार कर आया हूं। आज आपने अपने अद्भुत शक्ति-बलसे इस क्षुद्र पार्थिव नदीसे पार किया है; किन्तु मेरे सामने तो अति दुस्तर भीषण-भव-समुद्र है। उस भव-समुद्रसे पार उतरनेके लिये एकमात्र आपकी पद-तरणी ही सहारा है। परम दयामय प्रभो, दया करके उस पद-तरणीमें मुझे स्थान दो। जिससे मैं निदारुण सङ्कट-संकुल भव-सागरसे पार हो सकूं।"

इस प्रकारसे विनय-पूर्वक सनन्दनने शङ्कर को प्रणाम किया। शङ्कर भी परम करुणा-निधान और परम शिष्य-वत्सल थे। उन्हींकी कृपासे प्रस्फुटित पद्म पर पांव रखते-रखते सनन्दनने परम वेगवती गंगाको बिना प्रयासके पार किया था। उन्हींकी कृपासे भव-सागर पार हो सकूंगा—कह कर सनन्दनने शिष्यत्वकी प्रार्थना की। परम बुद्धिमान् शङ्करने परम गुरु-भक्त और आस्तिक तथा विद्वान् सनन्दन को स्वमत प्रचारके योग्य शिष्य देख कर दीक्षा दी और नवीन नाम पद्मपादके नामसे प्रसिद्ध किया।

\+ \+ \+ \+

हम पहले इस बातका उल्लेख कर चुके हैं कि शङ्कर स्वामी के विरोधियों और निन्दकोंका भी एक दल देशमें तैय्यार हो गया था। ये लोग जगह-जगह शङ्कर-स्वामीसे शास्त्रार्थ कर परास्त होते और प्रतिहिंसासे प्रेरित होकर प्रतिशोध लेनेकी चेष्टा करते। एक बार शङ्कर काशीकी एक गलीसे होकर जा रहे थे। एक प्रमादी पण्डितने उनके पीछे कुत्ते लगा दिये। खूंखार कुत्तोंको देख कर शङ्कर गंगाकी ओर

को भाग पड़े। तब उस पण्डितने शङ्करसे व्यंग कर पूछा,— "क्यों स्वामिन्, यह शरीर तो अनित्य है, इसके जाने या रहनेका इतना भय क्यों?" उत्तरमें प्रत्युत्पन्नमति शङ्करने कहा,—"हमारा भागना और खूंखार कुत्तोंसे भयभीत होना भी तो अनित्य ही है।" शङ्करकी बात सुन कर पण्डित हाथ मल कर रह गया। इसी प्रकारकी दुष्टता अनेक लोग करते थे, परन्तु शङ्करका सितारा समस्त देशमें चमक रहा था।

\+ \+ \+ \+

पाठकोंको स्मरण होगा—माताके साथ वर्ष भरमें एक बार घर आकर भेंट करनेकी शङ्कर प्रतिज्ञा कर आये थे। सुतरां वे प्रति वर्ष अनिच्छापूर्वक घर जाते और माताके दर्शन कर प्रतिज्ञा पूर्ण कर आते। अब माता जराजीर्ण और पुत्रवियोगसे अत्यन्त दुखी होकर बीमार रहने लगी थी। इस बार जब शङ्कर घर पहुंचे तो देखा माता बीमारीसे अत्यन्त कष्ट पा रही हैं। शङ्कर बहुत दुःखी हुए। परन्तु दो ही एक दिनमें माताका देहान्त हो जानेसे उनकी वह चिन्ता और दुःख दूर हो गये। शङ्करने ग्रामके ब्राह्मणोंको बुला कर माता का अन्तिम संस्कार करना चाहा, परन्तु वहांके स्वाभिमानी ब्राह्मणोंने शङ्करकी बातको नहीं सुना। तब शङ्करने स्वयं ही सब क्रियायें सम्पन्न कीं। जाते समय शङ्करने वहांके ब्राह्मणोंको शाप दिया कि तुममेंसे कोई वेदपाठी नहीं होगा। संन्यासी तुम्हारे यहांसे भिक्षा नहीं लेगा और तुम्हारे घरोंकी जगह सदा श्मशान रहेगा। माधवाचार्यने लिखा है कि—अब तक वहां कोई वेदपाठी नहीं हुआ, न कोई संन्यासी वहां भिक्षा करता है और ग्रामके पास भीषण श्मशान मौजूद है!

\+ \+ \+ \+

आचार्य शङ्करकी स्मृति-शक्ति भी अमानुषिक थी। वे एक बार जो देख लेते या सुन लेते, वह उन्हें सदा स्मरण रहता। शङ्कर की

स्मृति-शक्तिको देख कर उनके गुरु आचार्य गोविन्दपाद भी मुग्ध हो गये थे। गम्भीर और दुरूह जटिल दर्शनशास्त्रकी गुत्थियोंको एक वार ही सुन कर अपनी प्रखर प्रतिभासे समझ लेते थे और असाधारण स्मृतिके कारण सब वातें सदा स्मरण रहती थीं। शङ्करकी असाधारण स्मृतिके सम्बन्धमें बहुतसी वातें लोक-समाजमें प्रचलित हैं। उनमेंसे दो घटनायें वहुत ही प्रसिद्ध हैं। जिस समय शङ्कर अपने शिष्योंको वेदान्तभाष्य पढ़ाते थे, उस समय उनके शिष्य पद्मपाद उसे वहुत ही सूक्ष्म् रूपसे हृदयंगम करते लेते थे। आगे चल कर पद्मपाद ने शङ्कर-कृत वेदान्त भाष्य पर एक और सूक्ष्म टीका की। पद्मपादने अपनी टीकाको समाप्त कर गुरुदेवको सुनाया। शङ्कर, शिष्यकी इस कृति पर वड़े प्रसन्न हुए और पद्मपादकी विद्वत्ता और सूक्ष्मदर्शिताकी उन्होंने प्रशंसा की।

कुछ दिनोंके बाद शिष्य पद्मपादने तीर्थयात्रा करनेकी अभिलाषासे गुरुदेवसे विनीत हो कहा,—"गुरुदेव, आपके चरणोंको छोड़ कर यद्यपि किसी प्रकारकी तीर्थ-यात्रा करनेकी इच्छा नहीं होती, तथापि शास्त्रोंमें कहा है कि तीर्थ-भ्रमण आत्मोद्धारका प्रसिद्ध सेतु है।" उत्तरमें शङ्करने कहा,—"वत्स, तीर्थ-यात्रा हिन्दूका प्रधान कर्म है। चित्त-शुद्धिके लिये तीर्थ-भ्रमणकी नितान्त आवश्यकता है। क्योंकि तीर्थों पर ही देवताओंके एवं सिद्ध-साधुओंके दर्शन हो सकते हैं। उन लोगोंके पदार्पणसे ही तीर्थ परम पवित्र होते हैं। मेरी सम्मति है कि तुम तीर्थयात्रा करो।" गुरुदेवसे आज्ञा पाकर सर्वप्रथम पद्मपादने दक्षिणके तीर्थोंकी यात्रा आरम्भ की। मार्गमें उनके मामाका घर पड़ता था। मोहवश एक दो दिनके लिये वे वहीं ठहर गये। पद्मपादके मामा पण्डित थे। जाते समय पद्मपाद अपने मामाको अपने द्वारा रचित वेदान्त भाष्य देते गये कि मैं जब तक वापस

आता हूं, आप इसे देखिये कैसा हुआ है। अस्तु, पद्मपाद चले गये। भागिनेयके अनुरोधका पालन करनेके लिये उनके मामाने वेदान्तके उस सूक्ष्म टीकाको पढ़ना आरम्भ किया। उस भाष्यको पढ़ कर वे विस्मित एवं मुग्ध हुए। पद्मपादके मामा भक्त और द्वैतवादी थे। उस भाष्यमें द्वैतवादको विशेष रूपसे निराकृत किया गया था और अद्वैतवादका कठोर युक्ति तर्कोंसे समर्थन किया गया था। पद्मपादके मामाने देखा कि भागिनेय उनके मत और आनुष्ठानिक धर्मके विपरीत पथ पर चल रहा है और तन्मय होकर उसीके प्रचारमे निमग्न है। उन्होंने सोचा कि यदि इस द्वैतवादको विध्वस्त करने वाले टीकाका बहुत प्रचार हुआ, तो भक्ति-धर्मकी प्रतिष्ठाकी रक्षाका होना नितान्त कठिन व्यापार हो जायगा। हाय, सनन्दनको यह मतिभ्रम कैसे हुआ? पद्मपादके मामा इस मतिभ्रमको दूर करनेका उपाय सोचने लगे। अन्तमे उन्होंने स्थिर किया कि तीर्थयात्रासे वापस आने पर युक्ति-तर्कसे उसको समझाया जायगा कि इस विपरीत मार्गका परित्याग कर दे। इसी प्रकारसे विचारते हुए अनेक दिन व्यतीत हो गये। एक दिन दैवगतिसे अकस्मात् पद्मपादके मामाके घरमे आग लग गई। इस घटनासे होना तो चाहिये था उनके मामाको दुखी, परन्तु वे परम आल्हादित हुए उन्होंने सोचा कि यह बड़ा अच्छा हुआ जो गृह-दाहके साथ-साथ पद्मपादकी वह टीका भी भस्म हो गयी! कुछ दिनोंके बाद पद्मपाद तीर्थयात्रासे घर लौटे। उनके सामने बड़ा दुःख प्रकाशित करते हुए कहा,—"वत्स, क्या कहू, घर तो भस्म हुआ सो हुआ ही था, साथमें ही वह तुम्हारी टीका भी भस्म हो गया!" मामाकी बातको सुन कर पद्मपाद स्तम्भितसे रह गये। उनके अनुतापकी सीमा न रही। अन्तमें वहांसे चल कर पद्मपाद, गुरुदेव शङ्कराचार्यके पास पहुंचे। बड़े विषण्ण मनसे उन्होंने गुरुदेव

से कहा,—"आचार्य, तीर्थयात्राकेपथमें मैं मामाके घर चला गया था और जाते समय अपना वेदान्त-भाष्य भी अपने मामाके घर लेता गया था। परन्तु दैवात् उनके घरमें आग लग गई, जिसके कारण उनके घरके समस्त सामानके साथ मेरा वह भाष्य भी दग्ध हो गया!' इस प्रकारसे कह कर पद्मपादने बड़ा अनुताप प्रकट किया। तब शङ्कर ने हंस कर कहा,—"वत्स, अनुतापकी आवश्यकता नहीं है। तुमने मुझे वह भाष्य एक वार पढ़ कर सुनाया था। मुझे अभी तक उसका विशद भावसे स्मरण है। मैं बोलता जाता हूं, तुम लिख डालो।" इस पर पद्मपादके आश्चयका ठिकाना न रहा। आचार्य शङ्कर बोलते गये और पद्मपाद उसे लिपिवद्ध करते गये। अन्तमें वह भाष्य ज्योंका त्यों फिर तैयार हो गया।

इसी प्रकारसे और एक वार केरलके विद्वान् राजाने कई नाटक रच कर शङ्करके अवलोकनार्थ उनके पास भेजे। न मालूम किस घटना के कारण वे नाटक नष्ट हो गये। जब राजाने एक दिन आकर शङ्कर से मांगा, तो खोज-तलाश करने पर पता लगा कि वे न जाने कैसे विनष्ट हो गये हैं। राजा इस बातको सुन कर बहुत दुःखी हुए। तब शङ्करने कहा,—"राजन्, मैंने तुम्हारे नाटकोंको पढ़ा था। अच्छे उपादेय हुए थे। मुझे वे समग्र स्मरण हैं, तुम चाहो तो लिपिवद्ध कर सकते हो।" शङ्करकी इस बातको सुन कर राजा बहुत आश्चर्यचकित हुए और उन्होंने शङ्करके मुखसे सुन कर उनको फिर लिख डाला।

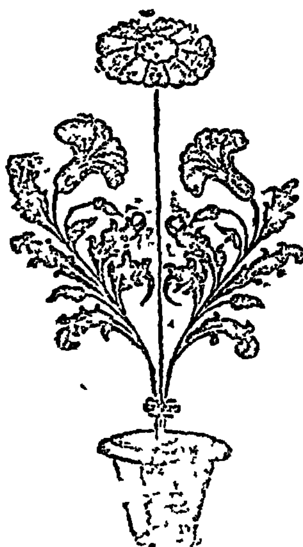
\+ + + +

शङ्करकी अमानुषिक शक्तिके सम्बन्धमें कई परिच्छेदोंमें यथेष्ट उल्लेख हो चुका है। एक वार शङ्कर अपनी शिष्यमण्डली सहित मध्य प्रदेशके पार्वत्य-प्रदेशमें भ्रमण करते हुए एक मनोरम निर्जन स्थान पर ठहर गये। केवल कन्द-मूल फल खाकर शङ्करका वहां कई

दिन तक अवस्थान रहा । एक दिन शाप-भ्रष्ट पाप पतित अहिराजने एकाएक कहींसे आकर शङ्करको प्रणाम किया और कहा कि आप तो साक्षात् पाप-ताप-हारी हैं । मेरे सौभाग्यसे ही इस निर्जन वनमें आपका आगमन हुआ है । महाराज, मैं शाप-भ्रष्ट और पतित हूं । आपके पवित्र उपदेश और परम आशीर्वादसे ही मेरा कलङ्क दूर हो सकता है । शङ्करने अहिराजके विनम्रभावको देख कर उससे अपनी आत्मकथा कहनेको कहा । अहिराजने अपने पूर्वजन्मकी आत्मकथा कहना आरम्भ किया । अहिराजने कहा,—"महाप्रभो, मैं नहीं जानता किस पुण्यके प्रभावसे मुझे अपने पिछले जन्मकी समस्त घटनायें स्मरण हैं । मैं पूर्वजन्ममें महा ऐश्वर्यवान् था । महाशक्ति सम्पन्न एक राजाके यहा मेरा जन्म हुआ था । वह कुल सदासे सत्य सनातन वैदिक धर्मका पालन करता आया था । राज-सिंहासनासीन होनेपर मैंने भी उसी धर्मका पालन करना आरम्भ किया । अनेक वर्षों तक मेरा धर्माचरण रहा । मेरे धर्मपूर्ण शासनसे मेरी प्रजा अत्यन्त सन्तुष्ट रहती थी । मैं विद्याव्यसनी था । साधु-महात्माओंके आगमन पर मैं उनका हृदयसे स्वागत करता और उनकी शास्त्र-चर्चा सुन कर कुछ उपदेश ग्रहण करता था । एक दिन दुर्भाग्यसे कुछ बौद्ध पण्डितोंका मेरे यहां आगमन हुआ । मैंने उनका भी यथापूर्व स्वागत-समारोह किया और शास्त्र-चर्चामें रत हुआ । परन्तु अन्तमें उन निरीश्वर-वादियोंके तर्क और युक्तियोंका मुझ पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि अन्तमें मेरा ईश्वर परसे विश्वास उठने लगा । मेरी धर्म पर स्थित आस्था धीरे-धीरे विलुप्त होने लगी । इन्हीं दिनों कुछ चार्वाकोंका आगमन हुआ । उन लोगोंने तो मुझे बिलकुल ही चौपट कर दिया । मैं वैदिक धर्म और आध्यात्म तत्त्वको गंजेड़ियोंकी निरी कल्पना समझने लगा । मैं समझने लगा कि इस जीवनका कुछ भी अर्थ नहीं । धर्म-कर्म-

साधना सब वृथा है। इस जीवनकी सार-सामग्री है एक केवल इन्द्रिय और सुख सम्पद भोग ! सुतरां मैं स्त्रियोंका दास और इन्द्रियोंका क्रीड़ा-कौतुक हो गया। रातदिन मदिरा-पान और नाच-रङ्गमें मस्त रहने लगा। केवल विलास-भोग ही मेरे जीवनका एक मात्र उद्देश्य रह गया। प्रजापालन, प्रजारञ्जन आदि कार्य सब विस्मृत हो गये। इससे मेरी दशा शोचनीय होने लगी। देह कलुषित और मतिगति भ्रष्ट होने लगी। सदाशय साधु पण्डित मेरा संसर्ग परित्याग करने लगे। और उनके रिक्त स्थानको चरित्रहीन, हीनमति व्यक्ति ग्रहण करने लगे। अन्तमें मेरा अधःपतन चरमसीमा तक पहुंच गया। ऐसी दशामें एक दिन एक महा तेजस्वी साधु पुरुष मेरे पाप-भवनमें उपस्थित हुए। कुसङ्ग कदाचारके विकट फलके कारण मैंने उन साधु पुरुषकी अवहेलना की। मेरे कदाचारी साथियोंने व्यङ्ग कर उनका उपहास किया। अन्तमें वे कुपित हो उठे। उन्होंने अत्यन्त उत्तेजित होकर मुझको शाप दिया कि,—“हे अधम, तू मनुष्य होने योग्य नहीं है। जा सर्पकुलमें जाकर जन्म ले। तू इसी योग्य है।” इस भयङ्कर शापको सुन कर मैं कॉंप उठा और अनुनय विनय कर उन साधु महात्माको किसी प्रकारसे प्रसन्न कर सका। तब उन्होंने दयार्द्र हो कहा,—‘राजन्, तुमको उक्त योनिमें अव-स्थान करना ही होगा। क्योंकि ब्रह्मवाक्य कभी निष्फल नहीं हो सकते। परन्तु शिवावतार शङ्करके दर्शनसे शापमुक्त होगा।’ इस प्रकारसे कह कर वे महात्मा चले गये और मेरी यह गति हुई ! मेरे जन्म-जन्मान्तरोंके पुण्य प्रभावसे आपका आगमन हुआ। आपके सिवा मुझे इससे शापमुक्त कोई नहीं कर सकता। प्रभो, मुझ अधम पर कृपा कीजिये और इस पापयोनीसे मुझे अब मुक्त कीजिये।”

अहिराजकी अनुतापयुक्त करुण-वाणीको सुन कर शङ्करने एक वार उसकी ओर दिव्य दृष्टिसे देखा—अहिराज का उद्धार हो गया। तब उसने शङ्करके चरणोंमें गिर कर प्रणाम किया और कहा,—"प्रभो, आप साक्षात् भगवान्का अवतार हैं। अधर्मके विनाश और धर्मकी प्रतिष्ठाके लिये ही आविर्भूत हुए हैं।" इस प्रकारसे शङ्करका गुण-गान करता हुआ अहिराज वहासे विदा हुआ।



पञ्चदश-परिच्छेद ।



शपचसे ब्रह्मज्ञानका उपदेश ।

आचार्य शङ्करमे एक और बड़ी महत्त्वकी बात थी। वे किसी छोटे और अयोग्य आदमीके भी गुणोंको ग्रहण कर लेते थे। छोटीसे छोटी घटना पर भी विचार कर उसको मनन करके उसका निष्कर्ष निकालते थे। एक दिन ज्ञानाधार भक्तिसमुद्र शङ्कर, अपने शिष्योंके साथ गङ्गा-स्नान करने जा रहे थे। मार्गमें उनकी एक 'शपच' (अछूत) से भेंट हो गई। वह अपने कई साथियों सहित मार्गको अवरुद्ध किये खड़ा था। उसके मार्गावरोधसे शङ्करका जाना रुक गया और उन्होंने शपचसे रास्ता छोड़नेका अनुरोध किया। उत्तरमें शपचने कहा,—"आप हमारे साथ यह अन्याय क्यों करते हैं ?" उत्तरमें शङ्करने कहा कि—"तुम लोगोंके छू जानेसे हम लोग अपवित्र हो जांयगे। क्योंकि तुम लोग अपकृष्ट जातिके हो। थोड़ा मार्ग छोड़ देनेमें तुमको क्या आपत्ति है ?"

उत्तरमें गम्भीर होकर शपचने कहा,—"महाराज, पवित्रता, अपवित्रता और शुचि, अशुचि तो सब मनके विकार हैं। भेदाभेद भाव मायाजनित महाभ्रमके सिवा और कुछ नहीं। आपने क्या अभी तक भी इस पार्थक्य रूपी महान्धकारसे मुक्ति नहीं पाई ! आपकी दिव्य-मूर्ति और सदाचरण को देख कर तो आप साधारण व्यक्ति नहीं मालूम होते। आप निश्चय ही कोई महाज्ञानी महापुरुष हैं। किन्तु जो साम्यभावापन्न होना महापुरुषोंका लक्षण होता है, वह आपके आचरण और बातोंको सुन कर आपमें परिलक्षित नहीं होता।"

शङ्कर शपचकी बातको सुन कर मन ही मनमें सोचने लगे कि यह क्या अद्भुत व्यापार है ? इस जीवनमें पहले तो कभी ऐसा कांड नहीं देखा था ! देखता हूं कि यह शपच अति नीच कुल सम्भूत है। इसकी शिक्षा-दीक्षा भी इतर जनोंकी तरह अतीव निकृष्ट है। किन्तु इस समय जो इसके मुखसे निकल रहा है, वह अति निगूढ़ तत्त्वभाव-संवलित प्रतीत होता है। इसके मुखसे इतनी बड़ी वात कैसे निकली ? निश्चय ही इसमें कोई शक्ति विद्यमान है। अच्छा इस रहस्यका पता लगाना चाहिये। इस प्रकारसे सोचकर शङ्कर बोले,—"शपच, देखता हूं कि तुम नीच कुल सम्भूत हो। परन्तु जातिगत पार्थक्यकी वातको तुम जरूर मानते होगे ? द्विजाति-कुलमें जन्म लेकर शारीरिक पवित्रता आवश्यक है। उसी श्रेष्ठताके लिये ही समाजमें वर्णों की श्रेष्ठता निर्धारित हुई है। वर्ण-विभेदके कारण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र आदि जाति-विभाग समाजका स्वाभाविक विधान है। वर्ण की श्रेष्ठताके अनुसार ही तो जाति-निर्णय हुआ है। जातिके अनुसार ही मनुष्य उच्च और नीच परिगणित होता है। इसी प्रकारसे शूद्र से वैश्य और वैश्यसे क्षत्रिय तथा क्षत्रियसे ब्राह्मण सवश्रेष्ठ है। क्यों कि ब्राह्मण श्रेष्ठ गुण और कर्मके अनुसार अन्य वर्णोंकी अपेक्षा सर्वश्रेष्ट होता है, वादमे शपच और म्लेच्छादि गुण कर्मों के दोषोंसे पतित और मानव समाजमे सर्वापेक्षा निकृष्ट कह कर परिगणित हुए हैं। ऐसी दशामें तुम्हारे शरीरके सम्पर्कसे ब्राह्मणका शरीर कैसे अपवित्र न होगा ? इसके सिवा ब्राह्मण-क्षत्रियादि द्विजोंके देहमें जो शक्ति और मनमें जो गुण होते हैं, वे क्या कभी नीच और शपचादिके देह और मनमें हो सकते हैं। उनके देहमें उस दिव्य शक्तिका विकास नहीं हो सकता। न मनमें वैसे सद्गुणोंका परिस्फुरण हो सकता है। तुम्हारे जैसे नीच कुल-सम्भूत शपचके छू जानेसे निश्चय ही ब्राह्मणादि

उच्च वर्णों की अधोगति हो सकती है। क्योंकि ब्राह्मण सद्गुणोंके आधार हैं—और सद् गुण नवनीतकी तरह अत्यन्त कोमल पदार्थ है। नवनीत जिस प्रकारसे अति उत्कृष्ट और उपादेय सामग्री है, उसी प्रकार से निमिष मात्रमे इसकी विकृति और अधःपतन भी हो सकता है। क्योंकि जो सामग्री जिस परिमाणमें जितनी उत्कृष्ट होती है, वह उतने ही परिमाणमें सामान्य कारणसे विकृत और कलुषित हो सकती है। नवनीत जैसे कुपात्रमें रखनेसे शीघ्र गुणहीन हो जाता है, उसी प्रकारसे तुम्हारे जैसे नीचकुल-सम्भूतके साथ छू जानेसे ब्राह्मणादि उच्चवर्णके लोग विकृत-कलुषित और नीच संसर्गसे पतित और आचारभ्रष्ट हो जांयगे।"

शपच पहले तो शङ्करकी बातको सुन कर बड़े उच्च स्वरसे हो-हो करके हँसा, फिर गम्भीर हो गर्ज कर बोला,—"ब्राह्मणादि कुलोंमें जन्म ले लेने मात्रसे ही क्या श्रेष्ठता प्राप्त हो जाती है? नहीं-नहीं, यह कभी सम्भव नहीं। उच्च कुलमें जन्म लेकर उत्कृष्ट कर्मों द्वारा जो मानव अपने उत्कर्षको साधन नहीं करता, वह कभी श्रेष्ठता नही लाभ कर सकता। क्योंकि गुण और अर्थ ही मनुष्यको ऊंचे उठाता है। सद्गुणों द्वारा ही मनुष्य श्रेष्ठता लाभ कर सकता है, यह नितान्त सत्य और निश्चित बात है। सत्कर्महीन–सद्गुणविहीन–व्यक्ति उच्च-कुलमें जन्म लेकर भी कभी उच्च नहीं हो सकता। जो मनुष्य दूसरेको अपनी अपेक्षा नीच समझता है और अपनेको उच्च समझ कर गर्व करता है, उसका महत्व तो इसी बातमें नष्ट हो जाता है। गर्व कभी गुणका परिचायक नहीं होता। जो प्रकृत रूपसे गुणहीन हैं, वे ही अपने गुणोंका मिथ्या प्रचार करते हैं। जो यथार्थ गुणवान् होते हैं, वे स्वभावतः विनीत और नम्र होते हैं। वे अपने मधुर भाषण और विनीताचारसे सबको परितुष्ट करते हैं। जैसे फलभारावनत वृक्ष फल-फूलों

। परिशोभित होकर उन्नत शिरको निम्न कर लेता है, इसी प्रकारसे गुणवान् व्यक्ति अपने गुण-ग्रामसे विभूषित होकर सबके प्रति आदर-भाव दिखाता हुआ फलपूर्ण वृक्षकी तरहसे शोभा पाता है। फलवान् वृक्ष पर यदि कोई ईंट पत्थरसे आघात करता है, तो वह उसे भी सुमिष्ट फल ही प्रदान करता है। इसी तरह गुणवान् व्यक्ति शत्रुके प्रति भी उदारता दिखाते हैं तथा दयालुता एवं सदाशयताका व्यवहार करते हैं। मनुष्यमे जितने भी गुण होते हैं, विनयभाव उसकी शोभाका संवर्धन करता है। विनयविहीन महापण्डित भी दाम्भिक, अहङ्कारी कह कर सर्वसाधारणकी निन्दाका पात्र बनता है। उसकी विद्या-बुद्धि घृणाके अग्निहोत्रमें भस्म हो जाती है।"

शपचकी बातें सुन कर शङ्करकी उत्सुकता और भी बढ़ती जाती थी। शङ्कर तो असाधारण विद्या-बुद्धि सम्पन्न थे। शपचके मनमेंसे और भी कुछ बाहर हो सके, इस विचारसे उन्होंने तत्त्वविद्याके सम्बन्ध मे उनसे पूछा। शपचने कहना आरम्भ किया कि,—"महात्मन्, केवल शास्त्रोंके अध्ययन मात्रसे ही प्रकृत ज्ञान उत्पन्न नहीं हो सकता, जब तक प्रकृत ज्ञान उत्पन्न न हो, तब तक विद्या-बुद्धिकी सार्थकता ही क्या है? अनेक शिष्य गुरुके निकट अनेक शास्त्रोंको पढते हैं और बडी-बड़ी राज सभाओंमें जाकर अपने पाण्डित्यकी छटा दिखाते हैं। ऐसे लोग सर्वसाधारणमें भी प्रशंसाके पात्र होते हैं। किन्तु प्रकृत ज्ञान प्राप्त न होनेके कारण वे पाण्डित्याभिमानी व्यक्ति गर्व और अहङ्कारके कारण अधःपतित हो जाते हैं। परन्तु वह प्रकृत पाण्डित्य क्या है? समदर्शिताकी प्राप्ति ही प्रकृत पाण्डित्य है। वही यथार्थ विद्वान् और प्रकृत पण्डित होते हैं, वे अवश्य समदर्शी भी होते हैं। उनकी भेद-बुद्धि नष्ट हो जाती है। वे गो, हस्ती, चाण्डाल और ब्राह्मण सबको समान दृष्टिसे देखते हैं। उनके लिये किसीमे कोई

पार्थक्य नहीं होता। मैं-तू-मेरा या तुम्हारा भेदभाव नष्ट हो जाता है। स्वामिन्, देखता हूं कि आप तो परम पण्डित प्रतीत होते हैं। फिर मेरे प्रति इतनी घृणा कैसी ? जरा विचार कर देखिये, घृणा और अवहेलना तथा रागद्वेष ये सब तो मोह जनित अज्ञान सम्भूत हैं। क्योंकि जो प्रकृत विद्वान होते हैं, वे ही आत्मज्ञ होते हैं। जो आत्मा के गूढ़ तत्वको जानते हैं वे किसीसे घृणा नहीं कर सकते। क्योंकि वे जानते हैं कि आत्मा तो सब भूतोंमें विराजमान है। जैसे पुष्प-समूह मालाके रूपमें ही आबद्ध रहता है, उसी प्रकारसे एकमात्र आत्मा सर्व भूतोंको अपनेमें अवस्थित रखता है। बाहर प्राण, सूत्र रूपमें आत्मा सबको धारण करता है। वह महान् आत्मा ही सबका एक मात्र आश्रय दण्ड स्वरूप है। इस परम तत्वको जिसने हृदयङ्गम कर लिया है, वही पण्डित है, प्रकृत ज्ञानी है। उसीकी विद्या-बुद्धि, उसी का अध्ययनाध्यापन सार्थक होता है। केवल शास्त्रोंको पढ़ने और उनका उच्च स्वरसे उच्चारण करनेसे कोई प्रकृत पण्डित वा ज्ञानी नहीं हो सकता। जो पाण्डित्य और ज्ञान मनुष्यका अन्धकारसे उद्धार नहीं कर सकता, उस पाण्डित्यका न कोई फल है, न उस ज्ञानका गौरव। क्योंकि मनुष्य श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त करनेकी बुद्धि रखता है, इस लिये इन प्राणियोंसे श्रेष्ठ है। नहीं तो पशु-पक्षियोंमें और ज्ञानहीन मनुष्योंमें कोई विभेद नहीं। गूढ़ आत्मतत्त्वकी अवगतिका नाम ही तत्वज्ञान है। जिसको वह तत्वज्ञान प्राप्त हो जाता है, वह अपने प्रतिबिम्बको सब भूतों एवं सब जीवोंमें देखता है। उससे उसकी भेद-बुद्धि तिरोहित हो जाती है। वह सबको अपनेमें और अपनेको सब में देखता है। उस तत्वज्ञानसे परम शान्ति प्राप्त होती है। उसके लिये न कोई घृणाका पात्र होता है न कृपाका। वह महत्-व्यक्ति निर्वैर होकर परमानन्दमें विहार करता है। वह परमात्मा वा ब्रह्मके यथार्थ

हित हो जाता है। मनुष्य जब तक आत्माके यथार्थ स्वरूपको नहीं जानता, तब तक वह मायागर्त-अन्धकूपमे मूढ़ होकर पड़ा रहता है। केवल तत्त्वज्ञान-आत्माका-स्वरूप जान लेने पर ही जीव आत्मोद्धार करनेमें समर्थ हो सकता है। जिसने आत्माका उद्धार कर लिया है, आत्माके तत्त्व-स्वरूपको समझ लिया है, वही एकमात्र निर्गुण-निर्विकार आत्माको सर्व भूतोंमे विराजमान देख सकता है। उसकी भेद-बुद्धि विनष्ट हो जाती है। वह सबमें अपनेको देखता है और अपनेको सबमें देखता है। फिर न वह किसीसे घृणा करता है न द्वेष और न प्रेम वा स्नेह।"

शङ्कर शपचके अपूर्व अमूल्य वाक्योंको सुन कर विमुग्ध और स्तम्भित हो गये, किन्तु उन्होंने हठात् देखा कि क्षणभरमें वह शपच-मूर्ति सहचरों और कुत्ते सहित अन्तर्ध्यान हो गयी! उसके परिवर्तन मे जटाभार-समाकीर्ण एक महत्काय दिव्य पुरुष उनके समक्ष उपस्थित है। उस दिव्य पुरुषके दर्शनसे शङ्कर अत्यन्त आश्चर्यान्वित हुए। दिव्य पुरुष अपने आशीर्वाद द्वारा शङ्कर को प्रसादित करके फिर अन्तर्हित हो गये। शङ्कर इस विचित्र भगवत्-लीला को देखते ही रह गये।



षोडश-परिच्छेद ।

वाममार्ग-लीला ।

एक वार शङ्कर मौन धारिणी अवन्तिकादेवीका दर्शन कर लौट रहे थे। मार्गमें श्रीवनी (शायद सीउनी) नामक नगरी पड़ी। श्रीवनी में ब्राह्मणोंका ही अधिक निवास था। वहांकी पवित्रताको देख कर शङ्करका इरादा हुआ कि कुछ दिन तक इस परम पवित्र स्थान में अधिवास किया जाय। शिष्योंसे परामर्श कर अन्तमें वहा ठहर गये। वहांके ब्राह्मण बड़े पण्डित, वेदपाठी और सदाचारी थे। उन सदाचारी ब्राह्मणोंके तप-प्रभावसे श्रीवनी परम पवित्र हो रही थी। चारों ओर घना जङ्गल था। तरु-लताओं पर नाना प्रकार के पुष्प और पत्ते शोभायमान थे। गो-दुग्ध की नदी वह रही थी। कभी दुर्भिक्ष नहीं होता था। आधि-व्याधि और महामारी तथा अकाल-मृत्युको लोग जानते तक न थे। प्राकृतिक शोभासे समस्त नगरी अमरपुरी का रूप धारण कर रही थी। यह सब कुछ उन वहां के अधिवासी ऋषिकल्प ब्रह्मण्य वेद-पाठी ब्राह्मणों के तप-प्रभाव से हो रहा था।

श्रीवनीकी रमणीयताको देख कर शङ्कर अपने शिष्यों सहित कुछ दिनके लिये वहां ठहर गये। वहाके विद्वान्-वेदपाठी ब्राह्मणोंने जिस समय सुना कि हमारी नगरीमें लोक-विश्रुत शङ्करका आगमन हुआ है, तो वे नाना प्रकार की उपहारोपयोगी वस्तुओंको लेकर शङ्करकी सेवामें उपस्थित हुए। शङ्करने उनकी सम्मान-रक्षाके लिये कुछ फल

अक्षत ले लिये और अन्यान्य सामग्रीको लौटाकर कहा कि,—"दरिद्रों और नग्नोंको बाट दीजिये। मैं तो आप लोगों की ब्रह्मनिष्ठा और वैदिकधर्म-प्रेमको देख कर ही परम परितुष्ट हो गया हूं। इन बहुमूल्य वस्तुओंकी न तो मुझे आवश्यकता है, न आपके लिये ही ये वाञ्छित हैं। क्योंकि ब्राह्मणों के लिये त्याग और सन्तोषसे बढ़ कर कोई वस्तु बहुमूल्य नहीं हो सकती।" शङ्करकी उपदेशपूर्ण बातोंको सुन कर श्रीवनी के विद्वान् पण्डित-ब्राह्मण, अत्यन्त प्रसन्न हुए और शङ्कर के आगमनको अपना अहोभाग्य समझा। शङ्कर कई दिन तक उस नगरीमें ठहरे रहे। वहांके विद्वान् ब्राह्मण गण, दलबद्ध होकर प्रतिदिन शङ्करकी सेवामें उपस्थित होते और नाना शास्त्रोंके गम्भीर उपदेश श्रवण कर मुग्ध हो जाते। श्रीवनीके प्रायः समस्त विद्वान् ब्राह्मण द्वैतवादी थे। परन्तु शङ्करके अद्भुत और अपूर्व तर्क और युक्तियोंको सुन कर अन्तमें उन सब लोगोंने भी शङ्करके विशुद्धाद्वैतवाद-मतको स्वीकार कर लिया।

श्रीवनीके सम्बन्धमें एक अद्भुत किम्वदन्ती प्रचरित है। कहते हैं कि,—श्रीवनीके एक धर्मनिष्ठ ब्राह्मणकी पत्नी अपने पतिके धर्म पर न चल कर कापालिकों द्वारा, कदाचारपूर्ण मतानुगामिनी हुई थी। उस समय भारतके प्रायः सभी छोटे-बड़े नगरोंमें दुष्ट-कदाचारी कापालिक लोग नाना रूप धारण कर अपने मतका प्रचार करते फिरते थे। उन्हें जहां भी अपना उल्लू सीधा होता दीखता, वे वहीं डेरा जमा देते और मठ मन्दिर स्थापित कर पाप-मार्गका अड्डा खड़ा करनेकी सतत चेष्टा करते। यदि कहीं सुविधा और सुयोग प्राप्त होता, तो किसी गृहस्थकी कुलकामिनी तकको फुसला कर अपनी दुरभिसन्धि साधन करनेकी चेष्टा करते। आज जैसे बङ्गालके देहातमें परम पावन वैष्णवधर्मका नाम लेकर वैष्णव लोग कुल-लक्ष्मियोंको फुसला कर ले जाते हैं, और

'नेड़ा-नेड़ी' का अभिनय कर हिन्दूसमाजको कलङ्क-कालिमासे कलुषित कर रहे हैं, उस समय भी समस्त भारतमें वामियों द्वारा तन्त्र-धर्मका नाम लेकर इसी प्रकारसे कुल—कामिनियोंको बहकाकर धर्म-भ्रष्ट किया जाता था। कापालिक लोग उस समय गांवों और नगरों से हट कर जरा दूर अपने अड्डे स्थापित करते थे। क्योंकि अपने पापाचारको छिपानेके लिये उन्हे एकान्त स्थान की नितान्त आवश्यकता होती थी। वे लोग प्रायः श्मशानके आसपास अथवा पर्वत-कन्दराओंमें अपने अड्डे स्थापित करते थे। उन्हे राजदण्ड और सामाजिक शासनका भी भय नहीं था। क्योंकि उनके मन्त्र-तन्त्रोंसे राजा और प्रजा सभी भयभीत रहते थे। सर्वसाधारण लोग समझते थे कि ये कापालिक लोग दैव-बलसे बलियान हैं। इनके द्वारा अनायास ही चाहे जो अनिष्ट हो सकता है। हां, उनसे किसी प्रकार का संस्रव और सम्पर्क न होने पाये, इसके लिये सभी लोग विशेष सावधान रहते थे। अनेक लोग उन्हें दैत्य-राक्षस समझ कर उन की नजरोंसे अपनेको बचाते रहते थे। वास्तवमें कापालिकों के क्रिया-कलाप और गतिविधि थे भी नितान्त अमानुषिक और पैशाचिक-भावापन्न।

इसी प्रकारसे एक भीषण कापालिकने श्रीवनीके समीपस्थ वनमें अपना अड्डा जमा रखा था। वह दुष्ट कापालिक नाना-वेश धारण करके उस ब्राह्मण-नगरीमें अपना उल्लू सीधा करने जाता। एक दिन वह उपरोक्त ब्राह्मणके घर पहुंचा। सुविधा और सुयोग पाकर उस दुष्टने उस ब्राह्मणकी पत्नीको वशीकरण मन्त्र-तन्त्र द्वारा किसी प्रकार से अपने वशमें कर लिया। फलस्वरूप उस कुलकामिनीने ग्रामस्थ-सदाचार सम्पन्न निष्ठावान् ब्राह्मणोंके आचार अनुष्ठानका परित्याग कर क्रूराचारपरायण कापालिक-पथ पर चलने का उपक्रम किया।

आचार्य शङ्कर उस समय श्रीवनोमें ही उपस्थित थे। उस कुलकामिनी ब्राह्मणीका पति, पत्नीके आचार-व्यवहारको देख कर अत्यन्त मर्माहत हुआ। किन्तु उसकी पत्नी कैसे कुपथगामिनी हुई, इसके मूल कारण का उसे कुछ भी पता न चला। सुतरां उसकी उत्कण्ठा और दुश्चिन्ता दिन पर दिन बढ़ती जाती थी। परन्तु अपने इस गुप्त और गर्हणीय-रहस्यको वह एकाएक किसीके सामने प्रकट भी नहीं कर सकता था। निदान उसके मनका उद्वेग क्रमशः बढ़ने लगा। वह नाना प्रकारसे अपनी पत्नीको समझाता-बुझाता और इस बातकी चेष्टा करता, जिससे उसकी मति-गतिका परिवर्तन हो जाय। किन्तु दुष्ट कापालिकका उस ब्राह्मण-रमणी पर इतना अधिक प्रभाव पड़ गया था कि ब्राह्मण किसी प्रकारसे भी चेष्टा करने पर सफल-प्रयास न हो सका। तब अन्तमे नाना प्रकारसे ताड़ना और मार्जना करके पत्नी को भयभीत करने लगा। परन्तु उसकी पत्नी ने इस पर भ्रू-क्षेप भी न किया। वह कापालिक-परिचालित पथ पर यथापूर्व चलती रही। तब पत्नीकी गतिविधिको देख कर ब्राह्मणका हृदय निदारुण व्यथाका अनुभव करने लगा। अन्तमें धैर्य नष्ट होने पर उसने समस्त गाथा एक आत्मीयके सम्मुख स्पष्टरूपसे कह सुनायी। उसने उस आत्मीय से कहा,—"भाई, मैं बड़ा विपद्ग्रस्त हू। हम लोग सदासे वैदिक धर्मके नितान्त अनुगत चले आते हैं। परम्परासे हमारा धम यही वैदिकधर्म चला आया है। विपरीत पथ वा विरुद्ध मतका अनुवर्तन होनेसे कुल-धर्मसे भ्रष्ट होना पडता है। क्योंकि वेदविहित कर्म ही हमारा एकमात्र कुल-धम है। उसीके अनुसार हमारे समस्त क्रियाकलाप होने चाहिये। वही हमारा प्रेय और श्रेय कर्म है। हमारे ग्रामका समस्त ब्राह्मण-समाज सदासे इसी धर्मका अनुयायी रहा है। इसीलिये हमारा यह ग्राम अग्निहोत्रके धूम्रसे समाच्छन्न रहता है और साम-ऋक् आदि



शङ्करके समयमें वामियों द्वारा अश्वमेध-यज्ञका एक रोमाञ्चकारी दृश्य।

वेदोंके दात्त-अनुदात्त स्वरोंसे मुखरित होता रहता है। इसीलिये यहां के वेदज्ञ वेदपाठी ब्राह्मण, ऋषिकल्प समझे जाते हैं। इसी प्रकारसे पुरचारिणी महिलायें भी पुरुषोंकी अनुवर्तिनी होकर सनातन वैदिक धर्मका पालन करती चली आती है।" इसके बाद दुःख और शोकके आवेगसे रुद्धकण्ठ होकर ब्राह्मणने कहा,—"भाई, आज उसी परम पवित्र दुर्लभ ब्राह्मण-कुलमें मेरी ऐसी दुर्गति कैसे सङ्घटित हुई?"

आत्मीय ब्राह्मण अत्यन्त सदाशय महत्प्रकृति सम्पन्न, श्रेष्ठ पुरुष था। उसने प्रवोध-प्रदानके छलसे कहना आरम्भ किया,—"भाई, तुमने यह बात ठीक ही कही है कि हमारी ब्राह्मण-पुरी ऋषि-पुरी है। हम लोगोंमें जो निष्ठावान ब्राह्मण हैं, वे वास्तवमें ऋषि-कल्प हैं और उनका प्रभाव मूर्तिवान् प्रभाकरकी तरहसे समुज्ज्वल है। जब ये वेद-पाठी ब्राह्मग अग्निहोत्र करते हैं, तब ऐसा प्रतीत होता है कि सच-मुच देवता गण स्वर्गपुरीसे मर्त्यलोकमें आकर आहूति ग्रहण कर रहे हैं और आशीर्वादमें योग भी प्रदान करते हैं। किन्तु महात्यागी ब्राह्मण गण, दिव्य-ज्ञानके सिवा और किसी भी सुखभोग की इच्छा नहीं रखते। केवल देवगणोंके मानसिक आशीर्वाद और शुभ इच्छासे ही परितुष्ट रहते हैं। यह क्षणभंगुर जीवन उनके निकट सदा ही निस्सार और त्याज्य है। उनकी वासना किसी सांसारिक-सुखभोग में नहीं है। केवल आत्म-चिन्तन, आत्म-ध्यान और आत्माकी सद्-गति ही एकमात्र अनुष्ठेय महाधर्म और परम पवित्र व्रत है। इसी-लिये हमारे इस ब्राह्मण-समाजकी इतनी पूजा होती है। भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें कहा है कि,—'योगभ्रष्ट इस लोक या परलोकमे कहीं भी विनष्ट नहीं होते। क्योंकि शुभकर्मों का फल दुर्गति-भोग नहीं होता। योगभ्रष्ट लोग पुण्यलोकमे वास कर पुनः श्रीमानोंके घरमें जन्म लेते हैं, या ज्ञानवान् योगियोंके कुलमें जन्म लेते हैं। इस

प्रकारका जन्म अति दुर्लभ है। क्योंकि इसी प्रकारके जन्म-जन्मान्तरोंमें पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर योगी जन परम गतिको प्राप्त करते हैं। तपस्वी, ज्ञानी और कर्मीकी अपेक्षा योगी ही श्रेष्ठ होता है। धनुर्धर अर्जुनको योगी होनेका ही भगवान्‌ने उपदेश दिया था। हमारे इस ग्रामके ब्राह्मण गण भी योगभ्रष्ट हैं। यह जन्म बडा दुर्लभ है। ऐसे कुलमें यदि कोई धर्म विघातक कार्य अनुष्ठित हो, तो वास्तवमे ही कुलनाशक होता है। मालूम होता है तुम्हारे परिवारमे भी कोई ऐसी ही दुर्घटना घटित हुई है। इसीलिये तुम इतने व्याकुल हो और तुम्हारे मस्तक पर विषाद-रेखा स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रही है। परन्तु तुम तो भाई, कभी विषय-वासनाओंमें आसक्त नहीं होते। धर्मावलम्बन ही तुम्हारा एकमात्र अनुष्ठेय कार्य है। फिर ऐसी क्या विपद् उपस्थित हो गयी, जिससे तुम इतने व्याकुल हो रहे हो?"

अत्यन्त व्याकुल कण्ठसे ब्राह्मणने उत्तरमें कहा,—"भाई, तुम तो जानते हो मेरी पत्नी सदासे वैदिकधर्मका पालन करती चली आती है। कुछ दिनकी बात है कि हमारे घर एक अतिथि साधुका आगमन हुआ। अतिथि और साधु समझ कर हम दोनोंने यथाविधि उसका आतिथ्य सत्कार किया। उसने भी साधु अभ्यागतोचित रीति से हमारा कुशल-मङ्गल पूछा। उसकी बाह्य-मूर्तिसे त्यागके भाव स्पष्ट झलकते थे। उसके आकार-प्रकार और आचरण तथा गतिविधि को देख कर ऐसा प्रतीत होता था, जैसे कि वह कोई शिवभक्त हो। हमने उसकी गतिविधिको देख कर अपने भाग्यको सराहा कि विना बुलाये ऐसे महात्माके दर्शन हुए। वह कई दिन तक हमारे घर पर रहा। अन्तिम दिन उसने हमारे हाथ का बना भोजन ग्रहण नहीं किया। हमने उसकी इच्छानुसार आटा-दाल घृतादि उसको दे दिया। दिन भर वह मौन रह कर कुछ जप-तप करता रहा। रात्रिको उसने

नरकंकाल और अस्थिमाला गलेमें डाल कर ऐन्द्रजालिकोंकी तरहसे होम किया और घरके कुशल-क्षेमके लिये बाध्य करके हमको कुछ चरणामृतसा दिया। इस प्रकारके क्रियाकलापोंको देख कर हमें कुछ सन्देह भी हुआ। परन्तु साधु समझ कर हम लोग चुप रहे। अन्तमें प्रातःकाल उठ कर बिना कुछ कहे-सुने ही वह चला गया। परन्तु उस के उस पैशाचिक कृत्यसे मेरी पत्नीका मन उसी दिनसे ऐसा विपरीत पथगामी और उद्भ्रान्त हो गया है कि मैं भयङ्कर विपदमें पड़ गया हूं।"

ब्राह्मणकी बात सुन कर पहले तो वह आत्मीय कुछ चकित हुआ और फिर बोला,—"हां ठीक है, मैं समझ गया। हमारे ग्रामके निकटस्थ वनमें एक कापालिक डेरा डाले पड़ा है। हो न हो यह उसीकी शैतानी हैं। परन्तु कोई भयकी बात नहीं है। हमारे ग्राम के पास बाहर जो एक महापुरुष ठहरे हुए हैं, वे साक्षात् देवादिदेव महादेवके स्वरूप हैं। उनकी शरणमें जानेसे तुम्हारे समस्त पाप-तापोंका अवश्य नाश हो जायगा। वे असाधारण महापुरुष हैं। वे अवश्य ही इस सङ्कटसे उद्धार कर देंगे।"

उत्तरमें ब्राह्मणने कहा,—"भाई, मैं तो पतित, परितप्त, अधम व्यक्ति हूं। उन महापुरुषके सामने जाकर कैसे उपस्थित हूं ?"

आत्मीयने कहा,—"महापुरुषके सामने जानेसे कोई हानि और चिन्ता नहीं। वे तो साक्षात् पाप-तापहारी हैं।"

अन्तमें दोनों ब्राह्मणोंने शङ्करकी सेवामें पहुंच कर प्रणाम किया और सब घटना आद्योपान्त कह सुनाई। शङ्कर पहले तो कुछ चकित हुए, पीछे ब्राह्मणोंकी धर्मनिष्ठा और सत्यवादिता पर मुग्ध होकर बोले,—"जाओ वत्स, जाओ! भगवान्‌का नाम स्मरण करो और उनकी शरणमें जाओ! वे अवश्य कल्याण करेंगे।" शङ्करको प्रणाम

कर दोनों ब्राह्मण घर लौटे और उन्होंने आश्चर्यसे चकित होकर देखा कि सचमुच ही शङ्करकी वाणीके प्रभावसे उस ब्राह्मण-कुल-कामिनी की मति गति फिर यथापूर्व हो गयी है। इस दृश्यको देख कर वे बड़े प्रसन्न हुए।

उधर उस कापालिकको भी इस घटनाका पता लगा। वह शङ्कर की हत्या करनेके लिये गुप्त रूपसे उनका पीछा करने लगा। लोगों का कहना है कि वही यह कापालिक उग्र भैरव कापालिक था, जिस का हनन पीछे शङ्करके एक शिष्यने किया था। अगले परिच्छेदमे उस का विशद वर्णन किया गया है।





उग्र भैरव कापालिकका शङ्करके पीछे घूमना ।

सप्तदश-परिच्छेद ।

उग्रभैरव कापालिककी हत्या ।

उग्र भैरव कापालिकके कार्यकलापोंका कुछ उल्लेख हम इससे पहले परिच्छेदमें कर आये हैं। शङ्करके यश-सौरभको देख कर उग्र-भैरवका हृदय प्रतिहिंसासे पूर्ण हो उठा। वह शङ्करके अद्भुत प्रभाव, एवं अपने कृत्योंको पोल खुलते देख कर पागलसा हो उठा था। शङ्कर के श्रीवनीसे प्रस्थान करने पर वनों और पर्वतों पर गुप्त रूपसे भ्रमण करता हुआ वह शङ्करका पीछा करता रहा। अन्तमें उसने इस बात का दृढ़ निश्चय कर लिया कि शङ्करके शिरको काट कर बलिदान करनेसे देवी प्रसन्न होंगी। सुतरां वह गुप्तरूपसे शङ्कर का पीछा करने लगा।

एक बार शङ्कर श्रीपर्वत पर शिष्यों सहित डेरा डाले पड़े थे। श्रीपर्वतकी प्राकृतिक शोभा विलक्षण थी। इसी लिये शङ्कर कुछ दिन के लिये वहां ठहर गये और वहीं ध्यान-धारणा तथा अध्ययनाध्यापन का काम होने लगा। उग्रभैरव कापालिक तबसे बराबर उनका पीछा कर ही रहा था। जब उसकी इच्छा गुप्त रूपसे पूर्ण न हुई, तो वह कपट रूप धारण कर शङ्करके पास आने जाने लगा। उग्र भैरवकी आकृति प्रकृति उसके नामको सार्थक करती थी। उसका स्वभाव जैसा उग्र था, वैसी ही उसकी उग्र मूर्ति थी। साधारण लोग उसको देखकर भीत और चञ्चल हो उठते थे। उसके कर्कश कण्ठस्वरको सुन कर आशंकित हो जाते थे। कुछ दिनोंसे श्रीपर्वतकी एक कन्दरामें अपना

अड्डा स्थापित कर उग्र प्रकृति उग्र भैरव अपने भीषण और वीभत्स धर्म-कर्मके आचरणमें प्रवृत्त हो रहा था। अन्तमें उग्र भैरवने उपदेश श्रवणका बहाना करके शङ्करके पास आवागमन आरम्भ कर दिया। सुरापानके प्रभावसे उसका चित्त सदा विह्वल रहता था। उसके रक्त वर्ण नेत्रोंको देख कर और लड़खड़ाती जबानसे निकले हुए वाक्यों को सुन कर भय प्रतीत होता था। परन्तु महामति ब्रह्मज्ञानी शङ्कर सब कुछ जान कर भी उससे घृणा नहीं करते थे। क्योंकि वे तो प्राणी मात्रके हितैषी थे। न किसीसे घृणा प्रकट करते थे, न किसी पर प्रेम। कापालिक उग्र भैरव बीच-बीचमें आकर शङ्करसे अनेक प्रकारके तर्क-वितर्क करता और अपने धर्मकी सत्यता एवं सारवत्ता प्रकट करता। शङ्कर उसकी बातोंको सुन कर उसे यथार्थ सत्य धर्मका उपदेश देते। इसी प्रकारसे धीरे-धीरे घनिष्ठता बढ़ने लगी। शङ्करका तो आविर्भाव ही सत्य-धर्मकी पुनःस्थापनाके लिये हुआ था। वे प्रायः सभी ऐसे लोगोंको धर्मपथ पर लानेकी चेष्टा करते थे, जो अधर्मको धर्म और असत्यको सत्य कह कर उसे लोगोंकी दृष्टिमें धर्ममार्ग बनाये हुए थे। अनेक जिज्ञासु लोग जो यथार्थमे सत्यासत्यका निर्णय करने शङ्करकी सेवामें उपस्थित होते. वे अपनी शङ्काओंका समाधान सुन कर परितृप्त होते और अन्तमें शङ्करके अद्वैत मतको ग्रहण करते। केवल अन्ध तमसाच्छन्न हतभाग्य जो महान् धर्मके मर्मको हृदयमें धारण न कर सकते, वे भ्रान्त पथके ही पथिक रहते। इसी प्रकारसे अनेक भ्रष्टाचारी, कदाचार-परायण वामी और कापालिक भी केवल वितण्डा करनेके लिये शङ्करके पास आते, तर्क वितर्क तथा वितण्डावाद करके खाली हाथ लौट जाते। दुष्ट स्वभाव कुपथ-गामी उग्रभैरव भी आता और शङ्करकी धर्मपूर्ण बातोंको एक कानसे सुन कर दूसरे कानसे निकाल देता। अन्तमें उस हतभाग्यने सोचा कि यदि शङ्कर

जैसे महाज्ञानी पुरुषकी बलि, देवीको भेंट की जाय तो देवी अत्यन्त प्रसन्न होंगी। इस बातको उग्र भैरवने यहां तक सोच डाला कि देवी की भी यही इच्छा और आज्ञा है, इसी लिये मेरे मनमें इसकी कल्पना हुई है! इसी उद्देश्यको लेकर उग्र भैरवने आवागमनको क्रमशः और भी बढ़ा दिया। परन्तु आचार्य शङ्कर सदा ही सतर्क और शिष्य-मण्डली द्वारा परिवृत रहते थे। इसलिये निभृत-निर्जन स्थानमें शङ्कर का वध करके बलि प्रदान करना नितान्त असम्भव था। अन्तमें उसने एक और निश्चय कर डाला। वह जानता था कि आचार्य शङ्कर परम धार्मिक महानुभाव और सदाशय हैं और धर्मके सम्बन्धमें तो और भी उदार प्रकृति हैं। यदि अपनी इच्छा प्रकट कर उनसे बलि-दानकी स्वीकृतिके लिये अनुरोध किया जाय, तो वे कभी उपेक्षा नहीं करेंगे। अतः गुप्तरूपसे बलिप्रदान करनेकी चेष्टा करना व्यर्थ है। स्पष्ट रूपसे उनके सामने आत्मनिवेदन करके स्वीकृति ले लेनी ही ठीक होगी। इस प्रकारसे विचार स्थिर करके अपने प्रस्तावको आचार्यके सामने उपस्थित करनेके लिये सुयोग और सुविधा देखने लगा।

एक दिन शिष्य गण सन्ध्यावंदनादिसे निवृत होनेके लिये किसी जलाशय पर गये हुए थे। आश्रममे एकाकी शङ्कर बैठे आत्मचिन्तन कर रहे थे। उनके पास और कोई नहीं था। उग्र भैरव तो सदा ही सुयोगकी ताकमे रहता था। वह सुविधा देख आचार्यदेवके पास उप-स्थित हुआ। शङ्कर सभीके साथ उदारताका व्यवहार करते थे। उग्र भैरवका आचरण यद्यपि अत्यन्त कलुषित था, तथापि शङ्कर समझते थे कि कभी न कभी ठीक मार्ग पर आ ही जायगा। शङ्करने उग्र भैरवको देख कर एक आसन पर बैठनेका संकेत किया। उसके बैठ जाने पर शङ्करने उससे कुशल मङ्गल पूछा। कलुषित हृदय उग्रभैरवने कहा कि हां सब कुशल है। इस प्रकारसे कह कर वह कुछ देर तक

मौनावलम्बन किये रहा। तव क्रूरमति भैरवको इस प्रकारसे उदास और खिन्न देख कर आचार्य शङ्करने पूछा कि—"आज ऐसे उदास और खिन्न क्यों हो रहे हो ? आप तो स्वार्थत्यागी पुरुष हैं। आपकी गतिविधि और आचरणको देख कर स्पष्ट मालूम होता है, कि आप यथार्थ संन्यासी हैं। संसारमे आपकी जरा भी आसक्ति नहीं है। विषय-सम्पद स्त्री-पुत्रादि भी आपके नहीं, फिर यह खिन्नता क्यों है ? जिसकी संसारकी किसी वस्तुमें आसक्ति नहीं, उसकी अशान्ति असन्तोष और खिन्नताका तो कोई कारण ही नहीं। क्योंकि वह तो स्पष्ट देखता है कि यह समस्त सांसारिक व्यापार मिथ्या है। व्यावहारिक भावसे यदि इसके अस्तित्वको मान भी लिया जाय, तो भी पारमार्थिक भावसे उसका कोई तत्त्व ही नहीं है। शीत-उष्ण-सुख-दुःख माया व्यतीत उसके लिये और कुछ भी नहीं। इसके अतिरिक्त दैहिक अवस्था, शारीरिक दृढ़ता देख कर यह भी मनमे नहीं होता कि भूत-प्रेतादि ही आपको प्रपीड़ित कर सकते हैं। तब फिर इस विषण्णताका और क्या कारण है ?"

प्रसन्न हो कापालिक बोला,—"आचार्य, आप परमज्ञानी पुरुष हैं। आप तो सभी गूढ़ तत्वोंको सम्यक् रूपसे जानते हैं। धर्म ही मनुष्यके जीवनके लिये परम शान्तिप्रद वस्तु है। इसीलिये मानव जीवन ही सबकी अपेक्षा सर्वश्रेष्ठ है। ऐसे श्रेष्ठ मानव जीवनको धारण करके भी जो धर्मसाधन न कर सके, वह नितान्त हतभाग्य तथा पापी है।"

कापालिककी बात सुन कर शङ्कर बोले,—"धर्मने ही जगत्को धारण कर रखा है। धर्म ही विश्वकी उत्पत्ति और संस्थितिका कारण है। यह विश्व माया-भ्रममें प्रतिभासित हो रहा है। विश्व ही संसारकी प्रकटित प्रतिमूर्ति है। मनुष्यके त्रिविध दुःखोंका मूल कारण भी स्थूल

विश्व और संसार ही है। यह संसार ही भेद और इन्द्रियादिकोंके सम्पर्क और संसर्गमें आकर देहोके देह और इन्द्रियादिकोंमें अशान्ति और चञ्चलता उत्पन्न करता है। उसीसे जीवमें भोग-विलासकी वासना उत्पन्न होती है। वासना और अशान्ति दुखयन्त्रणाका हेतु· भूत उपादान है। एकमात्र धर्मकी साधनासे ही मनुष्य सांसारिक विषय-वासनाओंसे निष्कृति पाकर महामुक्तिका अधिकारी हो सकता है। धर्म जैसे संसारको धारण किये हुए है और उसकी संस्थिति तथा संरक्षण किये हुए है, उसी प्रकारसे जो मनुष्य धर्मका अवलम्बन करता है, धर्म उसके लिये दण्ड स्वरूप है—उन्नति और उत्कर्षणका पथ प्रदर्शन करता है। इतर जीव सब सृष्टि-प्रवाहकी रक्षाके लिये उत्पन्न होते हैं, और मनुष्य केवल धर्मरक्षाके लिये।"

कापालिक बोला,—"धर्म ही परम सारतत्त्व है, किन्तु बहुत मनुष्य प्रकृत धर्मके स्वरूप और उसके गूढ़ मर्मको उपलब्ध नहीं कर सकते।" उत्तरमें शङ्कर बोले,—"इसी भ्रमके कारण तो संसारमें धर्ममतको लेकर इतना पार्थक्य है। उन विभिन्न पथोंके एकत्व साधनका कार्य मनुष्यके लिये नितान्त असम्भव मालूम होता है। अधिकारी-भेदसे धर्मकी धारणा, धर्मका मर्म, धर्मका स्वरूप यद्यपि अलग है, परन्तु सबका अन्तिम फल एक ही है।"

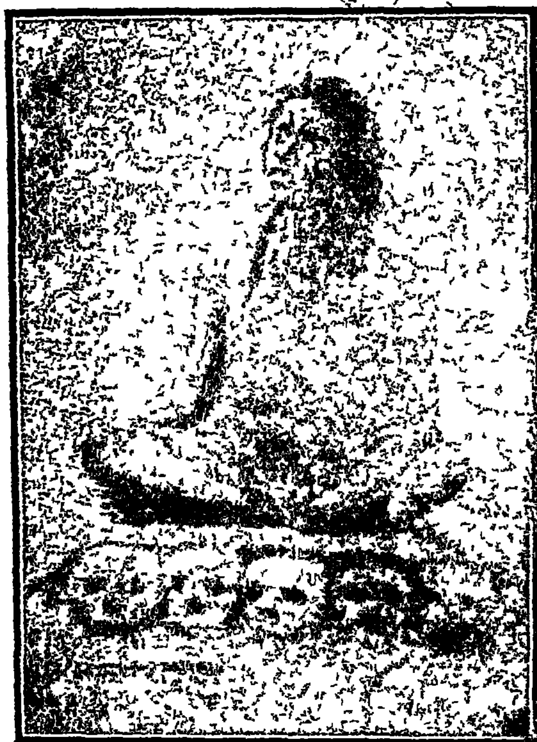
कापालिक बोला,—"कलिमें एकमात्र धर्म, तन्त्रोक्त धर्म ही सत्य सार-धर्म है। स्वयं सदाशिव द्वारा उपदिष्ट, प्रचारित हुआ है, वही धर्मसाधकके लिये अवलम्बनीय है। उस परम धर्मको परित्याग कर जो मूढ़ अन्य धर्मपथका अवलम्बन करता है, वह हतभाग्य सुशीतल वारिकी कल्पना कर मरुभूमिमें मरीचिकाके प्रति प्रधावित होता है। एक तो घोर कलियुगके प्रादुर्भावमें समुदय संसार विषम तमसाच्छन्न इस पर धर्मके सम्बन्धमें इस प्रकारसे विकट पार्थक्य और विप्लव।

ऐसी दशामें मनुष्यके उद्धारकी कल्पना करना नितान्त असम्भव है। ज्ञात होता है कि देवादिदेव महादेवने कलिके पतित और परितप्त जीवोंके उद्धारके लिये ही जैसे संक्षेपमें धर्मकी गति और गूढ़ सार-तत्त्वका उपदेश दिया है, वैसे ही सहजमें धर्मसाधनके लिये सरल सुख-मय पथ प्रदर्शित किया है। उसी सरल पथका अवलम्बन कर इस सङ्कट-सङ्कुल युगके मूढ़ अन्ध मानव, महामङ्गलमय शिवलोकको लाभ कर जीवन और जन्म सफल कर सकते हैं।"

उत्तरमें शङ्करने कहा,—"देवादिदेव कथित धर्म ही प्रकृत मोक्षका पथ है। वे स्वयं मोक्षदाता जगत्-त्राता हैं। जिस धर्मतत्वको उन्होंने प्रकट किया है, वही तत्व ही महानिष्ठावान्‌के लिये एकमात्र उपाय है। किन्तु संसारके बहुतसे शिवभक्त-देवादिदेवके उपदेशको समझ नहीं सकते। न उसका अनुवर्तन ही कर सकते हैं। इसी लिये शैव लोगोंमें अनेक सम्प्रदायोंकी सृष्टि हुई है। परन्तु महादेवका यह कदापि उद्देश्य नहीं है। क्योंकि प्रकृत मोक्ष धर्म एक को छोड़ कर दो कभी हो ही नहीं सकता। अन्तमे जैसे सबका पथ एक भावमें सम्मिलित हो जाता है, उसी प्रकारसे धर्मके अनेक पथ भी अन्तमें निर्वाण पथमें जाकर परिसमाप्त हो जाते हैं।"

उग्र भैरवने कहा,—"बेशक अन्तमें शैव मतकी सभी प्रणालिया एकत्वमें सम्मिलित हो जाती हैं। आदिमें प्रकृति, गुण और कर्मके भेदसे उसमें भावोंका पार्थक्य होता है। परन्तु सब मनुष्योंका ज्ञान एक समान नहीं होता। व्यक्तिभेद और पात्रापात्रके अनुसार ज्ञानका तारतम्य अवश्य घटित होता है। जो जैसा कर्मी और गुणवान होता है, वैसा ही उसके लिये धर्मपथ निर्धारित होना चाहिये।"

आचार्य शङ्करने कहा,—"चाहे कोई कुछ कहे। महादेव कथित और निरूपित धर्म, मोक्षप्रद परम धर्म है। वही परम धर्म महानिर्वाण



कापालिकोंकी उपासनाका दृश्य ।

का सार-भूत उपाय और उपादान है और एकमात्र अद्वैत तत्त्व ही उस उपादानका प्रकृत स्वरूप तत्त्व है। आत्मज्ञान और आत्मानुभूति द्वारा अद्वैत तत्त्व प्रवेश करता है।"

कापालिकने कहा,—"यह तो शुष्क-ज्ञान पथ का अविशुद्ध सिद्धान्त है। इस सिद्धान्तके अनुसार मनुष्य कभी भी परम धर्मके कल्याण-पथ पर गमन नहीं कर सकता। परा-प्रकृति सकल कल्याणों की आकर स्वरूपिणी देवी ही सर्वसिद्धि-दातृ है। एकमात्र उसके अनुग्रह और उसके प्रसादको प्राप्त करके ही मानव चारों फलों को पा सकता है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—ये सब महादेवीके करायत्त हैं। वे जिसके प्रति सदया होती हैं, वह इस जीवनमें परम सुखभोग करता है, और परलोकमें महामुक्तिको प्राप्त करता है। भगवती देवी उस अनुग्रह वितणके लिये सदा आह्वान करती हैं। देवीकी गूढ़ पूजाका उपादान प्रकरण गुह्यसे भी गुह्यतर है। बलि-उपहार देवीकी पूजाका उपादानोंमें सर्वश्रेष्ठ उपादान है।"

शङ्करने कापालिककी बातको सुन कर एक वार उसकी विचित्र भीषण आकृतिको देखा। फिर बोले,—"केवल वाह्यपूजा और बलि-प्रदानसे देवी कभी परितुष्ट नहीं हो सकती। यह भ्रमात्मक विचार है। देवी तो महाशक्ति आद्याशक्तिके रूपमें संपूजिता हैं। वे साक्षात ज्ञानमयी ज्ञानसरूपिणी हैं। केवल द्रव्य यज्ञसे उनकी परितुष्टि नहीं हो सकती। ज्ञानयज्ञ अर्चना द्वारा ही उनको परितुष्ट किया जा सकता है। बिना इसके न वे प्रसन्न हो सकती हैं, न साक्षात्कार हो सकता। बिना अद्वैतत्त्व लाभ किये महामुक्ति नहीं हो सकती। इसीसे देवी भी प्रसन्न होती हैं। अज्ञानियोंके अज्ञानसे वे कभी सन्तुष्ट नहीं हो सकतीं।"

कापालिक गर्ज कर बोला,—"यह सब भ्रान्तिमय कल्पनामात्र है। इससे प्रकृत धर्म-साधना नहीं हो सकती। हां, धर्म-विडम्बना हो

सकती है। जो व्यक्ति सामान्य भूत-शुद्धि, अङ्गन्यास मुद्रादि साधन करनेमें अक्षम है, वह स्थूल तत्त्वके लाभ साधन द्वारा आत्मतत्त्व उपलब्ध नहीं कर सकता। इसलिये वह चाहे जैसी साधना करे, उसे सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती। कलिमें उक्त विहित-साधना ही सर्वश्रेष्ठ साधना है। वह साधना सुलभ है, सरल है। यही समझ कर मैं इस पथका पथिक हुआ हूं। यद्यपि कलिकालमें धर्मका यह पथ अति सरल और उपयुक्त है, परन्तु इसकी वहुतसी प्रक्रिया-प्रणाली अतीव कठिन और दुःसाध्य हैं। परन्तु उसमें सफलता प्राप्त होने पर सिद्धि निश्चित है। इसी लिये प्रार्थी होकर मैं आपके पास आया हूं। आप अनुग्रह कर मेरी प्रार्थनाको स्वीकार कीजिये। आप स्वभावसे ही दयावान और ज्ञानवान् हैं। आपके लिये सभी प्रिय हैं। आपके लिये न कोई द्वेषका पात्र है न घृणाका। आप समदर्शी और सबके हितकारी हैं। धर्म-संरक्षण और धर्म-प्रतिपालन, आपके जीवनका एकमात्र महाव्रत है। मेरे धर्म-साधनमें मुझे जिससे सिद्धि प्राप्त हो, उसमें मेरी सहायता कीजिये।"

उत्तरमें शङ्करने कहा,—"तुम्हारे धर्मके अनुष्ठानका क्या रूप है। मैं उसमें कैसे क्या सहायक हो सकता हूं। जरा स्पष्ट करके कहिये।" उत्तरमें कापालिकने कहा,—"आचार्य, आप परम वुद्धिमान् हैं। आप सब जानते हैं। जीव-बलि द्वारा देवीको परितुष्ट करना हमारे धर्मका निगूढ़ वीज स्वरूप है। जीवोंमें भी नर-बलि सर्वश्रेष्ठ है। उससे सिद्धि अवश्यम्भावी और अनिवार्य होती है। नरोंमे भी जो पवित्र है, ज्ञानी है, उसके बलि-प्रदानसे देवी अधिक परितुष्ट होती है। इसमें मेरा ही लाभ नहीं है, जिसको बलि दिया जायगा, परलोकमें उसकी भी परम गति होगी। इसलिये मेरी आपके निकट प्रार्थना है कि बलिरूपमे आप स्वयं देवीकी प्रीतिके साधन बनिये। इससे मुझे तो

सिद्धि प्राप्त होगी ही, परन्तु आपका भी परलोक परम मङ्गल और कल्याणमय होगा।"

शङ्कर अत्यन्त विस्मित होकर बोले,—"यह कैसा धर्म है? इस धर्मकी महत्ता मनुष्य बुद्धिसे अतीत है। जीवके जीवन, मनुष्य के जीवनकी हत्या करके जिस निष्ठुर धर्मका अनुष्ठान किया जाता है, वह धर्म नहीं है। दम्भ है, पाखण्ड है और धर्मकी विडम्बना है। ऐसे धर्मके साधनसे न इस लोकमें गति हो सकती है, न परलोकमें मङ्गल। जो देवी जीवोंकी रचना करती है, संस्थिति और रक्षण करती है, वही संहार करनेका अधिकार रखती है। और किसीको उन जीवोंकी हत्या करनेका जरा भी अधिकार नहीं है। इस प्रकारकी जीवहत्यासे सिवा महापाप के कभी कोई साधन नहीं हो सकता। विचार कर देखो जीवन सभीको प्रिय है। कोई भी स्वेच्छासे प्रियतम प्राणोंको विसर्जित नहीं करना चाहता। अति सामान्य कीट-पतङ्गसे लेकर मनुष्य, देव, दानव सभी जीवन-रक्षाके लिये व्यतिव्यस्त हैं। कीट-पतङ्ग, पशु-पक्षीको जब कोई मारने जाता है, तो वे भाग कर प्राणोंकी रक्षा करते हैं। बहुतसे लोग कहते हैं कि उन्हे स्त्री-पुत्र आदि आत्मीय प्राणोंसे प्रिय हैं। परन्तु यह कितनी भ्रमात्मक धारणा है। क्योंकि जब जीवन पर कोई सङ्कट उपस्थित होता है, तो मनुष्य प्रिय से प्रिय आत्मीयोंको भी परित्याग देता है। अपने जीवनकी रक्षाके लिये भाग खड़ा होता है। बिना जीवनके धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन में से कोई सिद्ध नहीं हो सकता। हां, साधु पुरुषके लिये जीवन और मृत्यु समान है। क्योंकि न तो संसारकी सुख-सामग्री उसके लिये सुख और शान्तिप्रद हैं, न मृत्युका भय दुःखप्रद, परन्तु ऐसे साधु विरले ही निकलते हैं। इसके सिवा और एक बात है। देवी भगवती जो जीवोंको जन्म देती है, पालन करती है, वह कभी यह इच्छा नहीं

करनी कि उसके सामने जीवोंका बलिदान किया जाय। उस देवीके लिये मनुष्योंका बलिदान करने वाला पुरुष भी देवीको सन्तुष्ट नहीं करता, किन्तु रुष्ट ही करता है। तुम मुझे देवीके सामने बलिदान करके भला क्या सिद्धि प्राप्त करोगे ?"

कापालिक बोला,—हमारे साध्य-धर्मका मर्म अत्यन्त कठिन और दुर्ज्ञेय है। उस तत्वको कर्मी और अधिकारी ही समझ सकता है। आप यदि इस पथके पथिक होते तो सरलतासे समझ सकते। परन्तु जब कि आप अन्य मतावलम्बी हैं, तो आपको उसका मर्म कैसे समझाया जा सकता है। और विशेष कहनेकी कुछ आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। क्योंकि मालूम होता है आपने हमारे अनुष्ठेय धर्मकी सत्यता और सारवत्ताको समझ लिया है। आप न उसको ग्रहण करेंगे, न उस पर चलेंगे।"

शङ्करने कहा,—"ज्ञानी साधु जनोंका एक ही पथ होता है। वह पथ कैवल्य प्रद एकमात्र पथ-अद्वैत पथ है। अद्वैत पथके मर्मको समझ लेनेपर मनुष्य महामुक्तिका अधिकारी हो जाता है। अद्वैत धर्म ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है। जब मनुष्य सर्वभूतोंके प्रति समदर्शी हो जाता है, तब आत्माके प्रकृत स्वरूपको समझनेमे समर्थ होता है। क्योंकि तब वह यह समझ लेता है कि वास्तवमें संसारमें मेरा अपना कुछ भी नहीं। यहा तक कि शरीर, मन, बुद्धि भी मेरी अपनी नहीं है। तब उसके मनमें स्वयं यह प्रश्न उपस्थित होता है कि तब फिर 'मैं कौन हूं ?' अन्तमे इसी सूक्ष्म सूत्र द्वारा आत्मतत्त्वका उसको ज्ञान होता है। वह समझने लगता है कि आनन्दस्वरूप ब्रह्म ही उसका स्वरूप है। वह आत्मरूपमे सबमें विराजमान है। इस प्रकारसे भगवान्‌की सर्व-व्यापकताका बोध होनेसे प्रतिहिंसा और द्वेष नष्ट होते हैं। न वह किसीको वध करनेकी इच्छा करता है, न फिर उसे पानेकी ही इच्छा करता है।

शङ्करकी ज्ञान-गम्भीर बात सुन कर कापालिकने जरा शङ्कित और भीत हो कहा,—"आप ज्ञानपथके अनुयायी हैं। आपकी दृष्टिमें सभी जीव समान हैं। परन्तु सभी लोग धर्मके इस गूढ़ रहस्यको न समझ सकते है न धारण ही कर सकते हैं। जो कुछ भी हो धर्मका तत्व अति सूक्ष्म है। उसे न सब जान सकते हैं, न कार्यमें परिणत कर सकते है। मैंने जिसको धर्म समझा है, उसीको स्वीकार किया है। वही मेरा धर्म है। इस समय देवीके प्रत्यादेशके अनुसार ही मैं सेवामें उपस्थित हुआ हूं। अब आप अनुग्रह करके मेरे अनुरोधकी रक्षा कीजिये।"

शङ्कर कापालिककी बातको सुन कर जरा मुस्कराये। वे सोचने लगे कि देखो इन लोगोंने धर्मकी कैसी छिछालेदर की है! धर्मकी कैसी शोचनीय अवस्था है और फिर कापालिकोंका धर्म तो कैसे भीषण कायकलापोंसे विजड़ित है। ये कैसे निर्भय-निष्ठुर हैं। जीव-हत्या और मनुष्य-हत्या करनेमे जरा कुण्ठित नहीं होते। क्या सच-मुच ही इनको यह विश्वास है कि मनुष्यका बलिप्रदान करनेसे जग-ज्जननी आद्याशक्ति प्रसन्न होगी और भव-बन्धनसे मुक्त कर देगी? शङ्कर इसी प्रकारसे कापालिकोंके भीषण धर्म पर विचार कर रहे थे। इसी समय कापालिकने फिर उत्कण्ठित होकर कहना आरम्भ किया, "आचार्य, आप जैसे ज्ञानी हैं, वैसे ही सदाशय। आप यदि चाहें तो सरलतासे मेरा अनुष्ठान सम्पन्न हो सकता है। मैं जिस समय आपका बलिप्रदान कर देवीको सन्तुष्ट करूंगा, उसी समय मेरी इष्टसिद्धि हो जायगी। क्योंकि भगवती देवी भी ज्ञानी पुरुषके बलिप्रदानसे ही सन्तुष्ट होती हैं। आप मुझ पर सदय हूजिये और अनुग्रह कीजिये। देवीकी बलिके लिये आत्मदान करनेका संकल्प कीजिये।"

इस प्रकारसे कह कर उग्रभैरव कापालिक हाथ जोड़ कर कातर-कण्ठसे बलिप्रदानके लिये उनकी देहकी भिक्षा मांगने लगा। कापा-

लिक जानता था कि शङ्करके शिष्य बड़े तेजस्वी और सतर्क तथा अत्यन्त गुरुभक्त हैं। उनकी उपस्थितिमें किसी प्रकारसे भी मेरी इच्छा पूरी नहीं हो सकती। कापालिक इसी प्रकारकी बातें सोचता हुआ फिर बोला,—"महात्मन्, आप परम ज्ञानी और पण्डित हैं। जीवन मृत्यु आपके लिये समान है। मुझे निश्चय है कि आप मृत्युके भयसे कभी भीत नहीं हो सकते। मैंने कई बार आपके ही मुखसे सुना है कि मृत्यु कोई वस्तु नहीं है। पुराने वस्त्र उतार कर नये वस्त्र धारण करनेके समान है। एक शरीर छोड़ कर जीवात्मा दूसरा देह धारण करता है। देहीका इससे कुछ भी बनता बिगड़ता नहीं। क्योंकि वह चैतन्यमय आत्मस्वरूप है। आत्मा सदा अविकृत रहता है। इसी लिये आत्माका नाम निर्विकार और निरञ्जन है। न उसकी वृद्धि होती है, न क्षय। फिर जो आत्माको निर्विकार और निरञ्जन समझता है उसके लिये जीवन-मरणका भय ही क्या है? वास्तवमें तो देहसे उसका कोई सम्बन्ध ही नहीं। क्योंकि उसकी दृष्टिसे तो देहके साथ आत्माका सम्बन्ध केवल माया-मोह-भ्रम मरीचिकाके समान है आप महात्मा हैं, महाज्ञानी हैं। देहसे आत्माके पृथक् भावको आप अच्छी तरह जानते हैं। आप जैसे महात्माका देह धारण करना ही मृत्युञ्जय है। देहकी असारताको आप भली भांति जानते है। अतएव मेरे प्रति आप सदय हो मेरे धर्मसाधनमें सहायक हूजिये। देहदान कर देवीको प्रसन्न कीजिये। अपने देह धारणको सार्थक और सफल कीजिये। यही बार-बार मेरी आपके निकट अतिशय विनम्र एकान्त प्रार्थना है।

इस प्रकारसे कह कर कापालिक अत्यन्त विनीत भावसे शङ्करके सामने बैठा रहा। कापालिककी अद्भुत भाव-भंगिको देख कर आचार्य अत्यन्त आश्चर्य-चकित हुए और विस्मित कण्ठसे बोले,—

"कापालिक, तुम्हारी बातको सुननेसे ऐसा प्रतीत होता है कि तुमने धर्मके वास्तविक तत्त्वको समझा है। इसलिये जब आत्माके तत्त्वको समझ लिया है, तो तुम्हारे लिये और किसी प्रकारकी धर्मसाधना अनावश्यक है। आत्मध्यान, आत्मस्वरूपकी उपलब्धि कर आत्माको कृतार्थ करो। किसी जीव या नरका बलिप्रदान करनेसे तुम और क्या फल चाहते हो? मैं तुमको बार-बार समझा चुका हूं कि इस भ्रमात्मक धर्मके भ्रमपूर्ण पथका परित्याग करो। अद्वैत धर्म ही परम धर्म है, जब तुमने उसके स्वरूपको समझ लिया है, तो और किसी धर्मके पालनकी जरूरत नहीं है। अब तुम आत्माके यथार्थ स्वरूपको उपलब्ध कर अपनेको कृतार्थ करो। इससे ब्रह्मकी प्राप्ति होगी, ब्रह्मकी प्राप्ति पर महामुक्तिका द्वार तुम्हारे लिये खुला हुआ है।" इस प्रकारसे आचार्य शङ्करने कापालिकको अनेक प्रकारसे समझाया। परन्तु उस भ्रान्तमति दुष्ट स्वभाव मोहाच्छन्न अभागे कापालिकने शङ्करकी किसी बातको भी स्वीकार नहीं किया। बल्कि वह मूढ़मति अपने पक्षके समर्थन करनेके लिये तरह-तरहसे उनका प्रतिवाद करने लगा। अन्तमें उसने यहां तक कह दिया कि आपका धर्म आपके लिये पालनीय है और मेरा कर्त्तव्य मुझे पालन करना होगा। मूढ़मति कापालिक की बातको सुन कर शङ्कर बोले,—"अच्छा, कापालिक, मुझे देवीके बलिदानके लिये अपना जीवन उत्सर्ग करना होगा, परन्तु अपनी इच्छासे क्या कोई प्राण-त्याग कर सकता है? और विनाश होते समय भी जो देह की रक्षा न करे, बल्कि देह-विसर्जन करनेमें सहायक हो, फिर क्या वह आत्मघाती नहीं होगा? मैं पहले भी कह चुका हूं, फिर कहता हूं कि बिना जीवनकी रक्षाके धर्मसाधन नहीं हो सकता। यह मानव जीवन तो आत्माके कल्याण-साधनकी तरणी है। इसका विनाश करना क्या ज्ञानी मनुष्यका कर्त्तव्य है?"

कापालिक वोला,—"स्वामिन्, मैं तो पहले ही कह चुका हूं कि धर्म-साधनके लिये प्राण तक दिये जा सकते हैं। उससे महापुण्य और महामङ्गल होता है। वेदों और शास्त्रोंने इसका समर्थन किया है। आप तो परम ज्ञानी हैं। विचार कर देखिये, यह शरीर तो क्षणभंगुर है। यह जीवन जलका बुदबुदा है। यदि इस जीवन-प्रदानसे किसी का कुछ उपकार हो सके, तो ज्ञानी मनुष्यको कभी पश्चात्पद और कुण्ठित नहीं होना चाहिये। फिर धर्मसाधन से बढ़ कर और महत् उपकार ही क्या हो सकता है? जिससे इहलोक और परलोकमें मङ्गल हो, इससे अधिक उपकारी और क्या सामग्री हो सकती है? विशेष कर साधु-ज्ञानी पुरुषका शरीर यदि धर्मके काममें लगे, तो इससे अधिक उसकी सार्थकता ही और क्या हो सकती है? इसलिये मेरा एकान्त अनुरोध, विनीत प्रार्थना है कि मेरे धर्मसाधनमें सहायक हूजिये। मेरे अभीष्ट देवता, आप जैसे परमज्ञानी पण्डितकी बलि पाकर अत्यन्त आह्लादित और परितुष्ट होंगे। इससे मेरा और आपका दोनोंका परम कल्याण और महामङ्गल होगा।"

महामूढ कापालिककी वार-वार कातर प्रार्थनाको सुन कर शङ्कर का महत् किन्तु सरल हृदय विचलित हो उठा। वे मन ही मनमें सोचने लगे,—'यह कापालिक सचमुच ही नितान्त भ्रान्त है! भ्रान्त विश्वास ही इसका धर्म है। इस निर्दय-निष्ठुर धर्मसाधनको करनेसे ही यह हतभाग्य जीवनको सफल समझता है! यह सत्य है कि यह जीवन क्षणभंगुर है, देह नितान्त नश्वर है। इस देह-दानसे यदि किसीकी आत्माकी चरितार्थता सिद्ध हो सके, तो इसका दान करना कर्तव्य है। फिर यह तो मेरी शरणमें आया है। शरणापन्नकी प्राण देकर भी रक्षा करनी चाहिये।' इस प्रकारसे विचार कर शङ्कर कापा-लिकको सम्बोधन कर बोले,—"कापालिक, यद्यपि तुम्हारा धर्ममत

नितान्त भ्रमात्मक तथा भ्रान्तिपूर्ण और तमसाच्छन्न है। किन्तु तुम ज्ञान और विश्वास तथा भक्तिपूर्वक धर्मअनुष्ठान करनेमें प्रवृत्त हुए हो। मेरे देह-प्रदानसे यदि तुम्हारी धर्मसाधना सफल हो सके, तो मैं कभी पश्चात्पद नहीं हूंगा। मृत्युका मुझे जरा भी भय नहीं है। क्योंकि जन्म वा जीवका नामान्तर वा भावान्तर ही मृत्यु है। जन्म होने पर मृत्यु भी अवश्य आती है। सुयोग पाते ही मृत्यु जीवनका ग्रास करती है। मृत्युसे किसीका भी परित्राण नहीं। जीवन अनिश्चित है, परन्तु मृत्यु अति निश्चय। इसके विपरीत बुद्धिका नाम माया है। इस जीवनमे यदि ब्रह्मको जाना जा सके तो सार्थक है, नहीं तो भार मात्र है। क्योंकि वाल्यकाल खेल-कूदमें समाप्त हो जाता है। यौवनावस्था भोग-विलासमें समाप्त होती है। वृद्धावस्थामें मनुष्य जराजीर्ण होकर अनेक चिन्ताओंका शिकार बन जाता है। वस इसी मोहमाया के गोरखधन्धेमें मानव जीवन समाप्त हो जाता है। परन्तु जिन लोगों ने अपनी जीवन-क्रियाओंको भगवान्के चरणोंमें समपण कर दिया है, वे लोग न कभी बालक वनते है न युवा। वे जराजीर्ण भी नहीं होते। रोग-शोक मोह और जीवन-मृत्यु उनके लिये तुच्छ है। सो हे कापालिक, मैं तुम्हारे धर्म-साधनके लिये प्राण उत्सर्ग करनेको तैयार हूं।"

हतभाग्य मूढ़ कापालिक आचार्य शङ्करकी बातको सुन कर बहुत प्रसन्न हुआ। क्योंकि वह जानता था कि आचार्य कभी मिथ्या भाषण नहीं करते। जो मुंहसे कहते हैं, वही करते हैं। जो कुछ उन्होंने कहा है उसे अवश्य करेंगे। इस प्रकारसे विचारते हुए उसके मनमें प्रबल आशाकी दीपशिखा प्रज्वलित हो उठी। उसने आनन्दोन्मत्त होकर कहा,—"आपके मुखसे निकले हुए शब्द स्वयं सत्य स्वरूप हैं। आज आपके वचन प्रदानसे मेरे मन-प्राण पुलकित हो

उठे हैं। मैं यथासमय बलिप्रदानका अनुष्ठान आरम्भ करूंगा।” शङ्कर बोले,—“कापालिक, और तो सब ठीक ही है, परन्तु तुम किस समय देवीके सामने मेरा बलिदान करोगे ? क्योंकि तुम जानते हो कि मेरे शिष्य अत्यन्त गुरुभक्त और मेरी रक्षाके लिये सदा सतर्क और सावधान रहते हैं। उनकी उपस्थितिमें तुम कैसे अपने अनुष्ठान को सम्पन्न कर सकोगे ? क्योंकि मेरी रक्षाके लिये वे प्राण तक देने में भी कुण्ठित नहीं होंगे।”

कापालिकने उद्विग्न कण्ठसे कहा,—“तब क्या उपाय करना होगा ? आप तो महात्मा हैं। एक महात्माका जो कर्तव्य होता है, आप उसीका पालन कीजिये। मेरे हितके लिये, धर्मसाधनके लिये आप प्राण तक विसर्जन करनेको तैयार हुए है। किन्तु देखता हूं कि मेरे दुर्भाग्यसे मेरे पथमें यह विषम विघ्न उपस्थित हुआ है। आपके शिष्योंको मेरी इस दुरभिसन्धिका यदि जरा भी पता लग गया, तो मेरे प्राण सङ्कटमें पड़ जायगे। तब फिर क्या उपाय होगा ?”

शङ्करने कहा,—“कापालिक, मैंने जिस बातका तुमको वचन दिया है, उसे सम्पन्न होने देनेके लिये मैं प्राणपणसे यत्न करूंगा। परन्तु इसके लिये तुमको सब आयोजन गुप्त रीतिसे करना होगा। बलिप्रदानका कार्य भी बड़े ही गुप्त भावसे कहीं निभृत स्थानमें करना होगा। नहीं तो यदि मेरे शिष्योंको इस सूत्रका जरा भी पता मिल गया, तो वे तुम्हारा ही बलिदान कर डालेंगे। इसीलिये मैं तुमको पहलेसे ही सावधान किये देता हूं।”

शङ्करकी बात सुन कर कापालिकने कहा,—“आचार्य, आप तो स्वयं परम पण्डित और बुद्धिमान व्यक्ति है। आप ही अवस्थाके अनुसार व्यवस्थाका निरूपण कीजिये, जिससे मेरी कार्यसिद्धि हो सके।” उत्तरमें शङ्करने कहा,—“यदि तुम अपने अभीष्ट देवताकी



समाधिस्थ शङ्कर पर उग्र भैरव कापालिकका आक्रमण ।
शिष्य सनन्दन द्वारा निराकरण ।

प्रसन्नताकी प्राप्तिके लिये मुझे बलिप्रदानके रूपमें उत्सर्ग करना चाहते हो, तो मेरे निर्धारित विधानके अनुसार कार्य करनेके लिये यत्नवान् हो।" कापालिकके यह कहने पर कि आज्ञा कीजिये—शङ्करने कहा,—"कापालिक, मैं थोड़ी दूर एक निभृत स्थानमें बैठ कर समाधि लगाता हूं। ध्यानकी परिपक्व अवस्थामें जब मैं समाधिस्थ होऊं, तब तुम मेरा शिर काट कर देवीके सामने ले जाकर बलिदान कर देना! उस समय मेरे शिष्य भी वहां उपस्थित न होंगे। तुम्हारा कार्य सुचारु रूपसे सम्पन्न हो जायगा।"

आचार्यकी बात सुन कर कापालिक उत्साहसे हर्षोन्मत्त हो उठा। शङ्करको प्रणाम कर उसने शीघ्रतासे अपने आश्रमकी ओर प्रस्थान किया। अब तक वह छायाकी तरहसे शङ्करके पीछे-पीछे घूमता फिरता था। इस बातको ताड़ कर शङ्करके शिष्य सदा सन्देह किया करते थे। विशेष कर परम गुरुभक्त सनन्दन तो सदा गुप्तचरकी ही भांति कापालिककी गतिविधिको देखता रहता था।

अगले दिन—जिस समय शङ्करके शिष्यगण स्नान-सन्ध्या वन्दनादि कार्योंमें प्रवृत्त थे, शङ्करने आश्रमसे प्रस्थान कर यथा-निर्दिष्ट स्थानमें जा समाधि लगाई। कदाचारी मतिमन्द भ्रान्त-पथ-गामी कापालिक, अपनी कार्यसिद्धिके लिये एक तीक्ष्ण धार वाली खड्ग लेकर वहां उपस्थित हुआ। आचार्य शङ्करने अति धीर तथा गम्भीर भाव धारण कर समाधि लगाई। उनका देह स्थिर और मन प्राण अति प्रशान्त हो गये। निर्वात प्रदेशमें दीपशिखाकी तरहसे शङ्कर निश्चल समाधि लगाये बैठे थे। महायोगी शङ्करने अपनी योगदृष्टिसे कापालिकके आगमनको देख कर अपने आत्माको परमात्मामें लीन कर, देह, इन्द्रिय, मन प्राणादिकोंको अतीव तुरीय अवस्थामे अव-स्थित कर लिया। उनके लिये समस्त ब्रह्माण्ड ब्रह्ममय हो उठा।

यहां तक कि घातक और उसका खड्ग तक ब्रह्ममय दीखने लगा। उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा कि न कोई उनका घातक है न हत्या करने वाला। इसी समय खड्गाघात करनेके लिये कापालिकने खड्ग उठाया। परन्तु एक वार आचार्य शङ्करके अपूर्व अमानुषिक भावको देख कर हतभाग्य कापालिक मुग्ध और स्तम्भितसा रह गया। उसका देह, हाथ मन और प्राण थर-थर कांपने लगे। उसे ऐसा प्रतीत होता था, जैसे समस्त विश्व उसकी आंखोंके सामने घूम रहा हो। वह किंकर्तव्यविमूढ हो कुछ देर तक अचेतनावस्थामें वहीं खड़ा रहा, परन्तु तुरन्त ही आत्म संवरण कर मन ही मनमें बोला,—'यही तो सुयोग है। इसी समय कार्य समाप्त कर महाबलिका कार्य सम्पन्न करना चाहिये। जिस सुयोगके लिये इतने दिनसे व्याकुल था, अहो! महादेवीकी कृपासे आज वह प्राप्त हुआ है। देवी मेरी धर्म साधनासे परितुष्ट हुई हैं—इसमे अब कोई सन्देह नहीं। उन्हींकी महती कृपासे यह सुयोग प्राप्त हुआ है। नहीं तो ऐसा सौभाग्य क्या कभी किसी साधकको कहीं प्राप्त हो सकता है।' इस प्रकारसे विचार करता हुआ कापालिक आनन्दके उद्वेगसे अधीर हो उठा। अभीष्ट देवताको मन ही मनमे स्मरण कर आचार्य शङ्करका शिर बलिप्रदान करनेके लिये कापालिकने अकड़ कर खड्गको संभाला। इसी समय बिजलीकी तरहसे तड़क कर किसीने कापालिकके हाथमेंसे खड्ग छीन लिया और क्षणभरमें कापालिकको खण्ड-खण्ड कर भूतलशायी कर दिया। निमेषमात्रमें यह क्या हो गया? किस महापुरुषने देव-बलसे बलियान होकर दुष्ट राक्षस कापालिकको मार डाला! खड्गके प्रचण्ड आघात और भीषण निनादसे आचार्य शङ्करकी समाधि भङ्ग हो गई। उन्होंने नेत्रोन्मीलन कर देखा कि सामने भीषण दृश्य उपस्थित है। अजस्र शोणितसे धरातल अभिषिक्त है! कापालिकका

छिन्न मस्तक भूमि पर विलुण्ठित हो रहा है ! शङ्करने इस भीषण दृश्यको देख कर पीछेकी ओर देखा । देखा कि उन्हींका प्रिय शिष्य सनन्दन रक्त-रञ्जित खड्ग धारण किये क्रोध-विकम्पित कलेवर हो खड़ा है ! शङ्करने समस्त रहस्यको समझ लिया ।

भगवान्‌की लीला कैसी विचित्र है । जो ज्ञानालोकसे संसार को आलोकित करनेके लिये, संसारके पाप-तापको हरण करनेके लिये कर्मक्षेत्रमें अवतीर्ण हुए, उन्हींका शिर काट कर बलिप्रदान करने के लिये हतभाग्य कापालिक खड्ग लेकर वहां उपस्थित हुआ ! परन्तु क्षण भरमें उसीका बलिप्रदान हो गया ! विधाताके अपूर्व विधान से कुछका कुछ हो गया । इसीसे शङ्करने कापालिकसे कहा था कि मनुष्य मनुष्यके प्राण लेनेमें असमर्थ है । बिना भगवान् की अनुमति और आज्ञाके एक तृण भी इधरसे उधर नहीं हिल सकता ।

शङ्करने देखा कि मतिमन्द कापालिकका छिन्न मस्तक, रक्त-रञ्जित होकर भूमि पर लोट रहा है । पास ही तलवार लिये उनका प्रिय शिष्य सनन्दन खड़ा है । सनन्दन क्रोध, लज्जा और उत्तेजना से अधीर, चञ्चल तथा स्तम्भित हो रहा था । आचार्य देवके दर्शन और सुधावर्षी वाणीसे उसका हृदय शान्त हो गया । तब शङ्करने अनेक प्रकारसे उपदेश देकर कहा,—"सनन्दन, तुमने आज ज्ञानहीन होकर यह क्या कर डाला ? इस प्रकारसे निष्ठुर नरहत्या रूपी घोर पाप कार्यका अनुष्ठान क्यों किया ?"

सनन्दन लज्जासे म्रियमाणसा हो रहा था । वह बड़ी कठिनतासे आत्म संवरण कर बोला,—"देव, हतभाग्य कापालिक हमारे और साथ ही साथ संसारके सर्वनाश-साधनके लिये तैयार हुआ था । हाय ! आज ज्ञानसूर्य सदाके लिये अस्त हो जाता । वह खड्गसे आप का शिर छेदन करने लगा था । मैं कई दिनसे उसकी विचित्र गति-

विधि और कार्यकलापोंका पर्यवेक्षण कर रहा था। मेरी धारणा थी कि यह दुष्ट कापालिक जरूर कोई ऐसा काण्ड उपस्थित करेगा। परन्तु वह जो कुछ करने लगा था, उसकी तो मुझे स्वप्नमें भी कल्पना नहीं हुई थी। देव, क्या आपकी हत्या को मैं अपनी आंखों से देखता ? मैंने जब देखा कि वह अपनी कुटिल और क्रूर मतिके अनुसार अपना कार्य करनेको तैयार हो गया है, तो मैंने जङ्गल और झाड़ियोंकी ओटमेंसे निकल कर उसका खड्ग छीन लिया और उस से उसीका शिरच्छेदन कर पृथ्वी परसे पापका बोझ उतार दिया। देव, मैं जानता हूं नरहत्या महापाप है। किन्तु गुरुदेवकी प्राणरक्षाके लिये मैं सभी पाप कर सकता हूं, मेरा ऐसा विश्वास है। आप जैसे महागुरुकी कृपासे मेरे सभी पाप-ताप भस्म हो जांयगे।"

प्रिय शिष्य सनन्दनकी बात सुन कर गुरुदेव शङ्कर ने कहा,—"सनन्दन, नरहत्या महापाप है। आज तुम उसी पापसे परिलिप्त हुए हो। जीवन संसारमें मूल्यवान् सामग्री है। उस सामग्रीको जो ध्वंस करता है, वह अवश्य महापापमें लिप्त होता है। परम सौभाग्य-फल से तुमको आत्मतत्त्वका ज्ञान हुआ है। आत्माके यथार्थ स्वरूपको समझनेमें समर्थ हुए हो। तुम परमात्माकी शरणमें अपने आत्माको स्थित करो। उनकी शरणमें जानेसे ही तुम्हारा इस पाप-तापसे परित्राण होगा। जाओ! सनन्दन जाओ! आत्मोद्धारके लिये सतत प्रयत्न करो। इसीसे परम कल्याण होगा।"

———*———

अष्टादश-परिच्छेद ।

भगवान्‌की सत्ता पर विश्वास ।

—:o:—

पहले किसी परिच्छेदमें हम अहिराजके उद्धार का उल्लेख कर चुके हैं। नस कलुषित योनिसे उद्धार हो जानेके बाद शङ्करके एक विद्वान् शिष्यके साथ अहिराजका संवाद हुआ था। उस संवादमें भगवान्‌की सत्ताके सम्बन्धमें विशद और तर्कपूर्ण युक्ति प्रमाणोंके साथ ईश्वर की सत्ताको सिद्ध किया गया था। शङ्कर का समस्त जीवन वेदान्तमय है। भगवान् की सत्ताका विषय वेदान्तका प्रधान विषय है। इसलिये उस संवादको 'शङ्कर-दिग्विजय' से हम यहां उद्धृत करते हैं। इसी उद्देश्य को लेकर इस परिच्छेद की अवतारणा की गयी है।

अहिराजके दिव्य देह धारण करने के बाद शङ्करके एक प्रधान शिष्यने अहिराजको सम्बोधन कर कहा,—"राजन्, पूर्वजन्ममें तुमने अति पवित्र कुलमें जन्म लिया था। जन्म-जन्मान्तरोंके सुकर्म फल से तुमको धर्मात्मा माता पिता मिले थे। इससे प्रतीत होता है कि धर्मके निगूढ़ तत्त्वको तुम कुछ न कुछ जरूर समझते हो। इसीलिये तुमको देव शङ्करके दर्शनोंका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। धर्म और भगवान्‌के सम्बन्धमें अब तुम्हारी क्या धारणा है और इस विषयमें और भी तुम्हारी जो जिज्ञासा हो अकपट होकर कहो।"

उत्तरमें विनीत हो अहिराजने कहा,—"महात्मन्, मैं तो अति अन्ध और मूढ़ हूं। भला धर्मतत्त्वको मैं क्या जानूं? हां, मैंने पूर्व-

जन्ममें निरीश्वरवादी नास्तिकोंके संसर्गमें रह कर उनके भ्रान्त धर्मको जरूर कुछ थोड़ा बहुत समझा था। इसलिये मेरे सद्भाव और सत्-चिन्ताओंका लोप हुआ था। मैं सत् और शुभधर्मके सम्बन्धमें क्या कह सकता हूं ?"

अहिराजकी बात सुन कर शङ्करके शिष्य ने कहा,—"राजन्, असत्सङ्ग और कुशिक्षाके कारण जो कुभाव तुम्हारे हृदयमें बद्धमूल हुए हैं, पहले तुम उनको व्यक्त करो। क्योंकि पहले तुम्हारे उन्हीं तमसाच्छन्न कुविचारोंका मूलोद्घाटन नितान्त आवश्यक है। जैसे मरुमय क्षेत्रमे उत्कृष्ट बीज वपन नहीं किया जा सकता, उसी तरह से बिना शुद्ध हृदयके धर्मवृक्षका बीज भी नहीं वपन किया जा सकता, इसलिये धर्मके सम्बन्धमे जो तुम्हारी धारणा हो, अकपट हो परिव्यक्त करो।"

उत्तरमे अहिराजने कहा,—"भगवन्, पूर्वजन्म में मैं नास्तिक निरीश्वरवादियोंके सम्पर्कमें आनेसे पहले सत्य सनातन वैदिकधर्मका अनुरागी था। परन्तु नास्तिकोंके संसर्गमे आनेसे वे अपने धर्म की नाना प्रकारसे सारवत्ता साबित करने लगे। धीरे-धीरे मेरा आत्म-विश्वास भी डावाडोल होने लगा। मैं समझने लगा कि संसारमें ईश्वरका कुछ भी गुरुत्व-गौरव नहीं है। एक बार मैंने एक निरी-श्वरवादी पण्डितसे पूछा,—"महाशय, धर्मका गूढ़ तत्त्व क्या है ?' उत्तरमे नास्तिक पण्डितने कहा,—'धर्मकी बात ही अलीक है। आकाश-कुसुमकी तरहसे यह केवल मिथ्या मौखिक शब्द मात्र हैं। जिस ईश्वरको लेकर धर्मकी भित्ति स्थापन की जाती है, उस ईश्वर के अस्तित्वको कोई प्रमाणित नहीं कर सकता। क्योंकि यदि ईश्वर को सृष्टिकर्ता समझें, तो उसका मूल कुछ भी नहीं है। यदि कहा जाय, कि इस सृष्टिका कोई कर्त्ता और रक्षक जरूर है, तो प्रश्न होता

है कि उस सृष्टिकर्त्ताको किसने बनाया, कहांसे आया ? यदि उत्तरमें कहा जाय कि वह तो अनादि अनन्त असीम पुरुष विशेष सृष्टिकर्ता ईश्वर है, तो मानना होगा कि आखिर वह भी कोई पुरुष विशेष है, और जो पुरुष विशेष है, वह कभी अनादि अनन्त और असीम नहीं हो सकता। जो असीम नहीं है, वह अवश्य ही सीमावद्ध है। उसमें सीमाके अतीत अपर कोई शक्ति विद्यमान नहीं हो सकती है ? सृष्टि-कर्ता भगवान् को सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक माना जाता है। परन्तु अपार शक्तिकी विद्यमानताकी कल्पना करनेसे ईश्वरकी सर्वशक्तिमत्ता, सर्वव्यापकता नष्ट हो जाती है। भगवान्का भगवानत्त्व और ईश्वर का ईश्वरत्त्व लुप्त हो जाता है। और एक बात है। सृष्टिकी रचना वासनाके कारण हुई बतायी जाती है। इससे प्रतीत होता है कि सृष्टि-कर्त्ता ईश्वर भी वासना की पराधीन-संकुलमें फँसा हुआ है। वासना और कामनाके वशीभूत है। इसके सिवा यदि यह मानें कि ईश्वरने इच्छावश इस सृष्टिकी रचना की है, तो वह इच्छा भी अभाव-परि-ज्ञापक होनी चाहिये। क्योंकि विना अभावके इच्छा कैसे उत्पन्न हो सकती है। कहा यह जाता है कि ईश्वर क्लेश–कर्म-विपाकादि विव-र्जित है। परन्तु जो वासनाके वशवर्ती होकर सृष्टिकी रचना करता है, जिसको अभाव अनुभव होता है, उससे इच्छा उत्पन्न होती है, तो उस ईश्वरका शक्तिमानत्व, पूर्णत्व और ईश्वरत्व खण्डित हो जाता है।' इस प्रकारसे उस नास्तिक पण्डितने मेरा ईश्वर-विषयक विश्वास विनष्ट कर दिया। सुतरां मैंने सनातनधर्मका परित्याग कर दिया। सदाचार और सत्यनिष्ठाको गांजाखोरोंकी गप्प समझ लिया। अन्तमें उन निरीश्वरवादी नास्तिकोंसे मेरी घनिष्ठता बढ़ने लगी। मैं उन चार्वाकोंका मतानुयायी हो गया, जो विलास-भोगको ही जीवनका चरम उद्देश्य, सम्भोग-साधनाको ही परम पुरुषार्थ मानते हैं। उन

लोगोंके सम्पर्क-दोषसे ज्यों ही मेरी मतिगतिका परिवर्तन हुआ, त्यों ही मैं भ्रष्टाचारकी अग्निमें कूद पड़ा। कुछ दिनोंके बाद मुझे समस्त संसार शून्यमय दीखने लगा। मैं सोचने लगा कि संसारकी ये समस्त विविध सामग्रिया व्यर्थ हैं, सार और तत्त्वहीन हैं। इस जगत्‌की रचना व्यर्थ है, इस जीवनका तात्पर्य कुछ नहीं। इसी प्रकारकी दुर्भावनाकी अग्नि मुझे रात दिन धू-धू करके दग्ध करने लगी। स्त्री पुत्र और आत्मीयजन तथा विषय, ऐश्वर्य-विलास सम्भोगादि सभी विकट विषमय और व्यर्थ प्रतीत होने लगे।"

अहिराजकी उपरोक्त बातको सुन कर पहले तो शङ्करकी शिष्य-मण्डली हंसी। फिर उसी विद्वान् शिष्यने कहा,—"राजन्, नास्तिक्तावादकी आदिम अवस्थाका यही विषम फल है। यह अवस्था मानव आत्माके लिये बडी ही विषम और शोचनीय है। इस अवस्था में मानव नितान्त असुख और अशान्तिकी अग्निसे दग्ध होने लगता है। इस अवस्थामें मनुष्य अन्ध कीट-पतङ्गों की गतिको प्राप्त हो जाता है। अन्ध कीट-पतङ्ग, जैसे प्रदीप्त अग्नि पर मोहित होकर उस पर जाकर पड़ते हैं, और अन्तमें उसकी लपटोंमें छटपटा कर जल कर खाक हो जाते हैं, उसी प्रकारसे मनुष्य, चार्वाकादि नास्तिकोंकी चटकीली बातों पर विमुग्ध होकर उनके मतावलम्बी हो जाते हैं, अन्तमें अवलम्बहीन जीवोंकी तरहसे दुर्दशाग्रस्त होते हैं। वे इस लोक वा परलोकमे कहीं भी सुख शान्तिके साथ नहीं रह सकते।"

अहिराजने कहा,—"महात्मन्, ठीक मेरी भी वही दशा हुई है। मैं नितान्त निराशा सागरमें गोते खाने लगा। मैं सोचने लगा कि यह क्या हुआ ? मैंने यह क्या किया ? मैंने किस भ्रमात्मक धारणा का अवलम्बन किया ? इसी प्रकारसे विचार करते हुए मैंने एक चार्वाक पण्डितसे पूछा,—'यदि सब ही मिथ्या है. असार है, तो

मानवका अवलम्बन क्या है ? मानवका कर्म क्या है ? आखिर इस मानव जन्मको धारण कर मनुष्य क्या करे ? केवल आहार-विहार ही यदि मानव-जीवनका परम उद्देश्य है, विषय विभोग ही यदि नर-जन्मका फल वा परिणति है; तो मनुष्य और पशुमें ही क्या पार्थक्य है ? शृगाल और कुत्ते विल्लीके आचरणमें क्या अन्तर है ? बल्कि वे तो बिना परिश्रम और बिना प्रबल वासनाओंके ही भोग्य-सामग्रीका भोग करते हैं। शृगाल जैसे गन्धमय मांस-पिण्ड को पाकर परम प्रसन्न होता है, उसी प्रकारसे मनुष्य सजीव स्त्रीके मास-पिण्ड को पाकर परितृप्त होता है। इससे तो मनुष्य और पशुमें कुछ भी अन्तर नहीं, कुछ भी पार्थक्य नहीं।' मेरे इन प्रश्नोंके उत्तरसे उस चार्वाक पण्डितने कहा,—"राजन्, सुख-भोग अथवा सर्व प्रकारसे सम्भोग ही प्रकृत पुरुषार्थ है। जैसे जलके भ्रमसे तृष्णातुर मृग मरुभूमिमें मरीचिकाके पीछे भागता है, उसी प्रकारसे मानव मिथ्या आनन्दकी कल्पना करके संसारमें वृथा भ्रमण करता है। भ्रान्त मानव संसारके सम्भोग-सुखको परित्याग कर वृथा ही कल्पित परमानन्दके पीछे भागता फिरता है। परन्तु कुछ कालके पश्चात् उसका भ्रम दूर हो जाता है। भण्ड धर्मध्वजी गण, भोगियोंको शिश्नोदर-परायण कह कर निरानन्द करते हैं। परन्तु इन्द्रियोंकी परितृप्तिमें जो आनन्द है, वह जो सुख है, मूढ-मूर्ख क्या कभी उसका अनुभव कर सकते हैं ? भोग और सुखकी सामग्री अर्जन करनेमें जो परिश्रम और पुरुषार्थ होता है, ये आलसी दीर्घसूत्री लोग, उसे सहन नहीं कर सकते। इसी लिये सुख-भोगके आलीकत्वका प्रचार करते फिरते हैं। यज्ञ-क्रिया पुजोपहार सब इन धर्मध्वजियोंके ठगनेका व्यापार है। जब यहां सुख भोग न किया तो परलोकमें क्या खाक करना है। ये जप-तप और योग-यागकी सब दन्तकथायें, असार और निर्मल हैं। न इनका कोई

अर्थ है, न फल। संसारके इन समस्त सुख-भोग्य पदार्थों की सृष्टि सुख-भोगके ही लिये ही हुई है। संसारकी समस्त वस्तुओंकी रचना किसी न किसी उद्देश्यको लेकर ही हुई है। पुष्पोंका सौन्दर्य, विहङ्गमोंका मधुर रव, मानव मस्तिष्क प्रसूत सङ्गीत चित्रादि शिल्पकला की जैसे सार्थकता परिलक्षित होती है, उसी प्रकारसे भुजंगोंके भयङ्कर हलाहलसे लेकर सिंह-व्याघ्रादिकी हिंसावृत्ति तक प्रयोजनीय हैं। इसी तरहसे संसारकी समस्त सुख-सामग्रियां भी सुख-सम्भोग के लिये सृष्ट हुई हैं।' तब मैंने कहा,—'तब तो सोचने विचारने की मनुष्यके लिये कोई आवश्यकता ही नहीं। स्मृति, कल्पना, चिन्ता आदि बुद्धिके समस्त क्रिया-कलाप नितान्त निष्फल और निष्प्रयोजन हैं। तब फिर मनुष्यमे और पशुमें क्या भेद है ? मनुष्यकी श्रेष्ठताकी क्या परिभाषा है ?'

उत्तरमें चार्वाकने कहा,—'बुद्धिके अनुशीलनको मैं अनावश्यक नहीं बताता। किन्तु जो बुद्धि, सुख-सामग्रीका संग्रह नहीं कर सकती वह निष्फल है। क्योंकि वह व्यर्थ बुद्धि, अन्ध वा पंगुकी तरहसे अन्धमय है। जो बुद्धि केवल भण्ड गणोंके ध्यान धारणादि शून्याकार-अवस्थामें पर्यवसित होती है, उस अर्थ सामर्थ्यहीन बुद्धिकी निर्वाण दशा ही प्रार्थनीय है।'

"भगवन्, नास्तिक आचार्योंके इस प्रकारके विचारोंसे मेरी बुद्धि भ्रँश हुई। उन्हीं लोगोंके संसर्ग और सम्पर्कसे मेरी मतिगति भ्रष्ट हुई। मेरी अभी तक उन भ्रमात्मक विचारोंसे निष्कृति नहीं हुई। शून्यवादियोंकी शिक्षा-दीक्षासे अभी तक मेरी यह धारणा बनी हुई है कि जीवन और जगत्को महाशून्य रूपमें परिणत करना ही परम पुरुषार्थ है। यही सार-धर्म है, इसीका नाम मोक्ष है। जीवन और जगत्की सृष्टि यदि सुख-भोगके लिये ही हुई है, तो उससे विस्मृति

नहीं हो सकती। जीवन और जगत् महा पुण्यमें लय करना, साधन करना ही मोक्षधर्म है, यही मेरी धारणा है।"

अहिराजकी समस्त आत्मकथा सुन कर शङ्करके उस विद्वान् शिष्यने कहा,—"चार्वाक गण, जीवन और जगत्को एक ओर तो महाशून्यमें परिणत करनेको मोक्ष धर्म बताते हैं, और दूसरी ओर भोगको ही परम पुरुषार्थ कह कर व्याख्या करते हैं। दोनोंमें विरोधी भाव है। भोग्य-वस्तुओंको उपभोग करके शून्यत्वकी ओर अग्रसर होना नितान्त असम्भव है। शून्यकी परिणति त्याग की द्योतना करती है। चार्वाकोंके समस्त शास्त्र, सकल-तत्त्व, इसी प्रकारसे अर्थ-शून्य और विरुद्ध भावापन्न हैं। फलतः नास्तिकता सब तरहसे धर्म-हीनताकी आदिम भित्ति है। नास्तिकता मनुष्यको कीट-पतङ्गोंसे भी तुच्छ और हेय बना देती है। नास्तिकता एक ओर जहां मनुष्य के जीवनको शुष्क और नीरस बना देती है, दूसरी ओर श्रेष्ठ ज्ञान, उच्च चिन्ताके पथसे परिभ्रष्ट कर देती है। मानव-आत्माको तमोगुणसे कलुषित कर देती है। संसारमें अनेक जातियोंके अनेक जीव देखे जाते हैं। उनकी एक जाति चित्-विभूतिके विकासके तारतम्यके अनुसार अन्य जातिकी अपेक्षा श्रेष्ठ होती है। इसी प्रकारसे किसी जातिमे जो उन्नतिका स्तर परिदृष्ट होता है, उसका कारण चिदाभाव के आधिक्यके सिवा और कुछ नहीं। चिद्भावका विकाश उन्नतिके अनुसार जीवात्माके उत्कर्षके लिये होता है। जो जीव वा जाति जितनी उन्नत होती है, उसकी चैतन्यशक्ति भी उसी परिमाण मे समुन्नत और सम्वर्द्धित होती है। इसीलिये चैतन्यता के विशेष विकासके कारण मानव, महिमण्डलमें सर्वश्रेष्ठ रूपसे परिगणित होता है। चैतन्यताके अपकर्ष और अभावमें मनुष्य भी कीट-पतङ्गों की श्रेणीमें ही परिगणित होता है। चैतन्यताके विशेष परस्फूरणसे ही

मनुष्यकी मनुष्यता कायम रहती है। उस मनुष्यताका अन्तिम फल है बुद्धि। उस बुद्धिका अनुशीलन-विकाश, ध्यान धारणादि प्रक्रिया के ऊपर प्रतिष्ठित है। इन सकल बौद्धिक वा आध्यात्मिक प्रक्रियादिके पवित्र अवस्थाओंका परित्याग कर, नास्तिक चार्वाक सम्प्रदाय, अपने को भी पशुभावमें निमज्जित करता है और औरोंको भी अपनी भ्रष्ट शिक्षा-दीक्षा द्वारा अज्ञ-अन्ध भावापन्न वनाता है। इसलिये इन घोर मूढ़ नास्तिकोंको सर्वतोभावसे परिवर्जन करना, सनातन वैदिक मतावलम्बियोंका एकान्त और आवश्यक कर्तव्य है। इस पाप-ताप मय कलियुगमें नास्तिक चार्वाक-सम्प्रदायका प्रभाव वहुत अधिक वढ़ गया है। इन्हीं नास्तिक लोगोंके मत-प्रचारके कारण सत्यसनातन वैदिक धर्म दिन पर दिन विलुप्त होता जाता है। इसीलिये आत्मज्ञान और आत्मध्यानकी प्रथा भी उठती जाती है। जब तक इस देशसे इस नास्तिकतावादका पाप प्रक्षालन नहीं होता, तब तक यह देश कभी भी अपने धर्म पर आरूढ नहीं रह सकता। इसीलिये महापुरुष शङ्कर का जन्म हुआ है। तुमको तुम्हारे परम सौभाग्य के फलसे उनके दर्शन हुए हैं। सौभाग्यफलसे ही तुम उस पापयोनिसे उन्मुक्त हुए हो। अबसे सदा इस बातको स्मरण रखना कि मनुष्य-जन्म ही सर्वश्रेष्ठ है। केवल इसी जन्मकी की हुई साधनाओंके फलसे जीव, सब वन्धनोंसे मुक्ति लाभ कर सकता है। परमानन्द ब्रह्मानन्दका अधिकारी हो सकता है। भोग तो अन्यान्य योनियोंमें भी भोगे जाते हैं। भोग दो प्रकारके हैं। जीवात्मा सर्वत्र चिन्तानुभूतिके अधीन है। चिन्तानुभूति भी दो प्रकार की है। एक अनुकूल-वेदना और दूसरी प्रतिकूल वेदना। अनुकूल-वेदनाका नाम सुख है और प्रतिकूल वेदनाका नाम दुःख। इन दोनों प्रकारकी अनुकूल और प्रतिकूल वेदनाओंके दुःख-सुखोंमेंसे एक न एक मनुष्यको अवश्य भोगना पड़ता

है। स्वर्गके देवता भी इनसे मुक्त नहीं हैं। उनको भी इनमेंसे एक प्रकारका दु.ख या सुख अवश्य भोगना पड़ता है। केवल मानव-जन्म लाभ करके ही इन दोनों प्रकारके भोगोंसे मुक्ति प्राप्त हो सकती है। केवल मानव ही साधना द्वारा सर्व प्रकारके दुःखोंसे मुक्त हो सकता है। दुःख तीन प्रकारके हैं। आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक। इन त्रिविध दुःखोंकी जो आत्यन्तिक निवृत्ति है, उसीको निर्वाण वा मुक्ति या मोक्ष कहते हैं। उस निर्वाण वा मुक्तिको मनुष्य ही साधना द्वारा लाभ कर सकता है। इसीलिये समस्त जीव, मानव-जीवन लाभ करनेकी इच्छा करते हैं। परन्तु जो मानव देह धारण करके भी मुक्तिके लिये साधना नहीं करता, उसका मानव-देह धारण करना व्यर्थ है।

"निर्वाण मुक्तिका पथ है, तत्त्वज्ञान। आत्मदर्शन और आत्मानुभूति तत्वज्ञानका यथार्थ स्वरूप है। आत्माका ध्यान और चिन्ता करते-करते, मानव उसके स्वरूपको अनुभव करनेमें समर्थ होता है। आत्मा भ्रम-रूपी मायाके अधीन होकर, अपनेको सुखी, दुःखी वा वृद्ध समझने लगता है। परन्तु यह कल्पना वास्तवमें स्वप्नावस्थामें भीषण दृश्य दर्शन अर्थात् भयङ्कर शत्रु द्वारा आक्रान्त होनेके समान मिथ्या है। इस मायाके जालको छिन्न करके सर्व बन्धनोंसे मुक्त होकर आत्माको भूमाभावमें प्रतिष्ठित कर सकनेका नाम ही महानिर्वाण वा महामुक्ति है। अहिराज, तुम महापुरुषकी कृपाके पात्र हुए हो। उस कृपाका फल महामुक्ति होगा। जीवन्मुक्तिके समस्त उपाय तुमको बार-बार बताये गये हैं। इनको कभी विस्मरण मत करना। इन्हीं से तुम्हारा महाकल्याण साधन होगा।"

अहिराजने शङ्करके चरणोंमे साष्टाङ्ग प्रणाम किया और पापयोनि से निर्मुक्त हो दिव्य-देह धारण कर वहांसे प्रस्थान किया।

—०—

उन्तीसवां-परिच्छेद ।

अद्वैत-मत-प्रतिपादन ।

—:*:—

शङ्कर एक बार मध्यप्रान्तके पार्वत्य प्रदेशमें भ्रमण करते हुए एक ऐसे परम-रमणीय मनोरम स्थानमें पहुंचे, जहाकी प्राकृतिक शोभा अपूर्व थी। चारों ओर घना जङ्गल था। पहाड़ी झरने अपना स्वाभाविक अट्टहास करते हुए प्रवाहित हो रहे थे। चारों ओर शान्ति का साम्राज्य था। कपोत-कूजित प्रशान्त वनकी इस मनोरमताको देख कर ऐसा अनुमान होता था, जैसे वह देवताओंकी क्रीड़ा-भूमि हो वा किन्नर-गन्धर्वों का लीला-निकेतन। स्वर्गीय सुषुमा-मण्डित इस स्थानकी मनोरमताको देख कर शङ्कर शिष्यों सहित कुछ दिनके लिये वहां ठहर गये। कई दिन तक ध्यान-धारणा और अध्ययनाध्यापन का काम होता रहा। एक दिन शङ्करने समाधि-भङ्ग होने पर समस्त शिष्योंको अपने पास बुला कर कहा,—“वत्सगण, आज मैं तुमको विशुद्ध अद्वैतवादका उपदेश देता हूं। इस नश्वर शरीरका कोई भरोसा नहीं। तुम लोग भी विद्वान् हो गये हो। बीज रूपसे मैं अद्वैत मत का प्रतिपादन करता हूं। मेरी एकान्त इच्छा है कि आसमुद्र हिमा-लय तक इस विशुद्ध मतका प्रचार हो। पाखण्डी भण्डों और नास्तिकों का मत इस देवभूमिसे लुप्त हो जाय।”

शिष्योंने एक स्वरसे अद्वैत-मत प्रतिपादन करने की प्रार्थना की और साथ ही समस्त देशमें उसके प्रचार करनेकी शपथ ली। इसके बाद शङ्करने अद्वैत मतका प्रतिपादन करना आरम्भ किया।

आचार्य शङ्करने कहा,—"त्याग ही मनुष्यको श्रेष्ठत्वकी खोज-तलाशके लिये उन्मत्त करता है। मुक्ति-द्वारकी पहली सीढ़ी त्याग ही है। जीवके जीवनके दो पथ हैं। एक भोग और दूसरा त्याग। परन्तु भोग मनुष्यका उत्कर्ष साधन नहीं कर सकता। स्थूल जड़ द्रव्योंके उपभोगसे मन मलिन होता है और अपकर्षका द्वार उन्मुक्त हो जाता है। सुख-भोगमें नीरत रहनेसे मनुष्य पशुत्व को प्राप्त हो जाता है। क्रमशः इसी प्रकारसे संसारकी भोग्य वस्तुओंका उपभोग करता हुआ मनुष्य, देवत्त्व बुद्धिको नष्ट कर देता है। इन्द्रिय-चरितार्थ सुखके अतिरिक्त और किसी दैवी-सुख और उन्नत तत्त्वके स्वरूप की कल्पना तक भी नहीं कर सकता। देह-इन्द्रियोंके भोगके अतिरिक्त और भी कुछ कर्तव्य है, वह उसकी भी कल्पना नहीं कर सकता। ऐसी शोचनीय दशाको प्राप्त हुआ मनुष्य, महा हतभाग्य है। मनुष्य-देह धारण करके मनुष्यत्वके विकास और उत्कर्ष साधनके पथको जो तलाश नहीं करता, उसका मानव-देह धारण करना व्यर्थ है, मनुष्य जन्म पाना वृथा है। केवल मात्र जड़-सम्भोगमें जड़ देह और जड़-इन्द्रियका भोग उत्कर्ष साधित नहीं करता। उससे मानवों की उच्च वृत्तिका अनुशीलन नहीं हो सकता। वलिक आध्यात्मिक उत्कर्ष साधन की इच्छा उत्पन्न होने पर भी उसमें विघ्न उपस्थित होता है।

"अध्यात्म-भावको लेकर ही मानवका मानवत्व है। देवात्म-बुद्धि को अतिक्रम करके आत्मबुद्धि-लाभ द्वारा मनुष्य, प्रकृत मनुष्यत्व लाभ कर सकता है। मनुष्यका यथार्थ कल्याण उसकी अपनी विकसित आत्मबुद्धि द्वारा ही हो सकता है।

"आत्मबुद्धिका विकास करनेके लिये सर्वप्रथम त्यागका अवलम्बन करना पड़ता है। भोग—जड़ देह और जड़ इन्द्रिय का उपभोग,

मनुष्यको ऐसा मन्द और मूढ बना देता है, कि वह त्याग जैसे परम-तत्त्वको एक वार ही भूल जाता है। उस मोह-भ्रमका परिणाम होता है—पशुत्वमें परिणति। भोग-विलासमें डूबा हुआ मनुष्य, इन्द्रिय-जनित सुख-भोगको छोड़ कर मोक्षानन्द तो दूरकी बात है, ज्ञान और चिन्ता जनित सुखके तत्त्वकी भी कल्पना नहीं कर सकता।

"त्याग ही साधना-पथका प्रथम-परिच्छेद है। त्यागधर्मका अनुशीलन करनेसे ही नीच दैहिक और इन्द्रिय-वृत्तियोंका दमन हो सकता है। उसीसे मानसिक शक्तियोंका पथ विकास होताहै। संसार इन्द्रियोंके सुख भोगमें लिप्त है। उसी सुख-भोगके कारण उनकी विकट वासनाओंका उद्भव हुआ है। उस वासनाके परित्याग से ही जीवनके सकल दुःख और बन्धन छूटते हैं। तत्त्व-दर्शियोंका मत है कि वासनासे ही जगत् और वासनासे ही जीवका उद्भव तथा वासना से ही जीवका देह धारण हुआ है। वासनाको पूर्णरूपसे ध्वँस कर देने पर महामुक्ति अधिगत होती है। उत्कट पिपासाकी तरहसे वासना उद्भवकालमें मनुष्यको विचलित कर देती है। फिर जब तक उसकी परितृप्ति नहीं होती, तब तक वह वासना उग्र रूप धारण कर मनुष्यको उत्पीड़ित करती रहती है। परन्तु परितृप्ति होने पर भी सम्पूर्ण रूप से निष्कृति नहीं होती। क्योंकि वासना तो नित्य नयेसे नये रूपमें साज-सज्जित होकर आविर्भूत होती रहती है। वासनाका वही नव-रूप, वही नव साज-सज्जा मनुष्यको पीडित करता रहता है। और वह वासना यदि चरितार्थ न हो तो, विषम निराशा और विषम-विषाद-अवसादके कारण मनुष्य वैसे ही मर मिटता है। यदि इच्छा पूर्ण हो तो वासना फिर नित्य नयेसे नया रूप धारण कर आ सामने उप-स्थित होती है। अनादि अनन्त कालसे यह वासना ही मनुष्य को जर्जरीभूत कर रही है। परन्तु तब भी इस हतभाग्य जीवको चैत-

न्यता प्राप्त नहीं होती । वह क्रमागत वासनाकी चक्कीमें पिसता जाता है और वार-वार उसीमें पिसनेके लिये फिर जन्म लेता है । वासना ही सब तरहसे उपभोगकी मूल कारण है । उपभोगसे उपभोग की चिन्ता मानवके चित्तमें कामराज्यका आविर्भाव करती है। इसके बाद जीव विषय-वासनाओंमें ऐसा लिप्त होता है, ऐसा डूबता है कि फिर उस का उद्धार होना महाकठिन व्यापार हो जाता है ।

"वासनाके विकट रूप धारण करने पर मनुष्यके लिये अनेक प्रकारके दुःखों और यन्त्रणाओंका आविर्भाव होता है । जीवन महा अशान्तिमय हो उठता है । विषयका उपभोग करते-करते कामनाका उदय होता है और कामनासे क्रोधका उद्भव होता है । फिर क्रोधसे मोहका जन्म होता है । मोह उत्पन्न होने पर मनुष्य ज्ञान-विज्ञानके शुभ पथसे पतित हो जाता है । वह वड़ी ही तमसाच्छन्न-गति होती है । उस भीषण गतिमें एक वार आवर्तित होने पर फिर उद्धार-लाभ का व्यापार अत्यन्त कठिन हो उठता है । साधनाकी आदिम अवस्था में संयम और चित्तशुद्धि नितान्त प्रयोजनीय है । इन्द्रिय और मन को दृढ़ रज्जुमें बांध कर उनको निरोधके पथ पर परिचालित करना होता है । जो इन्द्रिय और मनको काबूमें नहीं कर सकता, वह साधना-पथमें कभी अग्रसर नहीं हो सकता । देही जीव सब कर्मों और सब अवस्थाओंमें देह, इन्द्रिय और विविध मानसिक वृत्तियोंका क्रीत दास है । एकमात्र वासना ही देह मन और इन्द्रियों में वास कर जीवको चञ्चल करती रहती है। इस लिये मनुष्यकी शान्ति और महामुक्तिका द्वार वन्द रहता है । जब तक शान्ति उत्पन्न नहीं होती, तत्त्वज्ञान का द्वार उन्मुक्त नहीं होता, चञ्चल मानव, तत्त्वभावका अवलम्बन करने वा उसको मनमें धारण करने की शक्ति प्राप्त नहीं कर सकता । क्योंकि क्षुद्र-तुच्छ सीमावद्ध मनुष्य, प्रशान्त

भाव धारण करके भी बड़े प्रयास और साधनाओं द्वारा तत्त्वज्ञान प्राप्त करने में समर्थ होता है—और यदि वह शान्त और संयत भाव धारण न कर सके, तो सूक्ष्म तत्त्व, आत्मतत्त्व कैसे लाभ हो सकता है ?

"जो मूढ मानव, वासनाके वशवर्ती होकर जीवन व्यतीत करते हैं, वे मोक्षानन्द वा ब्रह्मानन्दको कभी प्राप्त नहीं कर सकते। यदि वे धर्म-पथपर भी परिचालित हों, तब भी वे परम धर्म अद्वैततत्त्वको लाभ नहीं कर सकते। जब वे धर्मपथ पर गमन करते हैं, तब वे किसी उपाय से भोग-ऐश्वर्य प्रदान करनेमें समथ हो सकते हैं, याग-यज्ञादि बहु क्रियाकलाप-विशिष्ट-विषय धर्मके प्रति प्रधावित होने लगते हैं। इस प्रकारके याग-यज्ञादिसे स्वर्गलाभ हो सकता है। परन्तु पुण्य क्षय होनेपर फिर इसी मर्त्यलोकमें निपतित होते हैं। उनका ज्ञान और बुद्धि, कभी परम-तत्व आत्मतत्त्व वा अद्वैततत्त्वके पथ पर परिचालित नहीं हो सकती।

"इसलिये अद्वैत तत्व ही एक मात्र श्रेष्ठ पथ है। अद्वैततत्त्व ही एक मात्र सार-तत्त्व है। मानव एक मात्र इसी तत्त्वको अवलम्बन कर धन्य और कृतार्थ हो सकता है। 'ब्रह्मवेद ब्रह्मभव' अर्थात् जो ब्रह्मको जानते हैं, वे स्वयं ब्रह्म हो जाते हैं। जो एक मात्र सत् स्वरूप, जो सकल सत् पदार्थों के ऊपर संस्थित है, एक मात्र उन्हींको लाभ करने से मानव जीवन सार्थक हो सकता है। ब्रह्मलाभका प्रधान उपाय आत्मचिन्तन और आत्मध्यान है। आत्माका ध्यान करते-करते उसका प्रकृत स्वरूप जो भूमाभाव वा ब्रह्मभाव है, वह उपलब्ध होता है। साधन कार्यमें सम्पन्न होकर, आत्माके तुच्छ क्षुद्र भाव समूहको दृढ़ रूपमें वशीभूत कर मन प्राणादिको संयत करना चाहिये। शीत, उष्णादि द्वन्द सहिष्णुता, अभ्यास द्वारा देह मनकी दृढ़ताको सम्पा-

दन करना साधकके लिये नितान्त प्रयोजनीय है । जो शीतोष्णको सह्य नहीं कर सकता, वह साधनामार्गमें कभी कृतित्व लाभ नहीं कर सकता । इसी साधना द्वारा अन्नमय और प्राणमयादि जीवके निम्न-स्तर कोष-विजित होते हैं। देह और इन्द्रियोंका निरोध, तत्वज्ञान प्राप्तिके लिये नितान्त प्रयोजनीय है । द्वन्द, सहिष्णु व्यक्ति ही इनका विरोध कर सकता है । जीवका देह और मन सदा चञ्चल रहता है । इनको जब तक वशमें न कर लिया जाय, मनको संयत व प्रशान्त नहीं किया जा सकता । मनके संयत व प्रशान्त न होनेसे ध्यान धारणादि क्रिया-काण्ड सम्पन्न होने नितान्त असम्भव हैं ।

"तत्त्वज्ञान साधकके लिये ध्यान धारणादिकी परिपक्वता प्रकृष्ट उपादान है । साधकको इसी लिये आहार विहारादिमें नितान्त साव-धान रहनेकी जरूरत है । क्योंकि अपरिमित आहारसे देह मन उत्ते-जित हो जाते हैं । उत्तेजनाका अनिवार्य और अवश्यम्भावी फल होता है अवसाद । उत्तेजना जैसे ज्ञानपथकी विषम बैरी है, अवसाद वैसा ही अपकारी है । देहमें उत्तेजना उत्पन्न होने पर मन और प्राणको किसी प्रकारसे भी प्रशान्त और संयत नहीं रखा जा सकता । उत्ते-जनाका ही दूसरा नाम चञ्चलता और अवसादका नाम है घोर तामसिक दशा । रज और तमोगुणके आविर्भावसे मन और प्राण एक ओर जहां उत्तेजित होते हैं, दूसरी ओर मोहमय और भ्रान्त हो जाते हैं । ये दोनों अवस्थायें ही तत्वज्ञानके प्रतिकूल है । एकान्त प्रकाशशील-सुगम्भीर प्रशान्त चित्त ही तत्वज्ञानके बीजको ग्रहण करने का उपयुक्त क्षेत्र है । अधिक आहार विहारकी तरहसे ही अधिक तन्द्रा-निद्रा वा आलस्य ज्ञानपथके महा विरोधी हैं । निद्राकी अवस्था अतीत मोहमय अवस्था है । इस अवस्थामें जीवनका तमोगुण नितान्त प्रबल हो उठता है । तमोगुणका प्राधान्य होनेसे प्रकृष्ट बुद्धि

का विनाश होनेसे ज्ञान लाभका सामर्थ्य एक बार ही तिरोहित हो जाता है।

"वास्तवमें एक मात्र परम ज्ञान ही मानव जीवनको धन्य और कृतार्थ कर सकता है। परम ज्ञान आत्मज्ञानका ही नामान्तर है। आत्माके स्वरूपकी उपलब्धि होनेपर परम ज्ञानका उद्भव होता है। देह इन्द्रियोंमे बद्ध होनेसे जीवात्मा संसारके माया-प्रपंचमें निबद्ध हो जाता है। असीम अनन्त आत्मा अपने महत्वको भूल कर क्षुद्र देहा-बद्ध अवस्थामें कालयापन करता है। किन्तु जब ही वह आत्मतत्व का आभास पाता है, तब ही वह उद्बुद्ध हो उठता है। वह अपनेको जाननेकी चेष्टा करता है। उसकी बुद्धि जागृत हो उठती है। तब वह जीवन और जगत्के असारत्व और भ्रम-भावको जान कर प्रकृत सारतत्त्व लाभ करनेके लिये व्याकुल हो उठता है। उसके मनमे प्राणको आलोड़ित कर स्वयं यह प्रश्न उठता है कि 'मैं कौन हूं, किस उपायसे कैसे—मैं अपनेको जान सकता हू?' तब वह व्याकुल-प्राण मनसे सद्गुरुकी खोज करता है। जन्म-जन्मान्तरोंके पुण्य-प्रतापसे सद्गुरुकी प्राप्ति होती है, और उस परम गुरुकी कृपा रूपी तरणी पर आरूढ़ होकर जीव भवसागरको पार करता है।

"परम गुरु ज्ञानाञ्जन-शलाकासे उसके अन्ध रुद्ध-चक्षुओंको उन्मीलित कर देता है। तब वह जीव अपने वास्तविक स्वरूपको अधिगत करनेमें समर्थ होता है। उसका माया-मोह-जनित भ्रम दूर हो जाता है। अपने स्वरूपको जान लेने पर मनुष्यका मोहमाया भ्रम दूर हो जाता है, जिसके कारण वह रज्जूको सर्प समझता था। वह ज्ञान धन प्राप्त होनेपर इस संसारकी असारताको स्पष्ट रूपसे समझ लेता है, कि इसमे कुछ भी तत्त्व नहीं है। तब वह मुक्तकण्ठसे घोषणा करने लगता है कि मैं कैसा हतभाग्य हूं! मुझे कैसा मोहभ्रम हुआ

था! मैं मिथ्या कल्पनाओंके भ्रमजालमें फँस कर क्या-क्या देख रहा था? इतने दिनोंके बाद परम गुरुकी कृपासे मेरा वह भ्रमजाल फट गया। मेरी आंखोंका पर्दा दूर हट गया। अब मैंने जाना कि सब मिथ्या है। सब छलना है। एकमात्र मैं ही सत्य हूं। इन सकल प्रपंचों के मध्यमें मैं ही केवल अखण्ड दण्डवत विद्यमान सत्य हूं। 'मैं कौन हूं' इस बातको मैंने समझ लिया। गुरुकी कृपासे मैं आज आत्माके स्वरूपको समझा। स्वप्नावस्थामे काल-सर्पको दंशन करते देख कर जैसे कोई चीत्कार कर उठता है और पासमें ही सोते हुए आदमी उसकी निद्राको भङ्ग कर प्रबुद्ध कर देते हैं, परन्तु वह हतभाग्य असली कारणको न समझता हुआ रुदनको बन्द नहीं करता, तब वे पासमें सोये हुए आदमी उसको धक्का देकर उठा देते हैं। तब वह अपने भ्रम को समझ कर कह उठता है,—'ओह! कैसा भ्रम है? मैंने केवल मिथ्या स्वप्नके कारण इतना घोर सर्प-दंशनका कष्ट सहन किया! वह तो स्वप्न था—मिथ्या था!' इसी प्रकारसे भाग्यवान मनुष्य सद्गुरुकी कृपासे तत्वज्ञान लाभ कर संसारके परिकल्पित-प्रपञ्च और मिथ्या मोह-माया भ्रमको समझ जाता है। वह माया-भ्रमके बीचमेंसे केवल एकमात्र सार सत्य आत्माके स्वरूपको हृदयङ्गम कर लेता है। वह कहता है कि मेरा यह आत्मा ही सत्य है—और सब मिथ्या है। यह आत्मा ही अखण्ड पूर्ण रूपमें सर्वदा सब जगह व्याप्त रहता है। यही अद्वैत-मतका तारतम्य है और यही इसकी विशद विवेचना है।"

शङ्करकी शिष्यमण्डली इस अद्वैत-मत प्रतिपादनको साक्षात शङ्कर-स्वरूप शङ्करके मुखसे सुन कर विमुग्ध हो गई। उसकी आंखों का पर्दा हट गया।

बीसवां-परिच्छेद ।

शंकरकी समाधि ।

---*---

शङ्कर एक दिन ब्रह्मपुत्रमें स्नान कर रहे थे । उनके पास ही और भी कितने ही साधु-संन्यासी स्नान-पूजादिमे लगे हुए थे। वे साधु परस्परमें काश्मीरकी शारदादेवीकी प्रशंसा करते हुए कह रहे थे कि शारदा देवी कलियुगकी जाग्रत देवी है। दर्शन करनेसे महामङ्गल साधन होता है। आचार्य शङ्करने भी देवीकी स्तुति सुनी थी। उनके मनमे देवीके दर्शनोंकी बड़ी उत्सुकता उत्पन्न हुई। अन्तमें एक दिन शङ्करने काश्मीर-यात्राके लिये प्रस्थान किया। यथासमय शङ्कर काश्मीर पहुंचे। उन्नत शिखर पर्वतों पर शारदादेवीका भव्य मन्दिर था। उसके चार द्वार थे। उनका मुख क्रमशः पूर्व पश्चिम और उत्तर दक्षिणको था। पूर्व प्रान्तोंका रहने वाला मनुष्य पूर्व द्वारसे तथा इसी प्रकारसे उत्तर दक्षिण द्वारोंसे मन्दिरमें प्रविष्ठ होता था। वहांका उस समय यही नियम था। इसके सिवा शारदादेवीके दर्शनोंके लिये प्रायः विद्वान् पण्डित लोग ही जाया करते थे। देवीके प्रधान विद्वान् पुजारी वहांकी मर्यादाके अनुसार उनसे शास्त्रीय प्रश्न करते थे, तब भीतर प्रविष्ट होने देते थे। शङ्करसे भी नियमके अनुसार वैराग्य, न्याय, सांख्यके प्रश्न पूछे गये। शङ्करने उन प्रश्नोंका यथार्थ उत्तर देकर दक्षिण द्वारसे मन्दिरमें प्रवेश किया। भीतर पहुंचते ही उन्हे देवी का प्रत्यादेश हुआ कि 'तुमने पर-स्त्री-सहवास किया है। उससे तुम्हारा देह और मन कलुषित हो गया है। तुम इस परम पवित्र मन्दिरमें प्रवेश कर देवीके दर्शन करनेके अधिकारी नहीं हो !"

उत्तरमें विनीत कण्ठसे शङ्करने कहा —"माता, मैंने इस देहसे कभी पर-कामिनीका सङ्ग नहीं किया। तब मेरा यह देह कैसे अपवित्र हो गया ?" शङ्करका उत्तर सुन कर देवीने मन्दिरमें प्रवेश और दर्शन करनेकी अनुमति दे दी। क्योंकि वास्तवमें शङ्करने इस देहसे तो पर-कामिनीका सङ्ग किया नहीं था। फिर वे दर्शनोंसे वञ्चित क्यों होते। अस्तु, मन्दिरमें प्रवेश कर शङ्कर स्वामीने देवीके दर्शन किये। इसके बाद अनेक पण्डितोंसे शास्त्रार्थ कर उन्हे पराजित किया। काश्मीर में शङ्करके अनेक मतानुयायी हो गये। तब शङ्करने वेदान्त मतके प्रचारके लिये वहां एक मठकी प्रतिष्ठा की, जो अभी तक वहां मौजूद है। वहांसे शङ्कर स्वामीने बद्रीनाथकी यात्रा की। भगवान् बद्रीनाथके दर्शन कर शङ्कर फिर केदारनाथ पहुंचे। इस समय शङ्कर स्वामीकी आयु ३२ वर्षकी थी। केदारनाथमे ही शङ्कर स्वामीको भयङ्कर भगन्दर रोगने आक्रान्त किया। रोगकी भयङ्कर पीड़ासे शङ्कर अत्यन्त पीड़ित हुए, तब उनके शिष्योंने वैद्योंको बुला कर उनका उनकी अनिच्छा होने पर भी इलाज कराया। * परन्तु विकट काल कराल की गतिको रोकनेकी किसमें सामर्थ्य है। शङ्करके कार्यकलाप समाप्त हो चुके थे। उनका युग समाप्त हो गया था। अन्तमें इसी भयङ्कर भगन्दर रोगसे शङ्करकी मृत्यु घटित हुई। † इतिहासकारोंने शङ्करकी

---

* सत्यंगुरो तेन शरीर लोभः स्पृहा लुतानस्तु चिराय तस्मै ।
स्वजीवने नैव हि जीवनं नः पाथश्चराणां जलमेवतद्धि ॥

† एवं प्रकारैः कलिकल्मषघ्नैः
शिवावतारस्य शुभैश्चरित्रैः ।
द्वात्रिंश इत्युज्ज्वल कीर्ति कायेः
समाप्यतीयुः किल शंकरस्य ॥
'श्रीशङ्कर-दिग्विजय'

मृत्युके समय का निर्णय करते हुए—संवत् ८७७ विक्रमी वताया है ।*

कुछ भी हो संसारमें जगत्के कल्याणके लिये ३२ वर्ष पहले जिस महापुरुषका आविर्भाव हुआ था, उसका लोप हो गया ! वैदिकधर्म का पुनरुद्धारक अवतारी महापुरुष शङ्करका ३२ ही वर्षकी आयुमें परलोकवास हो गया। उनके सिद्धान्तोंके अनुसार उनका आत्मा तो महान् आत्मा था, अनन्त असीम ब्रह्ममें लीन हो गया। परन्तु समस्त भारतवर्षमें शोक छा गया। उनकी शिष्य और अनुरक्त मण्डलीकी उदासीनताका ठिकाना न रहा। अन्तमें बहुत दिनोंके बाद शङ्करके कामको यथापूर्व जारी रखनेके लिये उनके शिष्योंने उनके कार्यको सुचारु रूपसे परिचालित करना आरम्भ किया।

शङ्करकी महासमाधिके बाद शोक मोहको परित्याग कर उनके शिष्योंने समस्त देशमे अद्वैत-मतका प्रचार करना आरम्भ किया। इसके अतिरिक्त शङ्कर कृत शारीरिकभाष्यने वेदान्तमतके प्रचारमे और भी अधिक सहायता दी। उनके अन्यान्य भाष्यों और वार्तिकोंने भी यथेष्ट चमत्कार दिखाया। देशके समस्त विद्वानोंने शङ्करकी गम्भीर गवेषणा और प्रगाढ़ पाण्डित्यके सामने शिर झुका दिया। शङ्कर कृत उपनिषदोंके भाष्यका भी पण्डितसमाजमें अत्यन्त आदर हुआ।

पहले परिच्छेदोंमें शङ्करकी सदाशयता, उदारता और सच्चरित्रता तथा अगाध पाण्डित्य और गम्भीर गवेषणाके सम्बन्धमें यथेष्ट उल्लेख हो चुका है। शङ्करके परलोकवाससे वैदिकधर्मी और उनके अनुयायी गण ही दुःखी नहीं हुए, बल्कि बौद्ध और जैन तथा अन्यान्य सम्प्र-

---

* चतुर्वर्षेऽष्टमे वर्षे द्वादशे सर्व शास्त्रवित् ।
षोडशे सर्व दिग्विजेता द्वात्रिंशे मुनिरत्यगात् ॥

दायके सदाशय पण्डितोंने भी बड़ा शोक मनाया और शङ्करकी मृत्युके साथ आदित्यके अस्त होनेको उपमा दी। उन लोगोंने स्पष्ट रूपसे मतभेद होते हुए भी घोषणा की कि भारतका गौरव-रवि अस्त हो गया!

शङ्कर तत्वज्ञानके जैसे पण्डित थे, वैसे ही तर्क और युक्तियोंका अन्वेषण भी बड़ी ही सूक्ष्म दृष्टिसे करते थे। उन्होंने अपने प्रकाण्ड पाण्डित्य और प्रबल युक्ति-तर्कोंसे अवैदिक मतोंका बड़े साहसके साथ खण्डन कर वैदिकधर्मकी गैरिकपताका फहराई। परन्तु अपनी सदाशयता और एकनिष्ठाके कारण सबको समदृष्टिसे देखा। उनके हृदय समुद्रमें जो स्थान वैदिक धर्मियोंके लिये था, वही अन्य मता-वलम्बियोंके लिये भी मौजूद था। सहिष्णुता और दयाकी तो वे साक्षात मूर्ति ही थे। पाखण्डी, नास्तिक, बौद्धों पर जैसी उन्होंने कृपा की, वैसी ही कदाचारी वामियों पर दिखाई। वे पापाचार और पाखण्डके शत्रु थे। परन्तु वैसे प्राणीमात्रके परम मित्र। वे तो उन सभी लोगोंको जो कुमार्गका अवलम्बन कर पथभ्रष्ट हो रहे थे, ठीक मार्ग पर लानेकी चेष्टा करते थे और अन्त तक यही करते रहे।

शङ्कर स्वामीके शिष्योंमें पद्मपाद, हस्तामलक, तोटक और सुरेश्वर सनन्दन प्रधान थे। पद्मपादके शिष्योंने आगे चल कर अपने नामोंके साथ, तीर्थ और आश्रम, हस्तामलकके शिष्योंने वन और अरण्य, और सुरेश्वरके शिष्योंने गिरी, पर्वत, सागर और तोटकके शिष्योंने सरस्वती, भारती, पुरी प्रभृति विशेषण लगाकर विशुद्ध अद्वैतमतको अनेक भागोंमें विभक्त करके नाना सम्प्रदायोंका उद्भव कर डाला

स्वामी शङ्कराचार्यकी छोटीसी आयुके प्रचारके कामसे उनके जीवनके कामका परिणाम कुछ न्यून नहीं है। उनके प्रचारके वृत्तान्तों

से जितना गौरव और विद्या प्रकट होती है, उनकी कृतिके पढ़नेसे वह कहीं बढ़ चढ कर पाई जाती है। शङ्कराचार्यकी कई एक कृतिया विद्यमान हैं। उनकी कृतिकी भाषा विशद और ललित होनेके कारण से आज तक देश भरके पण्डितोंमें बड़े आदरकी दृष्टिस देखी जाती है। ऐसा शुद्ध और ललित लिखने वाले वहुत विरले हो, हुआ करते हैं। उनको संस्कृतको देख कर प्रतीत होता है कि, मानो संस्कृतकी मन्दाकिनी प्रवाहित हो रही है। इस पर भी बड़ा संक्षिप्त और मनोहर तथा शङ्कराचायके नामको जीवित रखने वाले विशेप उल्लेख योग्य प्रस्थान-त्रय हैं। जिनमें उपनिषद्भाष्य, सूत्रभाष्य और गीता-भाष्य सम्मिलित हैं। इन तीनों भाष्योंमें उन्होंने ब्रह्मविद्याकी व्याख्या की है और बताया है कि इन पुस्तकोंका तात्पर्य जीव और ब्रह्मकी एकतामे है।

'उपनिषद्भाष्य' में शङ्कराचार्यने ब्रह्मविद्याकी व्याख्या और विशेप कर निम्न लिखित विषयो पर विचार किया है। (१) जीवात्मा और परमात्माका स्वरूप (२) जीवात्माकी असली अवस्थाएं (३) शरीर अर्थात् स्थूल, सूक्ष्म और विशद रूप (४) जीवात्माकी मृत्युके समय शरीरसे अलग होनेकी रीति (५) शुक्लगति, कृष्णगति अर्थात् शरीरसे अलग होकर सूर्यलोक वा चन्द्रलोककी ओर जीवात्माका जाना और उसका फिर जन्म लेना वा मुक्त हो जाना (६) ब्रह्म विद्याके साधन (७) छान्दोग्य उपनिषद्में विशेप कर भिन्न प्रकार की उपासनाओंका वर्णन है।

निम्नलिखित दश उपनिषदों पर स्वामी शङ्कराचार्यने भाष्य किया है और ये सबके सब उपनिषभाष्यके नामसे प्रसिद्ध है (१) ईश (२) केन (३) कठ (४) प्रश्न (५) मुण्डक (६) मण्डूक्य (७) तैत्तिरीय (८) ऐतरेय (९) छान्दोग्य (१०) बृहदारण्यक। अन्तिम

उपनिषद् सबसे बड़ा उपनिषद् और शतपथ ब्राह्मणका एक भाग है। इसका भाष्य करते हुए शङ्कराचार्यने उसके विषय पर सविस्तर विचार किया है। शङ्कराचार्य उपनिषदोंको वेद मानते थे।

सूत्रभाष्यमें उपनिषदोंके विचारणीय विषयोंपर विचार किया गया है। इसके पहले अध्यायमें बताया है कि सारे उपनिषद् ब्रह्मको ही जगत्का कारण बताते हैं और बड़ी विद्वत्ताके साथ सिद्ध किया है कि आकाश, प्राण, ज्योति और अग्नि आदि सब परमेश्वरके नाम हैं। दूसरे अध्यायमें बौद्ध, जैन और चार्वाक आदि नास्तिक मतोंका खण्डन है और सांख्य, योग आदि आस्तिक मतोंका भी इस अंशमें खण्डन है, जहां तक कि उनमे जीव ब्रह्मका भेद और प्रकृतिको जगत्का कारण माना है। तीसरे अध्यायमें वैराग्य-जीव ब्रह्मकी एकता, सगुण निर्गुण उपासना और ज्ञानके अन्तरङ्ग, बहिरङ्ग साधनोंका वर्णन है। चौथे अध्यायमें जीवशक्ति शरीरसे जीव के अलग होने, उत्तरायणगति, ब्रह्मप्राप्ति और जीवात्माका वर्णन है।

गीताभाष्यमें श्रीकृष्णकी गीतापर एक बहुमूल्य व्याख्या की है। इन भाष्योंके स्वामी शङ्कराचार्यके रचित होनेमें किसी प्रकारक सन्देह नहीं है। ये भाष्य उनके नामको सदैव जीवित रखने वाले हैं

स्वामी शङ्कराचार्यके शिष्योंके रचित ग्रन्थ।

पद्मपादरचित—आत्मानात्मविवेक। पञ्चपादिका। प्रपञ्चसार

तोटकाचार्य-रचित—काल निर्णय। तोटकव्याख्या तोटक श्लोक। श्रुतिसार समुद्धरण।

हस्तामलक—कृत—ब्रह्ममहिमा। वेदान्त—सिद्धान्तदीपका, हस्ता मलक स्तोत्र। इन्होंने ऋग्वेद पर भाष्य भी किया था।

सुरेश्वराचार्य-कृत—नैष्कर्म्य सिद्धि। काशीमोक्ष निर्णय। तैत्ति रीय श्रुतिवार्तिक। पञ्चीकरण वार्तिक। बृहदारण्यकोपनिषद्

वार्तिक, ब्रह्मसिद्धि। ब्रह्मसुत्र भाष्यवार्तिक। भावना विवेक। मान-सोल्लास। दक्षिणामूर्ति स्त्रोत्र वार्तिक। लघु वार्तिक। वार्तिकसार वार्तिकसार संग्रह।

—:o:—



परिशिष्ट ।

आचार्य शङ्करका धर्म मत ।

शङ्कराचार्यने शारीरक भाष्यके शुद्धाद्वैतवादमें जिस अभिनवमत का उल्लेख किया है, वह कोई नया नहीं है। क्योंकि अद्वैतवादके अतीव विशुद्ध भाव तो उपनिषदोंमें बहुत पहले ही प्रतिष्ठित हो चुके थे। 'एक मेवाद्वितीयं' का शङ्ख-रव बहुत पहलेसे ही हो चुका था। एक परमात्मा; सब भूतों और जीवोंमें विराजमान है, केवल रूप और नामका भेद है, यह निगूढ़ सिद्धान्त तो वैज्ञानिकधर्म-उपनिषदोंमें पहले ही प्रकट हो चुका है। सर्वसाधारणमें कभी इस सिद्धान्त का पर्याप्त प्रचार भी हो चुका है। क्योंकि लोकसमाजमें यह जनश्रुति आज भी प्रचरित है कि 'उन्होने चोर होकर चोरी की, साधु भावकी रक्षा की।' इसके सिवा ऐसी ही और भी कितनी ही उक्तियां हैं जो बहुत कालसे लोकसमाजमें प्रचरित हैं। ये उक्तियां क्या हैं, अद्वैतवाद की प्रतिध्वनि हैं। उच्च श्रेणीके हिन्दुओंमें ध्यान-धारणा और समाधि की जो चर्चा आज तक चली आती है, वह क्या है? अद्वैतवादके प्रखर प्रभावका प्रभाव ही तो है। हां, यह सत्य है कि शङ्करने इस सिद्धान्तको लेकर जैसा अद्वैतवादका डङ्का भारतमें बजाया, वैसा पहले कभी नहीं बजा था। गीतायुगमें अवश्य अद्वैतवादका प्राधान्य रहा होगा, परन्तु उस समय इस सिद्धान्तका प्रचार उच्च श्रेणीके लोगों तक ही परिमित था। शङ्कर ने अद्वैतवाद को सर्वसाधारण तक पहुंचाया।

वास्तवमें गीताधर्म भी प्रकृत अद्वैत-तत्त्वकी भित्ति पर ही प्रतिष्ठित है। थोड़ा बहुत पार्थक्य होने पर भी गीता-धर्म और अद्वैत-तत्त्वमें कुछ विशेष भेद नहीं है। शङ्करका विशुद्धाद्वैतवाद गीताका ही अनुवर्ती है। अनेक विद्वान् पण्डितोंने इस बातको स्वीकार किया है। गीता-धर्मने आधुनिक शिक्षितसमाजमे अधिक प्रभाव विस्तार किया है। शङ्करका गीता-भाष्य भी इसका एक कारण है। क्योंकि शङ्करका गीता-भाष्य शारीरिक भाष्यकी तरहसे उनके धर्ममतके अनुसार प्रतिष्ठित विशुद्धाद्वैतवादका प्रधान पृष्ठ-पोषक है। इसलिये विशुद्धाद्वैतवादकी आलोचनामे प्रवृत्त होनेसे पहले गीता-धर्मके सम्बन्धमे दो शब्द कहने आवश्यक हैं।

अनेक पण्डित-ज्ञानियोंने योगको ही गीताका वास्तविक सिद्धान्त बताया है। उन विद्वानोंका यह निश्चय-निर्धारण असार और असत्य नहीं है। गीतामे लिखा है कि—'जिज्ञासारपि योगस्य शब्द ब्रह्मातिरिच्यते।' अर्थात् योगी, जिज्ञासुजन ब्रह्म (वेद) को अतिक्रम कर सकते हैं। गीतामें कथित योगतत्त्व, अद्वैतवादकी तरहसे केवल तत्त्वज्ञान पर्यवसित नहीं है। शङ्करका अद्वैतवाद, अध्यात्मतत्व के साथ विजड़ित है। गीताका योगधर्म भी अध्यात्मतत्त्वके ऊपर दृढ़ भित्ति स्थापन कर उद्घोषित हुआ है। उसने मनुष्यत्वके परिस्फूरण का प्रकृष्ट पथ प्रदर्शित किया है।

पूर्ण भावमें मनुष्यत्वके विकासके तीन प्रधान मार्ग है। कर्म, ज्ञान और उपासना। इन तीनोंका सामञ्जस्य भावसे अनुशीलन करने पर परिस्फूरण द्वारा मनुष्यत्वका पूर्ण विकास होता है। इस विकाश के लिये एक ओर देह इन्द्रियोंका परिस्फूरण और दूसरी ओर संयम की साधनाका प्रयोजन होता है। गीतामें इन्हीं समस्त तत्त्वों की सूक्ष्म उपासना रूपसे आलोचना हुई है। मनुष्य का विकास और

पूर्णता तथा अन्तिम अवस्थाको गीतामें सिद्धिकी अवस्था कहा गया है। गीतामें लिखा है,—

'तपस्विभ्योधिको योगी ज्ञानीभ्योपि मतोधिकः।
कर्मिभ्योप्यधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥'

अर्थात् योगी तपस्वीसे भी श्रेष्ठ है, ज्ञानीसे भी और कर्मीसे भी। अतएव हे अर्जुन, तू योगी हो।

उस योगके सम्बन्धमें गीतामें लिखा है,—

'सर्व भूतस्थमात्मानं सर्व भूतानि चात्मनि।
ईक्षते योग-युक्तात्मा सर्वत्र समदर्शन॥'

अर्थात् योगी सर्व भूतोंमें आत्माका दर्शन करता है और आत्मामें सर्व भूतोंको देखता है। वह समदर्शी होता है। अद्वैतवाद समदर्शनके नामान्तरके अतिरिक्त और क्या है? समदर्शिता का ही नाम अद्वैतवाद है।

वेदान्त-कथित विशुद्ध अद्वैतवाद ही शङ्करका धर्म-मत है। जीव ब्रह्मसे पृथक् नहीं। जीवात्मा, परमात्मा एक ही वस्तु है। माया-भ्रममें पतित होकर, जीव अपनेको ब्रह्मसे पृथक् समझ कर मिथ्या सुख-दुःखोंका भोग करता है। जैसे सागर और सागरकी तरङ्ग एक ही पदार्थ है। परन्तु भाव पृथक् है, इसी प्रकारसे ब्रह्म और जीव तथा जगत् एक ही पदार्थके विभिन्न रूप मात्र हैं। तत्त्वज्ञानका उदय होने पर यह माया-भ्रम दूर हो जाता है और बद्धजीव आत्म-बोधमें समर्थ होता है। आत्म-ज्ञान आत्मबोध उत्पन्न होने पर अपने यथार्थ स्वरूपकी उपलब्धि होती है। तब वह अपने और ब्रह्मके अन्तरको समझ लेता है। वह समस्त बन्धनोंसे मुक्त होकर ब्रह्मानन्दके उपभोगका अधिकारी हो जाता है।

जैसे सीपमें रजतका और रज्जुमें सर्पका भ्रम होता है। सीपको चांदी और रज्जुको सर्प समझता है, परन्तु सीप और रज्जुका यथार्थ

ज्ञान होने पर भ्रमात्मक धारणा दूर हो जाती है। उसी प्रकारसे जीव अपनेको मोह-मायामें बद्ध करके जगत्‌को सत्य समझता है और उस के सुख-दुःखोंका उपभोग करता है। परन्तु अज्ञानान्धकार दूर होते ही भ्रमका पर्दा आंखोंके आगेसे हट जाता है और जीवात्मा अपने यथार्थ स्वरूपको समझ कर भूमाभाव परमात्मामें अपनेको परिणत कर देता है। यही अद्वैतवादका सिद्धान्त है।

शारीरिकभाष्य, [illegible], आत्मबोध, विवेकचूड़ामणि प्रभृति शङ्कर प्रणीत ग्रन्थोंमें [illegible] अद्वैतमतका विशद-भावसे वर्णन किया गया है। शङ्करका मत है कि अद्वैतवाद ही वेदोंका एकमात्र सार-सिद्धान्त है। वेदोंके सम्बन्धमें शङ्करका अभिमत है कि आप्त वाक्य वा सत्य शब्दोंके समूहकी समष्टि ही वेद हैं। वाक्य और शब्दके दो भाव होते हैं। एक बाह्य और दूसरा आभ्यन्तरीण भाव। बाह्य भाव जैसे उदय होता है, साथ ही साथ वैसे ही लय हो जाता है और आभ्यन्तरीण-भाव धारणामें परिणत होता है। वह धारणा स्थान और कालसे अतीत है। वही धारणा-समूह अनादि अनन्त कालसे सत्य रूपसे ब्रह्ममें संस्थित है। वही सत्य-समूह वेद रूपमें प्रकटित हुआ है। वेदोंकी सत्यताको सभी हिन्दू स्वीकार करते हैं। यहां तक कि निरीश्वर सांख्य तकने वेदोंको अभ्रान्त सत्य कह कर ग्रहण किया [illegible] और परम पुनीत सनातनधर्मके पुनर्प्रतिष्ठाता शङ्करने तो वेदों [illegible] भ्रान्त, सामयिक वा पौरुषेय कह कर उपेक्षित किया ही नहीं। वेद ही हिन्दूधर्मकी मूल भित्ति हैं। वेदोंकी प्रतिष्ठाके लिये वैदिक धर्मके सार-तत्त्व अद्वैतवादकी प्रतिष्ठाके लिये ही शङ्करने अपना जीवन उत्सर्ग किया था। उन्होंने वेदोंकी सत्यताको शिरोधार्य कर मुक्तकण्ठसे संसारमें घोषणा की थी,—

'वेद शब्देन तु सर्वत्र शब्दराशिर्विवक्षित.।'

अर्थात् जो शब्दसमूह, सत्यता संस्थापनके लिये किसी प्रकारके प्रमाणकी अपेक्षा नहीं करता, वही वेद है। हिन्दू जीवन-स्वरूप, हिन्दूधर्मकी मूल भित्ति स्वरूप, वेद-प्रचार और वैदिक धर्मके अनुष्ठान तथा उद्देश्यके लिये शङ्करने भारतके चारों प्रान्तोंमें अपनी अक्षय कीर्ति विजय स्तम्भ स्वरूप चार धर्ममठ स्थापित किये थे। वे समस्त मठ आज भी विद्यमान हैं और शङ्करकी अपूर्व कार्य-कीर्तिका परिचय प्रदान कर रहे हैं।

शङ्करने वेदोंको दो भागोंमें विभक्त किया है। एक कर्म-काण्ड और दूसरा ज्ञान-काण्ड। कर्मकाण्ड द्वारा चित्तकी शुद्धि होती है। इसके बाद निष्कर्ष भावसे कर्मानुष्ठान करनेसे दैहिक और मानसिक कलुषराशि विनष्ट होती है और ज्ञानकाण्डका उदय होता है। केवल तभी वैदिक-सत्य धारणा समूहको साधक स्वयं उपलब्ध करने में समर्थ होता है।

अनेक लोगोंका कहना है कि शङ्करने शुष्क ज्ञानमार्गके अद्वैतवाद और आत्मबोध तथा आत्मदर्शनका ही प्रचार किया है। उनका यह नितान्त भ्रम है। क्योंकि शङ्करने इस बातका स्पष्ट रूपसे निर्देश किया है कि आरम्भमें तपस्या और साधनाका होना आवश्यक है। बिना तपस्याके सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती। शङ्करने उस साधनाको छः भागोंमें विभक्त किया है। शम, दम, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान और उपरति। जैसे योगमार्गके लिये यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि इन आठ प्रकारके अङ्गों की साधन-प्रक्रिया द्वारा योगसिद्धिका विधान शास्त्रोंमें किया गया है, वैसे ही शङ्करने भी अद्वैतवादकी सिद्धिके लिये उपरोक्त छः प्रकारके अङ्गोंका निर्देश किया है। अन्तमें शङ्करने लिखा है कि करणपथ, श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन द्वारा ब्रह्मतत्त्व अधिगत होता है।

यद्यपि उपरोक्त विधियों का वर्णन शास्त्रोंमें पहलेसे मौजूद है, परन्तु शङ्करने इनकी विशद भावसे विवेचना कर आलोचना की है। शङ्कर के इस कार्यसे अशेष लोक-कल्याण हुआ है। ऐसी दशामें शङ्करको शुष्कधर्मका प्रचारक कहना न्यायका अपमान करना है।

आध्यात्म-तत्त्व और ब्रह्म-तत्त्वको प्रकृत भावमें अधिगत कर लेने पर दोनोंके समन्वय साधनका प्रयोजन होता है। वेदान्तके प्रधान कई एक वाक्योंकी विशेष रूपसे परिपुष्टि कर शङ्करने समन्वय पथका निर्देश किया है। यथाः—

१—प्रज्ञानं ब्रह्म=प्रज्ञान ही ब्रह्म है।

२—अहं ब्रह्मास्मि=मैं ब्रह्म हू।

३—तत्त्वमसि—मैं वही आत्मा हूं।

४—अयमात्मा ब्रह्म—यही आत्मा ब्रह्म है।

प्रथमोल्लिखित छ प्रकारके साधनों द्वारा चित्तशुद्धि होती है और ज्ञानपथ परिष्कृत होता है, तब शेषोक्त वाक्य-चतुष्टयका स्वयं समाधान हो जाता है। अर्थात् करणों द्वारा सुन कर गुरु-वाक्यों पर श्रद्धा और विश्वास करके साधन मार्गमें अग्रसर होनेका क्रम है। इसके पश्चात् चिन्ता द्वारा विचिन्तित चित्तको साध्यके प्रति आकृष्ट करना, उस एकाग्रताका नाम है मनन। अन्तमें साध्य विषयको पूर्ण भावमें उपलब्ध करना और उसको आयत्त करने के लिये वार-वार स्मरण करनेका नाम है निधिध्यासन।

पाश्चात्य शिक्षासे प्रभावित लोग शङ्करके विशुद्धाद्वैतवाद और पश्चिमीय तत्त्व वेत्ताओंके 'Pantheim Superpantheism' को एक ही सिद्धान्त बताते हैं। किन्तु यथार्थमें यह भ्रम है। प्रतीच्य अद्वैतवाद और शङ्करके अद्वैतवादमें आकाश पातालका अन्तर है। दोनोंमें विषयकी पार्थक्यता है। प्रतीच्य अद्वैतवादियोंका मत है,

कि जैसे सुवर्णसे अनेक अलङ्कारोंकी रचना होती है, उसी प्रकार से ब्रह्मसे जीवात्माकी रचना हुई है। इस उदाहरणमें थोड़ी सी साम्यता होने पर भी भारतके वैज्ञानिक इस उदाहरणको नहीं मानते, क्योंकि भारतके वेदान्तियोंके प्रतिपक्षमें रामानुज, गोविन्द आदि भक्तिमार्गके पण्डितोंके द्वैतवादका उद्भव भी भारतमें ही हुआ है।

+ + + +

हम पहले इस बातका उल्लेख कर चुके हैं, कि बहुतसे लोग शङ्कर को शुष्क-ज्ञान पथका प्रचारक कहते हैं। परन्तु उनका यह भ्रम है। शङ्कर उभय भावोंसे भावान्वित थे। वे ज्ञानपथके प्रसार करने में जितने व्यग्र थे, उतने ही भक्ति की उन्नतिके साधन के लिये भी उद्योगी थे। उनके प्रणीत ग्रन्थोंमें ही इसका स्पष्ट प्रमाण है। शङ्कर-कृत भाष्य जहां ज्ञानका प्रचार करते हैं, वहां उनकी स्तवमाला भक्ति का स्पष्ट निदर्शन करती है। 'वेदान्तडिण्डिम' में लिखा है:—

'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैवनापरः।
इदमेवतु संस्थानामिति वेदान्तडिण्डिमे ॥'

अर्थात् ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या है। जीव ही ब्रह्म है इत्यादि। इसके बाद आत्मबोधमें कहा है,—

'बोधो हन्य साधनेभ्योहि साक्षन्मोक्षक साधनम्।
पाकस्य वन्हिमगज्ञानं विना मोक्षये सिद्धयति ॥

अर्थात् भोजन बनानेमें जैसे अग्नि प्रयोजनीय है, उसी प्रकारसे कर्म अनुष्ठान आदि मोक्ष लाभके सकल उपाय है—परन्तु सब की अपेक्षा ज्ञान ही श्रेष्ठ है।

'अविरोधि तयाकर्मणा विद्यां विनिवर्त्येत्।
विद्याहि विद्यां निहन्त्येव तेज तिमिर सङ्घवत् ॥'

अर्थात् कर्म विद्यामें कोई विरोध नहीं। अविरोधता हेतु कर्म कभी अविद्याको नष्ट नहीं कर सकता। किन्तु प्रकाश अन्धकारका नाश करता है, उसी प्रकारसे विद्या अविद्याको ध्वँस करती है।

'तावत्सत्यं जगद्भाति शुक्तिका रजतं यथा।
यावन्न ज्ञायते ब्रह्म सर्वाधिष्ठान मद्व्ययम्॥'

अर्थात् सीपको जैसे भ्रमवश चांदी समझ लिया जाता है और जब तक उसका यथार्थ ज्ञान न हो, तब तक वह भ्रम बराबर रहता है। अन्तमें जब सीप का ज्ञान होता है, तब चादी होने का भ्रम दूर हो जाता है। उसी प्रकारसे जब तक विश्व रूपके आधार अद्वितीय ब्रह्म-तत्त्वको न जाना जाय, तब तक मनुष्य संसारको सत्य ही समझता है।

'सच्चिदात्मन्यूभ्युक्ते नित्ये विष्णु विकल्पिता।
व्यक्तयो विविधाः सर्वाहाटके कट कासिवत्॥'

यह जगत् एक मात्र ब्रह्म पदार्थ में विविध प्रकार से भासमान होकर माया द्वारा कल्पित हो रहा है। एकमात्र सुवर्ण से जैसे केयुर-कुण्डल आदि विविध प्रकार के अलङ्कार निमित होते हैं, उसी प्रकार से एकमात्र ब्रह्म पदार्थसे ही जगत् की विविध रूपोंमें रचना हुई है।

'यथाकाशो हृषिकेशो नानोपाधि ततो विभूः।
तद्भेवाद् भिन्न यद्भाति यन्नाशादेकवद्भवेत्॥'

एक वृहत् वस्तु आकाशमें जैसे घट, पट, मठ विभिन्न स्थानोंमें रह कर नाना प्रकारकी उपाधियोंसे अलंकृत होती है, उपाधिकी विभिन्नताका हेतु घटाकाश, मठाकाश, इत्यादि विभिन्न उपाधि प्राप्त होती है, एवं घटादिका विनाश होने पर अर्थात् उपाधिके विलुप्त होने पर, आकाश पूर्ववत् एक ही रूपमे स्थित होता है।

इन उपरोक्त सिद्धान्तोंको पढनेसे शङ्करकी गम्भीर ज्ञान-गरिमा का परिचय मिलता है। अब नीचे हम उनके भक्तिपूर्ण कुछ स्तोत्र देते हैं, जिनको पढ़ कर स्पष्ट प्रतीत होता है कि शङ्कर केवल ज्ञानी ही नहीं, महाभक्त भी थे। नारायणस्तोत्रसे,—

'करुणा वारा वारा करुणालय गम्भीरा।
नारायण नारायण जय गोविन्द हरे॥'

शिव स्तोत्रसे:—

'आदौ कर्म प्रसादीत् कलयति कलुषं मातृ कुक्षा स्थितं मां।
विन्मूत्रा मध्ये-मध्ये व्यथयति वितरां जाठरो जात वेदाः॥
यदयद्वै तत्र दुःखं व्यथयति नितरां शक्यते केन वक्तुं।
क्षन्तव्योमेऽपराधः शिव शिव शिव भो—श्रीमहादेव शम्भो॥'

अर्थात् पहले तो कर्म-बन्धनके लिये अनेक पापफल भोगने पड़े। मैं जिस समय जननी-जठरमें निविष्ट था, तब विष्टा और मुत्रके बीचमें नाना प्रकारके कष्टोंका भोग करना पड़ा एवं माताकी जठराग्नि सदा नाना प्रकारसे व्यथा देती रही। आदि।

उपरोक्त श्लोकोंसे शङ्करका भक्तिभाव स्पष्ट रूपसे प्रकट होता है। उनके ब्रह्मचर्यादि तपस्या, अनुष्ठानोंके प्रमाणोंकी तो कमी ही नहीं। अद्वैतवादके तत्त्व-उपदेशसे पूर्ण रूपमें उनकी गम्भीर ज्ञान-गरिमाका परिचय मिलता है। फलतः आचार्य शङ्कर, कर्म, ज्ञान और उपासना तीनों मतोंके परिपोषक और प्रचारक थे।